थेरगाथा
भिक्षु धर्मरत्न

थेर गाथा

अनुवादक
भिक्षु धर्मरत्न एम० ए०

प्रकाशक
महाबोधि सभा
सारनाथ, बनारस

बुद्धाब्द २४९३

प्रकाशक—
भिक्षु संचालक
मंत्री महाबोधि सभा
सारनाथ बनारस

प्रथम संस्करण
बुद्धाब्द २४९९
ईस्वी सन् १९५५

मूल्य ३)

मुद्रक—
ओम् प्रकाश कपूर
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय
बनारस २४१५-१२

प्राक्कथन

जो पालि वाङ्मय त्रिपिटक के नाम से प्रसिद्ध है, उसके तीन भाग हैं · सुत्त पिटक, विनय पिटक तथा अभिधम्म पिटक। सुत्त पिटक के पाँच ग्रन्थ हैं दीघ-निकाय, मज्झिम-निकाय, संयुत्त-निकाय, अंगुत्तर निकाय तथा खुद्दक निकाय। खुद्दक निकाय के अन्तर्गत पन्द्रह पुस्तकें हैं जिनमें थेर गाथा आठवीं है।

थेर गाथा में परमपद को प्राप्त स्थविरों के, बौद्ध भिक्षुओं के उदान अर्थात् उल्लासपूर्ण गाथाएँ हैं। विमुक्ति सुख के परमानन्द में उनके मुख से निकली हुई ये गीतात्मक उक्तियाँ हैं। साधना के उच्चतम शिखर पर पहुँचे हुये उन महान् साधकों के, आर्य मार्ग के उन सफल यात्रियों के ये जय-घोष हैं। संसार के यथा स्वभाव को समझकर, जन्म-मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले उन महान् विजेताओं के ये विजय-गान हैं।

इन गाथाओं में आध्यात्मिक पारिशुद्धि की, आत्म-विजय की और परम शान्ति की हर्षध्वनि गूँजती है। अधिकांश गाथाओं में सीधे निर्वाण के प्रति संकेत हैं। कुछ गाथाओं में साधकों की साधना को सफल बनाने में सहायक प्रेरणाओं का उल्लेख है। कुछ और गाथाओं में परमपद को प्राप्त स्थविरों द्वारा सब्रह्मचारियों या जन साधारण को दिये गये उपदेशों का भी उल्लेख है।

थेरगाथा से हमें भगवान् बुद्ध द्वारा स्थापित संघ का भी एक सुन्दर चित्र मिलता है। उसमें एक ओर दीन-दुखियों की दूसरी ओर कपिलवस्तु, देवदह, वैशाली, राजगृह, श्रावस्ती, पावा इत्यादि राजधानियों के राजप्रासादों से निकले हुए राजा, युवराज, राजकुमार तथा राज्य मन्त्री जैसे उच्च कोटि के लोग थे।

थेरों की गाथाओं में पशु-पक्षियों के मधुर गान का, नदियों और सरिताओं के कलरव का, वनों और पर्वतों की छटा का, मेघों के गर्जन का सुन्दर वर्णन है। बहुत सी गाथाएँ प्रकृति के सौन्दर्य तथा संगीत से ओतप्रोत हैं। प्रकृति से न केवल उनकी साधना को अनुकूल वातावरण प्राप्त था अपितु उन्हें अपनी साधना में अनेक प्रेरणाएँ भी मिलती थीं। वर्षा ऋतु के सम्प्राप्त होने पर उसभ भिक्षु गाते हैं, "नई वर्षा से सिक्त हो पर्वतों पर वृक्ष लहराते हैं। यह ऋतु एकान्त-प्रिय, अरण्यवासी उसभ के मन में अधिकाधिक स्फूर्ति उत्पन्न करती है। इसी प्रकार सोण स्थविर गाते हैं, "नक्षत्र समूह से युक्त रात्रि सोने के लिए नहीं है। ऐसी रात्रि ज्ञानियों के जागृत रहने के लिए है।"

थेरगाथा का ऐतिहासिक महत्व भी कम नहीं है। नाना दिशाओं से, नाना जनपदों से तथागत की शरण में आये हुए थेरों की जीवन-कथाओं को पढ़ने से भगवान् के जीवन काल में सद्धर्म का कहाँ तक प्रचार हुआ था, इसकी भी एक झलक मिलती है। इसके अतिरिक्त उस समय देश की सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दशा पर भी काफी प्रकाश पड़ता है। देश के विभिन्न प्रदेशों में स्वतन्त्र राजा राज्य करते थे और वे एक दूसरे से भयभीत रहते थे। राज्य सम्पत्ति त्यागकर भगवान् का शिष्य बनने के पश्चात् प्राप्त अभय तथा शान्ति का उल्लेख कई थेरों की गाथाओं में आया है। भद्दिय स्थविर, जो कि एक शाक्य राजा थे, गाते हैं, "दृढ़ अट्टालिकाओं और कोठों से युक्त, ऊँचे और गोल प्राकारों से घिरे नगर में खड्गहस्त रक्षकों से रक्षित होने पर भी मैं भयभीत रहता था।

"आज भद्र, त्रास रहित, भय-भीति रहित गोधाय का पुत्र भद्दिय वन में प्रवेशकर ध्यान करता है।"

वर्तमान संसार में बल के पीछे पागल कुछ राष्ट्रों के नेताओं की दशा उन राजाओं से भी दयनीय है। यह तृष्णा के कुपरिणाम के

अतिरिक्त और कुछ नहीं। जहाँ तृष्णा का प्रहाण है वहाँ निर्मलता तथा शान्ति है।

सन्त साहित्य में थेरगाथा का विशेष स्थान है। इन गाथाओं में वे महान् साधक अपने जीवन अनुभव हमारे लिए छोड़ गये हैं। उन से आर्य मार्ग के पथिक को बोधिचित्त के विकास के लिए, निर्मोहित धर्म चक्षु के उन्मीलन के लिए पर्याप्त प्रेरणा मिलती है।

यह थेरगाथा का प्रथम हिन्दी अनुवाद है। कुछ उदानों के विषय बहुत ही स्पष्ट हैं। लेकिन कुछ उदान तत्सम्बन्धी थेरों की जीवनियों के बिना उतने स्पष्ट नहीं हैं। इसलिए एक एक थेर का संक्षिप्त परिचय भी प्रत्येक उदान के प्रारम्भ में दिया गया है। इससे उदानों को समझने में पाठकों को बहुत सहायता मिलेगी।

अनुवाद को सरल बनाने में भरसक प्रयत्न किया गया है। बौद्ध धर्म तथा दर्शन के जिन पारिभाषिक शब्दों से पाठक परिचित नहीं हैं उनके अर्थ बोधिनी में दिये गये हैं। थेरगाथा के अध्ययन से यदि पाठक को 'पञ्च तूर्यों से मिलने वाली रति को भी मात करने वाली निर्वाण रति' का आभास मात्र भी मिल जाय तो मैं इसे अपने इस परिश्रम का उचित पुरस्कार समझूँगा।

भाई त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित जी को उनके महत्वपूर्ण सुझावों के लिए धन्यवाद। अन्त में मैं महाबोधि सभा को जिसने इस पुस्तक को प्रकाशित कर हिन्दी पाठकों की सेवा की है अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ।

सारनाथ
२०-१२-५५

भिक्षु धर्मरत्न

विषय सूची

पहला निपात

पहला वर्ग

दूसरा वर्ग

तीसरा वर्ग

चौथा वर्ग

दूसरा निपात

तेरहवाँ वर्ग

चौदहवाँ वर्ग

पन्द्रहवाँ वर्ग

सोलहवाँ वर्ग

तीसरा निपात

चौथा निपात

पाँचवाँ निपात

छठवाँ निपात

सातवाँ निपात

आठवाँ निपात

नवाँ निपात

चौवीसवाँ वर्ग

दसवाँ निपात

ग्यारहवाँ निपात

छब्बीसवाँ वर्ग

बारहवाँ निपात

सत्ताईसवाँ वर्ग

तेरहवाँ निपात

अट्ठाईसवाँ वर्ग

चौदहवाँ निपात

पन्द्रहवाँ निपात

सोलहवाँ निपात

सत्रहवाँ निपात

चालीसवाँ निपात

पचासवाँ निपात

साठवाँ निपात

महा निपात

परिशिष्ट

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

पहला निपात

पहला वर्ग

१. सुभूति

दानवीर अनाथपिण्डिक सेठ के भतीजे। भगवान् से उपदेश सुन-कर भिक्षु-संघ में प्रव्रजित। नित्यप्रति मैत्री चिन्तन में मग्न। बाद में समाधि प्राप्त कर अर्हन्त पद को प्राप्त। भगवान् ने अपने शिष्यों में मैत्री चिन्तकों तथा दक्षिणार्हों में सुभूति को सर्व श्रेष्ठ घोषित किया। एक बार सुभूति राजगृह जा कर खुले स्थान में रहने लगे। वर्षा का समय था। लेकिन वर्षा नहीं होती थी। बिम्बिसार राजा ने सुभूति स्थविर के लिए एक कुटी बनवा दी। उसमें उनके प्रवेश करते ही बूँदाबाँदी होने लगी। कुटी में बैठ कर लोगों के हित के लिए वर्षा का आह्वान करते हुए सुभूति ने इस उदान को गाया

कुटी मेरी छाई है, सुखदाई है, वायु से सुरक्षित है,
देव ! मन भर बरसो।
मेरा चित्त अच्छी तरह समाधिस्थ है, विमुक्त है,
(मैं) उद्योगी हो विहार करता हूँ,
देव ! मन भर बरसो ॥ १ ॥

२. महाकोट्ठित

श्रावस्ती के सम्पन्न ब्राह्मण कुल में जन्म। भगवान् के पास प्रव्रज्या लेकर चार अभिज्ञाओं* को प्राप्त। अभिज्ञा प्राप्त भिक्षुओं में सर्वश्रेष्ठ।

* जिन शब्दों के साथ यह चिह्न लगा है, उनकी व्याख्या के लिए बोधिनी देखें।

एक दिन महाकोट्ठित स्थविर ने अपने भिक्षु-शिष्य को प्रकट करते हुए इस उदान को गाया :

जो उपशान्त है, (पापों में) रत नहीं है
ज्ञानपूर्वक बोलता है, अभिमान रहित है,
वह उसी प्रकार पाप धर्मों को हिला देता है
जिस प्रकार हवा पेड़ के (सूखे) पत्ते को ॥ २ ॥

३ कंखारेवत

श्रावस्ती के धनी कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित हो ध्यानाभ्यास में विशेष निपुणता को प्राप्त। इसलिए ध्यान-निपुण भिक्षुओं में सर्वश्रेष्ठ। अपने संशय-समाधान पर हर्ष प्रकट करते हुए कंखारेवत स्थविर ने गाया है :

अँधेरी रात में प्रज्वलित अग्नि के समान
तथागतों की इस प्रज्ञा को देखो।
ये आलोक तथा (ज्ञान) चक्षु देनेवाले हैं,
(अपने) पास आनेवालों की शंका का समाधान करते हैं ॥ ३ ॥

४ पुण्ण

कपिलवस्तु के निकट गाँव के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। माता का नाम मन्तानि होने के कारण मन्तानिपुत्र नाम से भी विख्यात। अञ्ञा कोण्डञ्ञ के भानजा। भिक्षुओं में सर्वश्रेष्ठ उपदेशक। अर्हत्व प्राप्ति के बाद पुण्ण स्थविर परमानन्द में गाते हैं।

पण्डित अर्थदर्शी सत्पुरुषों की ही संगति करे।
अप्रमत्त और विचक्षण धीर, गम्भीर, दूरदर्शी
निपुण सूक्ष्म और महान् अर्थ को प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

५. दब्ब

मल्लदेश के थे। इसलिए मल्लपुत्र के नाम से भी विख्यात। सात वर्ष की आयु मे भिक्षुसघ में दीक्षा ली। बड़ी श्रद्धा के साथ भिक्षुओं के लिए आसनों का प्रवन्ध करने के कारण उसी का पद मिला था। अर्हत्व प्राप्ति के बाद मन के शान्त होने पर दब्ब स्थविर इन शब्दों में अपना हर्ष प्रकट करते हैं :

जो दुर्दान्त दब्ब (उत्तम) दमन द्वारा दान्त है, सन्तुष्ट है,
शंकाओं के परे है, विजयी है, भयरहित है,
वह दब्ब पूर्ण रूपसे शान्त है, स्थितप्रज्ञ है ॥ ५ ॥

६ सम्भूत

राजगृह के धनी ब्राह्मण के पुत्र। कई मित्रों के साथ संघ में प्रव्रजित। शीतवन में ध्यानाभ्यास करने के कारण शीतवनिय नाम से भी विख्यात। परमपद प्राप्ति के बाद सम्भूत स्थविर यह उदान गाते हैं

जो भिक्षु शीतवन में प्रवेश कर एकाकी विहरता है,
सन्तुष्ट है, समाधियुक्त है, विजयी है, भयरहित है,
(उस) धीर ने शरीर सम्बन्धी स्मृति की रक्षा की है ॥६॥

७ भल्लिय

पोक्खरवती नगर के व्यापारी कुल में उत्पन्न। तपस्सु के छोटे भाई। बुद्धत्व की प्राप्ति के बाद ही इन्हीं दोनों भाइयों ने भगवान् को मट्ठे और लड्डू का दान दिया था। बाद को राजगृह में भगवान् से उपदेश सुन कर भल्लिय प्रव्रजित हुए। अर्हत्व की प्राप्ति के बाद एक दिन मार ने उन्हें पथ-भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया। उस अवसर पर भल्लिय स्थविर ने इस उदान को गाया

जिसने मृत्युराज की सेना को
उसी प्रकार भगाया है
जिस प्रकार महाजल-प्रवाह
सरकंडों के बने कमजोर पुल को।
विजयी भय रहित दान्त वह
पूर्ण रूप से शान्त है स्थितप्रज्ञ है ॥७॥

८ वीर

कोशल नरेश प्रसेनजित् के मंत्री के पुत्र। स्वभाव वीरता होने के कारण वीर नाम पड़ा था। विवाह करने के बाद प्रव्रजित। एक दिन उनकी पूर्व पत्नी ने उन्हें प्रलोभित करने का प्रयत्न किया था। उस अवसर पर वीर स्थविर ने यह उदान गाया :

जो दुर्दम्य (उत्तम) दमन द्वारा दान्त है, वीर है
सन्तुष्ट है शंकाओं के परे है विजयी है भय रहित है
वह वीर पूर्ण रूप से शान्त है स्थितप्रज्ञ है ॥८॥

९ पिलिन्दिवच्छ

श्रावस्ती के एक ब्राह्मण के पुत्र। नाम था पिलिन्दि और गोत्र था वच्छ। इसलिए पिलिन्दिवच्छ के नाम से विख्यात। परिव्राजक होकर 'गान्धार' विद्या की सिद्धि प्राप्त करने के कारण नामी। बाद को भगवान् के शिष्य बन गये। देवताओं के प्रिय भिक्षुओं में सर्वश्रेष्ठ। एक दिन पिलिन्दिवच्छ स्थविर ने अपने जीवन का सिंहावलोकन करते हुए इस उदान को गाया :

मुझे यहाँ लाभ हुआ अप्रिय नहीं हुआ
जो परामर्श मुझे मिला सो कल्याणकारी ही सिद्ध हुआ,
विभिन्न धर्मों में जो श्रेष्ठ है
उसे मैंने पाया है ॥९॥

१०. पुण्णमास

श्रावस्ती के समिद्धि ब्राह्मण के पुत्र। विवाह के बाद प्रव्रजित। एक दिन उनकी पूर्व पत्नी ने उन्हें प्रलोभित करने का प्रयत्न किया था। उस अवसर पर अपनी अनासक्ति को दिखाते हुए पुण्णमास स्थविर ने यह उदान गाया

जो निर्वाण का ज्ञाता है, शान्त है,
संयत है, सभी धर्मों में निर्लिप्त है,
संसार के उदय-व्यय को जान कर
उसने इस लोक तथा परलोक
की तृष्णा को त्याग दिया है ॥१०॥

दूसरा वर्ग

११. चूलगवच्छ

कौशाम्बी के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न और भगवान् से उपदेश सुनकर संघ में दीक्षित। जिस समय किसी विनय नियम को ले कर कौशाम्बी के भिक्षु दो दलों में हो गये थे तो चूलगवच्छ उनसे अलग हो ध्यानाभ्यास में तत्पर रह कर परमपद को प्राप्त हुए थे। अपनी प्राप्ति पर हर्ष प्रकट करते हुए चूलगवच्छ स्थविर ने इस उदान को गाया है

(जो) भिक्षु बुद्ध द्वारा देशित धर्म में
प्रमोद बहुल हो विहरता है,
(वह) संस्कारों के उपशम-सुख रूपी
शान्त पद को प्राप्त होता है ॥११॥

१२ महागवच्छ

मगध के नालक गाँव में उत्पन्न। सारिपुत्र का अनुसरण कर संघ में प्रव्रजित। परम-ज्ञान प्राप्त करने के बाद महागवच्छ स्थविर ने यह उदान गाया :

जो प्रज्ञा-बल तथा शील-व्रत से युक्त है
समाहित है, ध्यानरत है, स्मृतिमान् है
अर्थ भर भोजन ग्रहण करनेवाला वह वैरागी
यहाँ अपने समय की प्रतीक्षा में रहता है ॥१२॥

१३ वनवच्छ

कपिलवस्तु के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। वच्छ गोत्र के थे। वनों के प्रेमी होने के कारण वनवच्छ नाम पड़ा। प्रव्रजित होने के बाद वनों में ध्यानाभ्यास कर अर्हत्व को प्राप्त। इसके बाद वनवच्छ स्थविर ने अपनी रुचि को इस उदान द्वारा प्रकट किया :

सुन्दर, शीतल स्वच्छ जलाशयों से युक्त
इन्द्रगोपों से आच्छादित
नील घटाओं के समान जो पर्वत हैं,
वे मुझे प्रिय हैं ॥१३॥

१४ सीवक

वनवच्छ थेर के भानजा। माता के कहने पर श्रामणेर हो अरण्य में जा कर वनवच्छ स्थविर की सेवा करते थे। एक दिन सीवक गाँव में गये और वहाँ पर बीमार पड़े। स्थविर ने आ कर उनसे अरण्य चलने को कहा। अस्वस्थ होने पर भी अरण्य में जा कर उपाध्याय की शिक्षा के अनुसार योगाभ्यास कर वे अर्हत् पद को प्राप्त हुए। इसके बाद

उपाध्याय के आदेश और अपने मनोभाव को मिलाते हुए सीवक स्थविर ने यह उदान गाया है

(जब) उपाध्याय ने मुझे कहा कि सीवक !
यहाँ से वन में चले तो मैंने (उनसे) कहा कि
मेरा शरीर गाँव में रहता है और मन वन में ।
लेटे रहने पर भी (वन में) जाना चाहता हूँ,
ज्ञानी के लिए (कहीं) आसक्ति नहीं ॥१४॥

१५ कुण्डधान

श्रावस्ती के त्रिवेद पारगत ब्राह्मण । भगवान् से उपदेश सुनकर प्रव्रजित हो परम शान्ति को प्राप्त किया था । कुण्डधान स्थविर इस उदान में अपने आध्यात्मिक विकास की विधि को दिखाते हैं

पाँच (अवर भागीय वन्धनों*) का छेदन करे,
पाँच (ऊर्ध्व भागीय वन्धनों*) को त्याग दे,
पाँच (इन्द्रियों*) का आगे अभ्यास करे ।
जो भिक्षु पाँच आसक्तियों* के परे है
वह (संसार) प्रवाह के पार गया है ॥१५॥

१६. बेलट्ठिसीस

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न । उरुवेल काश्यप के शिष्य हो कर अग्निदेव की उपासना करते थे । बाद को उनके साथ ही भगवान् के पास प्रव्रजित हुए और आनन्द के उपाध्याय भी बने । परमपद की अवस्था में पहुँचने पर बेलट्ठिसीस स्थविर ने यह उदान गाया

जिस प्रकार सींगवाला, भद्र, उत्तम जाति का
वृषभ आसानी से हल को ले चलता है,

इसी प्रकार निरामिष (= निर्वाण) सुख के प्राप्त होने पर
मेरे रात-दिन आसानी से बीत जाते हैं ॥१६॥

१७ दासक

अनाथपिण्डिक के दास पुत्र। धार्मिक स्वभाव के कारण सेवा से मुक्त। संघ में दीक्षित होने के बाद उद्योग न कर आलसी बन गये थे। भगवान् ने उपदेश दे कर उन्हें सचेत किया। संवेग पा कर दासक उद्योगी बने और अर्हत् पद को प्राप्त हुए। जिस उपदेश से दासक स्थविर को प्रेरणा मिली थी उसे वे उदान के रूप में गाते हैं :

भोजन से पुष्ट, विशाल काय
सूकर की तरह आलसी बहु भोजी निद्रालु
लोट लोट कर सोनेवाला मन्द बुद्धि
बारम्बार पुनर्जन्म को प्राप्त होता है ॥१७॥

१८ सिगालपिता

श्रावस्ती के धनी कुल में उत्पन्न। सिगाल के पिता होने के कारण यही नाम पड़ा। प्रव्रजित होने के बाद भेसकलावन में अस्थि संज्ञा का ध्यान करते थे। वनदेवता ने शीघ्र ही उन्हें सफलता मिलने की आशा प्रकट की। देवता की बात को सुन कर भिक्षु और भी उद्योगी हो परम शान्ति को प्राप्त हुए। उसके बाद सिगालपिता ने देवता के शब्दों में ही उदान गाया।

बुद्ध का उत्तराधिकारी भिक्षु भेसकला वन में है,
उसने इस सारी पृथ्वी पर अस्थि संज्ञा को फैलाया है।
मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही वह
काम-तृष्णा को त्याग देगा ॥१८॥

१९. कुण्डल

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न। प्रव्रजित होने के बाद भी मन विक्षिप्त रहता था। एक दिन भिक्षा के लिए नगर में गये तो वहाँ पर लोगों को नहरों द्वारा पानी ले जाते, बाण बनाते और लकड़ी ठीक करते देखा। भोजन के बाद उन बातों पर मनन कर, प्रेरणा प्राप्त कर योगाभ्यास करने लगे। वह शीघ्र ही अर्हत्व को प्राप्त हुए। उसके बाद कुण्डल ने लोगों से प्राप्त शिक्षा का उल्लेख करते हुए यह उदान गाया है

नहर वाले पानी को ले जाते हैं,
बाण बनानेवाले बाण को ठीक करते हैं,
बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं,
और पण्डित जन अपना दमन करते है ॥१९॥

२०. अजित

कोशल नरेश के गणक ब्राह्मण के पुत्र। बावरी के शिष्य बनकर गोदावारी तट पर आश्रम बना कर रहते थे। भगवान् का समाचार मिलने पर साथियों के साथ श्रावस्ती आये और भगवान् से उपदेश सुन कर उनके पास प्रव्रजित हुए। निर्वाण का बोध होने के बाद अजित स्थविर ने अपनी विजय पर इस प्रकार हर्ष प्रकट किया

मुझे मृत्यु का डर नहीं,
जीने की इच्छा नहीं,
ज्ञानपूर्वक, स्मृतिमान् हो
मैं इस शरीर को छोड़ दूँगा ॥२०॥

तीसरा वर्ग

२१ निग्रोध

श्रावस्ती के विख्यात ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् के पास प्रव्रजित। अर्हत्व प्राप्ति के बाद निग्रोध स्थविर ने हर्ष प्रकट करते हुए यह उदान गाथा :

मैं (मृत्यु इत्यादि) भयानक बातों से नहीं डरता
हमारे शास्ता अमृत को जाननेवाले हैं।
जहाँ भय नहीं रहता
उसी (आर्य) मार्ग से भिक्षु चलते हैं ॥२१॥

२२ चित्तक

राजगृह के सम्पन्न ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित हो एक सम नील वन में ध्यान-भावना कर परम शान्ति को प्राप्त। उसके बाद चित्तक स्थविर ने परमानन्द में यह उदान गाथा :

नील ग्रीवा और शिखावाले मोर
करवीय वन में नाचते हैं।
शीतल वायु पा कर (प्रफुल्लित हो)
मधुर गीत गानेवाले ये
सोये हुए योगी को जगाते हैं ॥२२॥

२३ गोसाल

मगध के सम्पन्न परिवार में उत्पन्न। प्रव्रजित हो कर पहाड़ी प्रदेश में ध्यानाभ्यास करते थे। एक दिन अपनी माता के दिये हुए मधु भात खीर को ग्रहण कर ध्यान मग्न हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद ही गोसाल स्थविर ने यह उदान गाथा :

मैंने बाँस की झाड़ी (की छाया) में बैठ कर
मधु तथा खीर को ग्रहण कर
स्कन्धों* की उत्पत्ति और विनाश पर
ध्यान पूर्वक मनन किया ।
(अब) मैं शान्ति की प्राप्ति के लिए
पहाड़ी प्रदेश में जाऊँगा ॥२३॥

२४. सुगन्ध

श्रावस्ती के धनी माता-पिता के पुत्र । प्रव्रज्या के सात दिन के बाद अर्हत्व को प्राप्त कर सुगन्ध स्थविर ने यह उदान गाया

वर्षा के बाद ही मैं प्रव्रजित हुआ,
धर्म की महिमा को देखो,
मैंने तीन विद्याओं* को प्राप्त किया,
बुद्ध-शासन को पूरा किया ॥२४॥

२५. नन्दिय

कपिलवस्तु के एक शाक्य राजकुमार । अनुरुद्ध इत्यादि शाक्य कुमारों के साथ प्रव्रजित । अर्हत्व प्राप्त कर जब नन्दिय एकान्तवास कर रहे थे तो एक दिन मार ने उन्हें भय दिखाने का प्रयत्न किया । उस अवसर पर नन्दिय स्थविर ने मार को लक्ष्य करके यह उदान गाया

जिसे सतत प्रकाश प्राप्त है,
जिसका मन अर्हत् फल को प्राप्त है,
उस प्रकार के भिक्षु का विरोध कर
पापी (मार) ! तुम दुःख में पड़ोगे ॥२५॥

२६ अभय

बिम्बिसार राजा के एक पुत्र। पहले जैन श्रावक थे। बाद को भगवान् बुद्ध के शिष्य बनकर, पिता की मृत्यु के पश्चात्, प्रव्रजित हुए। अभय स्थविर ने अपनी ज्ञानप्राप्ति पर हर्ष प्रकट करते हुए यह उदान गाया :

आदित्यबन्धु बुद्ध की सुन्दर बात को सुनकर
(उसके द्वारा) वस्तुस्थिति का उसी प्रकार भेदन कर
सत्य को जान लिया
जिस प्रकार कि (कुशल धनुर्धारी के) तीर द्वारा
बाल के अग्रभाग को वेधा जाता है ॥२६॥

२७ लोमसक

कपिलवस्तु के ही एक शाक्य राजकुमार। स्वभाव के बड़े सुकुमार। इसलिए माता ने भिक्षु जीवन की दुष्करता बताकर उन्हें रोकने का प्रयत्न किया लेकिन उनकी ओर ध्यान न देकर लोमसक ने संसार त्यागने का संकल्प कर लिया। प्रव्रजित हो एक अरण्य में ध्यान कर के अर्हत्व को प्राप्त हुए। उसके बाद लोमसक स्थविर ने अपने संकल्प को स्मरण करके यह उदान गाया।

शान्ति की प्राप्ति के लिए
दूब कुश, पोटकिल उसीर, मूँज
और बाबड़ (रूपी चित्तमल) को
हृदय से निकाल दूँगा ॥२७॥

२८ जम्बुगामिय

चम्पा के उपासक के पुत्र। श्रामणेर होकर साकेत में अञ्जन वन में ध्यान करते थे। पुत्र की परीक्षा लेने के विचार से पिता ने एक गाथा लिखकर उनके पास भेजी। उससे संवेग पाकर उद्योगी हो

वे शान्तपद को प्राप्त हुए। पिता की जिस गाथा से प्रेरणा मिली उसी को उदान के रूप में जम्बुगामिय स्थविर ने गाया

क्या (तुम) कहीं वस्त्रों के फेर में तो नहीं हो ?
कहीं आभूषणों में तो रत नहीं हो ?
क्या शील की इस सुगन्धि को तुमने बहाया है ?
और लोगों ने तो नहीं ? ॥२८॥

२९. हारित

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। ब्राह्मणी कन्या से विवाहित। साँप के डसने से जब उसकी मृत्यु हुई तो हारित को वैराग्य उत्पन्न हुआ। वे भगवान् के पास प्रव्रजित हुए। लेकिन उनका मन विक्षिप्त रहता था। एक दिन भिक्षा के लिए गाँव में जाने पर उन्होंने एक आदमी को तीर बनाते देखा। उस समय हारित के मन में हुआ कि जब मनुष्य अचेतन वस्तु को ठीक कर सकता है तो मैं अपने मन को क्यों न ठीक कर सकूँ ? बाद में इस बात पर मनन करते हुए हारित ने अपने मन पर विजय पायी। अपनी विजय को लक्ष्य करके हारित स्थविर ने यह उदान गाया है

अपने आप को उसी प्रकार ठीक करो,
जिस प्रकार बाण बनानेवाला बाण को ठीक करता है।
हारित ! चित्त को सीधा करके,
अविद्या का भेदन करो ॥२९॥

३०. उत्तिय

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। परिव्राजक होकर सत्य की खोज में निकले थे। भगवान् से उपदेश सुनकर उनके पास प्रव्रजित हुए। अधिक उद्योग करने के कारण उत्तिय बीमार पड़े, लेकिन उन्होंने

अपने उद्योग को जारी रक्खा । उसी दशा में ज्ञान जानकर हारित स्थविर ने यह उदान गाया :

मुझे रोग उत्पन्न हुआ है,
इसलिए मुझ में स्मृति उत्पन्न हो जाय ।
मुझे रोग उत्पन्न हुआ है,
अब मुझे प्रमाद का समय नहीं ॥२०॥

चौथा वर्ग

२१ गहुरतिरिय

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न । भगवान् के पास प्रव्रजित हो अरण्य में ध्यान कर परम पद को प्राप्त हुए । एक दिन गहुरतिरिय भगवान् के दर्शन के लिए श्रावस्ती गये । बन्धुओं ने वनवास की दुष्करता को बताकर श्रावस्ती में ही रहने को कहा । उस अवसर पर गहुरतिरिय स्थविर ने आरण्य को ही पसन्द कर यह उदान गाया :

अरण्य में महावन में मक्खियों
तथा मच्छड़ों का स्पर्श पाने पर,
संग्राम में आगे रहनेवाले
हाथी की तरह उसको सहन कर ॥२१॥

२२ सुप्पिय

श्रावस्ती में जन्म । जाति के डोम । सोपाक स्थविर से उपदेश सुन कर ज्ञान प्राप्ति के लिए उद्योग करनेवाले आयुष्मान् सुप्पिय ने यह उदान गाया ।

जरा के अधीन (मुझे) अजर निर्वाण प्राप्त हो,
सन्तप्त (मुझे) शान्ति प्राप्त हो,
अनुत्तर, परम शान्त योगक्षेम (मुझे) प्राप्त हो ॥३२॥

३३ सोपाक

श्रावस्ती में जन्म। निर्धन माता के पुत्र। सोपाक अभी गर्भ मे थे कि एक दिन उनकी माता बेहोश होकर गिर गयी। लोग उसे मरा समझकर जलाने के लिए श्मशान ले गये। वहाँ पर उसे होश आया और वहीं पर सोपाक का जन्म भी हुआ। सुप्पिय के पिता ने उनका पालन पोषण किया। सात वर्ष की आयु में वे भगवान् के पास प्रव्रजित हुए। सोपाक मैत्री भावना का अभ्यास कर उसी के बल पर ध्यान प्राप्त कर अर्हन्त हुए। उसके बाद मैत्री को ही लक्ष्य कर के सोपाक स्थविर ने यह उदान गाया

जिस प्रकार माता अपने एक ही प्रिय पुत्र के प्रति
प्रेम-भाव रखती है,
उसी प्रकार सर्वत्र सभी प्राणियों के प्रति
प्रेम-भाव रक्खे ॥३३॥

३४. पोसिय

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। विवाह के बाद एक पुत्र उत्पन्न होने पर भगवान् के पास प्रव्रजित। एक अरण्य में योगाभ्यास से अर्हत्व प्राप्त कर पोसिय भगवान् के दर्शन के लिए श्रावस्ती गये। उनके दर्शन करने के बाद वे अपने घर में गये। पूर्व पत्नी ने उन्हें प्रलोभित करने का प्रयत्न किया। वे शीघ्र ही वहाँ से चल दिये। सब्रह्मचारी भिक्षुओं द्वारा शीघ्र लौटने का कारण पूछने पर उपर्युक्त घटना को लक्ष्य करके पोसिय स्थविर ने यह उदान गाया

ज्ञानियों के लिए सतत इनसे दूर रहना ही उत्तम है।
गाँव से अरण्य में जा कर पोषिय ने घर में प्रवेश किया
फिर किसी को सूचना दिये बिना
(वह) वहाँ से उठ कर चल दिया ॥२४॥

२५ सामञ्ञकानि

जन्मस्थान अज्ञात। भगवान् के पास प्रव्रजित होकर अर्हत्व को प्राप्त। एक दिन पूर्व परिचित परिव्राजक ने सुखी होने का उपाय पूछा तो सामञ्ञकानि स्थविर ने उपाय देते हुए यह उदान गाथा।

जो सुखार्थी अमृत की प्राप्तिके लिए आर्यअष्टांगिक मार्ग रूपी
ऋजु मार्ग का अभ्यास करता है आचरण करता है,
वह सुख को प्राप्त करता है
उसे कीर्ति मिलती है और उसका यश बढ़ता है ॥२५॥

२६ कुमापुत्र

अवन्ती के वेलुकण्ट नगर में जन्म। माता का नाम कुमा होने के कारण कुमापुत्र नाम से विख्यात। सारिपुत्र का उपदेश सुन कर प्रव्रजित हुए और अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद कुमापुत्र स्थविर ने यह उदान गाथा।

(धर्म को) सुनना कल्याणकारी है
(उसका) आचरण करना कल्याणकारी है
निराले में वास करना कल्याणकारी है
सदर्थ को पूछना और उसका अनुसरण
करना कल्याणकारी है,
त्यागी का यही कर्तव्य है ॥२६॥

३७. कुमापुत्र सहायक

अवन्ती के वेलुकण्ड नगर के एक धनी परिवार में जन्म। नाम सुदत्त था। लेकिन कुमापुत्र का मित्र होने के कारण उसी नाम से विख्यात हुए। प्रव्रजित हो कर वे जिस स्थान में रहते थे वहाँ बहुत से आगन्तुक भिक्षु आया जाया करते थे। उनके हल्ले-गुल्ले से उनका मन एकाग्र नहीं होता था। ऐसी दशा में एक दिन कुमापुत्र सहायक स्थविर ने अपने आप को समझाते हुए यह उदान गाथा

असंयमी लोग विचरण के लिए
नाना जनपदों में जाते हैं,
वे समाधि से वञ्चित हैं,
उनके विचरण से क्या लाभ होगा ?
इसलिए (मनकी) अशान्ति को शान्त कर,
इच्छाओं के वश में न हो ध्यान करे ॥३७॥

३८. गवम्पति

यश के साथी। अर्हत् पद पाने के बाद साकेत में जा कर और भिक्षुओं के साथ अजन वन में रहते थे। भगवान् भी विचरण करते हुए बड़ी भिक्षु मण्डली के साथ साकेत पहुँचे। विहार में जगह कम होने के कारण कुछ भिक्षु सरभू नदी के तट पर रहने लगे। रात को नदी में बाढ़ आयी। भिक्षुओं की चिल्लाहट को सुन कर गवम्पति ने अपने ऋद्धि-बल से नदी की धारा को रोक दिया। बाद में उस घटना को लक्ष्य कर गवम्पति की प्रशंसा करते हुए भगवान् ने यह उदान गाथा

जिसने ऋद्धि-बल से सरभू (की धारा) को रोका है,
वह गवम्पति आसक्ति रहित है, चंचलता रहित है।
भव के पार गये हुए, सभी आसक्तियों के पार गये हुए
उस महामुनि को देवता (भी) नमस्कार करते हैं ॥३८॥

३९ तिस्स

भगवान् के चचेरे भाई। प्रव्रजित होने पर भी अभिमान के साथ रहते थे। एक दिन भगवान् ने उन्हें उपदेश दिया। संवेग पाकर तिस्स उद्योग करने लगे और अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद भगवान् के सम्मुख में ही तिस्स स्थविर ने यह उदान गाया :

शस्त्र से आहत की तरह
सर में आग लगे की तरह,
काम-तृष्णा के नाश के लिए,
भिक्षु स्मृतिमान् हो विचरण करे ॥३९॥

४० वड्ढमान

वैसाली के लिच्छवि राजकुमार। प्रव्रजित होकर अनुद्योगी रहते थे। बाद में भगवान् के उपदेश से संवेग पाकर परमपद को प्राप्त हुए। उसके बाद वड्ढमान स्थविर ने भगवान् के सम्मुख में ही यह उदान गाया :

शस्त्र से आहत की तरह
सर में आग लगे की तरह,
भव-तृष्णा के नाश के लिए
भिक्षु स्मृतिमान् हो विचरण करे ॥४०॥

पाँचवाँ वर्ग

४१ सिरिवड्ढ

राजगृह के धनी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित होकर राजगृह की एक गुफा में ध्यान करते थे। एक दिन मूसलधार वर्षा के साथ

ही गुफा के पास बिजली गिरी। उसी समय सिरिवड्ढ स्थविर ने समाधि में शान्तपद को प्राप्त कर यह उदान गाया :

वेभार और पण्डव (पर्वतों) के बीच
विजली गिरती है।
अनुपम, स्थितप्रज्ञ (तथागत) का पुत्र
गुफा में जाकर ध्यान करता है ॥४१॥

४२. खदिरवनिय रेवत

सारिपुत्र के छोटे भाई। बड़े भाई का अनुसरण कर प्रव्रजित। अरण्यवासी भिक्षुओं में सर्वश्रेष्ठ। उनकी तीन बहिनें चाला, उपचाला और सिसूपचाला भी श्रामणेरी होकर उनके पास ही रहती थीं। एक दिन रेवत बीमार पड़े। समाचार पाकर सारिपुत्र स्थविर उन्हें देखने के लिए गये। सारिपुत्र को दूर पर आते देखकर रेवत स्थविर ने तीन बहिनों को सचेत करते हुए यह उदान गाया :

चाले! उपचाले! सिसूपचाले!
स्मृतिमान् हो विहरो,
बाल-वेधी (महावादी) आये हैं ॥४२॥

४३. सुमङ्गल

श्रावस्ती के निकट गाँव के निर्धन परिवार में उत्पन्न। प्रव्रजित होकर एकान्त स्थान में उद्योग करते थे। लेकिन मन उदास होने के कारण एक दिन अपने गाँव में लौट रहे थे। राह में किसानों को परिश्रम करते देखकर इस उदान द्वारा अपने मन को समझाते हुए सुमङ्गल ने फिर उद्योग करना आरम्भ किया

अच्छी तरह मुक्त हुआ! अच्छी तरह मुक्त हुआ!
जोताई, बोवाई और कटाई से अच्छी तरह मुक्त हुआ!
हँसुओं, हलों और कुदालों से मैं मुक्त हुआ!

यद्यपि वे सब यहाँ पर हैं तथापि मुझे
(उन से) पर्याप्त (अनुभव) मिला। पर्याप्त (अनुभव) मिला।
सुमंगल ध्यान करो! सुमंगल ध्यान करो!
सुमंगल अप्रमादी हो विहरो ॥४३॥

४४ सानु

श्रावस्ती के एक उपासक के पुत्र। पिता के प्रव्रजित होने पर पुत्र ने भी उन्हीं का अनुकरण किया। लेकिन मन उदास रहने के कारण वे घर लौट जाना चाहते थे। जब उनकी माँ को यह बात मालूम हुई तो वह बहुत दुःखित हुई। एक दिन सानु ने अपनी माता से दुःखित रहने का कारण पूछा। माँ ने कुछ ऐसे शब्द कहे जिनसे उन्हें संवेग उत्पन्न हुआ। उसके फलस्वरूप वे उद्योग कर अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद सानु स्थविर ने जो प्रश्न माता से किया था उसी को बयान के रूप में गाथा:

माँ! किसी के मरने पर या
जीवित आदमी के दिखाई न देने पर ही
(लोग) रोते हैं।
माँ! जीवित मुझे (लोग) देखते हैं,
माँ! किस लिए रोती है? ॥४४॥

४५ रमणीयविहारि

राजगृह के धनी परिवार में उत्पन्न। तरुण अवस्था में बड़े विलासी थे। एक दिन एक ऐसी घटना घटी जिससे उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ। प्रव्रजित होने पर भी पहले जीवन को याद कर वे अपने को पापी ही समझते थे। एक दिन रास्ते जाते समय गाड़ी में जुते हुए बैल को ठोकर के कारण गिरते देखा। गाड़ीवान ने उसे खोलकर

खिला-पिलाकर फिर जोत दिया और वह सुखपूर्वक चलने लगा। रमणीयविहारि ने उक्त घटना से प्रेरणा प्राप्त कर उद्योगी हो श्रमण धर्म को पूरा किया। उसी के बाद उसी घटना को लक्ष्य करके उन्होंने यह उदान गाया

जिस प्रकार भद्र, उत्तम जाति का बैल
गिरने पर भी उठ खड़ा हो जाता है,
उसी प्रकार सम्यक् सम्बुद्ध का
दर्शन सम्पन्न श्रावक भी (उठ खड़ा हो जाता है) ॥४५॥

४६. समिद्धि

राजगृह के सम्पन्न परिवार में उत्पन्न। प्रव्रजित होने के बाद एक दिन अपने भिक्षु जीवन पर आनन्द मनाते हुए गा रहे थे। उससे चिढ़ कर मार हल्ला करने लगा। लेकिन समिद्धि अपनी ध्यान-भावना में तत्पर हो परमपद को प्राप्त हुए। उसके बाद उक्त घटना को लक्ष्य करके उन्होंने यह उदान गाया

घर से बेघर हो मैं श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित हुआ।
मेरी स्मृति तथा प्रज्ञा परिपक्व है,
चित्त सुसमाहित है।
मार ! जो चाहो सो करो,
तुम मुझे बाधा नहीं पहुँचा सकोगे ॥४६॥

४७. उज्जय

राजगृह के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। त्रिवेद-पारगत हो उसमें कोई सार न पा कर भगवान् के पास प्रव्रजित हुए। अर्हत्व की प्राप्ति के बाद एक दिन भगवान् के पास जा कर, उन्हें प्रणाम कर उज्जय स्थविर ने यह उदान गाया :

बुद्ध-वीर ! आपको नमस्कार !
आप सभी बन्धनों से मुक्त हैं।
आपकी शिक्षा का अनुसरण कर
मैं वासना-रहित हुआ हूँ ॥४७॥

४८ सञ्जय

राजगृह के धनी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। घर में रहते स्रोतापन्न हुए थे। बाद में प्रव्रजित हो अर्हत् पद प्राप्त कर सम्भवतः स्थविर ने यह उदान गाया।

जब से मैं घर से बेघर हो
प्रव्रजित हुआ हूँ,
अनार्य, दोषयुक्त विचार
उत्पन्न नहीं हुआ ॥४८॥

४९ रामणेय्यक

श्रावस्ती के सम्पन्न परिवार में उत्पन्न। प्रव्रजित हो कर वेळुवन में ध्यान करते थे। एक दिन मार ने उन्हें भयभीत करने लिए भयानक आवाज़ उठायी। उस अवसर पर रामणेय्यक ने निर्भय हो मार को पहचान कर यह उदान गाया।

मार ! तेरा 'चिह चिह' शब्द
गिलहरी की आवाज़ जैसा है।
मेरा मन (उससे) विचलित नहीं होता,
वह निर्वाण प्राप्ति में रत है ॥४९॥

५० विमल

राजगृह के सम्पन्न परिवार में उत्पन्न। प्रव्रजित हो कोसल देश में जाकर ध्यान करते थे। एक दिन मूसलधार वर्षा होने लगी उनकी ध्यान

चलती थी और बिजली चमकती थी। उसी समय विमल स्थविर ने परम पद को प्राप्त कर यह उदान गाया :

धरणी सिंचित है, हवा चल रही है,
आकाश में बिजली चमक रही है,
मेरे वितर्क शान्त हैं
और मेरा चित्त सुसमाहित है ॥५०॥

छठाँ वर्ग

५१–५४. गोधिक, सुबाहु, वल्लिय और उत्तिय

ये चारों पावा के मल्ल राजकुमार थे। एक दिन चारों कुमार राज-काज के लिए कपिलवस्तु गये। उस समय भगवान् निग्रोधाराम में विहरते थे। वहाँ भगवान् से उपदेश सुन कर चारों कुमार प्रव्रजित हुए और राजगृह में जाकर राजा बिम्बिसार की बनवायी हुई कुटियों में ध्यान करते थे। एक दिन ध्यान से उठने पर जोरों का पानी होने लगा और चारों सब्रह्मचारियों ने एक एक करके ये उदान गाये

गोधिक

देव (ऐसा) वर्ष रहा है मानो संगीत हो रहा है।
मेरी कुटी छायी है, सुखदायी है और वायु से सुरक्षित है।
मेरा चित्त सुसमाहित है।
इसलिए देव ! चाहो तो बरसो ॥५१॥

सुबाहु

देव (ऐसा) वर्ष रहा है मानो संगीत हो रहा है।
मेरी कुटी छायी है, सुखदायी है और वायु से सुरक्षित है।

(मेरा) सुसमाहित चित्त शरीर(के स्वभाव)को जान गया है।
इसलिये देव ! चाहो तो बरसो ॥५२॥

वज्जिप

देव (देवता) बर्षे रहा है मानो संगीत हो रहा है।
मेरी कुटी छायी है, सुखदायी है और वायु से सुरक्षित है।
मैं उसमें अप्रमादी हो विहरता हूँ।
इसलिए देव ! चाहो तो बरसो ॥५३॥

उत्तिय

देव (देवता) बर्षे रहा है मानो संगीत हो रहा है।
मेरी कुटी छायी है, सुखदायी है और वायु से सुरक्षित है।
मैं एकाकी उसमें विहरता हूँ।
इसलिए देव ! चाहो तो बरसो ॥५४॥

५५ अञ्जनवनिय

वैशाली के एक लिच्छवी राजकुमार। प्रव्रजित हो साकेत के अञ्जन वन में जाकर एक आराम कुर्सी को ही कुटी का रूप दे कर उसमें ध्यान करते थे। एक मास के भीतर परमपद को प्राप्तकर अञ्जन वनिय स्थविर ने यह उद्गार गाया।

अञ्जन वन में प्रवेश कर
आराम कुर्सी को कुटी बना कर वास करता हूँ।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया है
बुद्ध-शासन को पूरा किया है ॥५५॥

५६ कुटिविहारि

वैशाली के ही एक लिच्छवी राजकुमार। प्रव्रजित होकर अञ्जन वन में रहते थे। एक दिन खेत में वर्षा के समय मुहूर्तभर पानी आया

तो भिक्षु किसी किसान की खाली झोपड़ी में प्रवेश कर, ध्यान कर अर्हत् पद को प्राप्त हुए। किसान ने जब अपनी झोपड़ी में भिक्षु को देखा तो उनसे प्रश्न किया। कुटिविहारि स्थविर ने ऐसा जवाब दिया कि किसान अत्यन्त प्रसन्न हुआ। इस उदान में दोनों के बीच जो बातचीत हुई थी उसका उल्लेख है

किसान

कुटी में कौन है?

कुटिविहारि

कुटी में वीतरागी, सुसमाहित-चित्त भिक्षु है।
आयुष्मान्! जान लो कि तुम्हारी बनाई हुई कुटी
बेकार नहीं गयी है॥५६॥

५७. द्वितिय कुटिविहारि

यह कथा भी पहली कथा जैसी है। यह भिक्षु अञ्जन वन में एक पुरानी कुटी में ध्यान कर रहे थे। इनके मनमें एक नई कुटी बनाने की इच्छा उत्पन्न हुई। एक वन देवता ने भिक्षु के विचार को जानकर एक गाथा द्वारा मन में सवेग उत्पन्न किया। सवेग पाकर भिक्षु उद्योगी हो परम पद को प्राप्त हुए। उसके बाद कुटिविहारि स्थविर ने देवता की कही हुई गाथा को ही उदान के रूप में गाया

इसे पुरानी कुटी समझ कर
दूसरी नई कुटी बनाना चाहते हो?
कुटी की इच्छा को छोड़ दो भिक्षु!
नई कुटी से नया दुःख उत्पन्न होगा॥५७॥

५८. रमणीय कुटिक

वैशाली के ही एक लिच्छवी कुमार। प्रव्रजित हो अर्हत्त्व को प्राप्त

कर एक सुन्दर कुटी में वास करते थे। एक दिन कुछ स्त्रियों ने उस भिक्षु को सुन्दर कुटी में देख कर उन्हें प्रलोभन देने का प्रयत्न किया। उस समय भिक्षु ने अपने विरागी भाव को प्रकट करते हुए यह उदान गाया।

मेरी कुटिया रमणीय है,
श्रद्धा पूर्वक दी गयी है, मनोरम है।
मुझे कुमारियों से मतलब नहीं।
जिन्हें स्त्रियों से मतलब हो वे वहाँ जायें ॥५८॥

५९ कोसलविहारि

किम्पली कुमार। प्रव्रजित हो कोसल देश में एक श्रद्धालु उपासक द्वारा दी हुई कुटी में वास कर अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद अपनी मुक्ति पर हर्ष प्रकट करते हुए भिक्षु ने यह उदान गाया।

मैं श्रद्धा से प्रव्रजित हुआ हूँ।
अरण्य में मेरे लिए कुटी बनायी गयी है।
मैं अप्रमादी हूँ, उद्योगी हूँ,
सम्यक् ज्ञानी हूँ, स्मृतिमान हूँ ॥५९॥

६० सीवली

कोलिय कुमारी सुप्पवासा के पुत्र। बहुत दिनों तक गर्भ में कष्ट सहने के बाद उत्पन्न। सात वर्ष की आयु में सारिपुत्र ने इन्हें प्रव्रजित किया। परम पद पाने के पश्चात् सीवली ने यह उदान गाया।

जिस अर्थ के लिए मैंने कुटी में प्रवेश किया
मेरे वे संकल्प पूर्ण हुए।
मैंने विद्या तथा विमुक्ति की गवेषणा की है,
और पूर्ण रूप से अभिमान का त्याग किया है ॥६०॥

सातवाँ वर्ग

६१. वप्प

कपिलवस्तु के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। पचवर्गीय भिक्षुओं में से एक। ऋषिपतन में भगवान् का उपदेश सुनकर अर्हत् पद को प्राप्त। एक दिन वप्प स्थविर ने यह उदान गाया

(सत्य) दर्शी (सत्य) दर्शी को देखता है,
अदर्शी को भी देखता है।
अदर्शी अदर्शी को ही देखता है,
दर्शी को नहीं देखता है ॥६१॥

६२. वज्जिपुत्त

वैशाली के एक मन्त्री के पुत्र। प्रव्रजित होकर किसी अरण्य में ध्यान करते थे। एक दिन वैशाली के लोग उत्सव मनाते थे। लोगों की हँसी-खुशी को देखकर भिक्षु का मन उदास हुआ। उनके मन में हुआ कि 'हम फेंकी हुई लकड़ी की तरह अकेले पड़े हैं'। इस प्रकार वे भिक्षु अरण्य-वास छोड़ना चाहते थे। एक वन-देवता ने भिक्षु के विचार को जानकर सवेग उत्पन्न करने के लिए एक गाथा सुनायी। सवेग पाकर भिक्षु उद्योगी हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद उन्होंने देवता की गाथा को ही उदान के रूप में गाया

जंगल में फेंकी हुई लकड़ी की तरह,
हम अकेले अरण्य में वास करते हैं।
बहुत से लोग मेरी स्पृहा उसी प्रकार करते हैं,
जिस प्रकार नारकीय लोग स्वर्गगामी की ॥६२॥

६३. पक्ख

देवदह में उत्पन्न। भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हुए थे।

एक दिन गाँव में भिक्षा प्राप्त कर पेड़ के नीचे बैठ गये। वहाँ पर कुछ गृद्ध मांस के टुकड़े के लिए लड़ रहे थे। उस दृश्य को देख कर भिक्षु ने सोचा कि लोग विषय वासनाओं के लिए भी इसी प्रकार लड़ते हैं। संसार के स्वभाव पर मनन करते हुए वे शान्तपद को प्राप्त हुए। इसके बाद पक्ख ने उस घटना को लक्ष्य करके यह उदान गाया :

गृद्ध (मांस के टुकड़े के लिए)
बार-बार झपट कर आते हैं
और झपटकर गिर जाते हैं।
(मैंने) कर्तव्य को पूरा किया है,
रम्य-निर्वाण में रत हूँ
सुखपूर्वक (परम) सुख को प्राप्त हूँ ॥६३॥

६४ विमल-कोण्डञ्ञ

बिम्बिसार राजा से अम्बपाली को उत्पन्न एक पुत्र। वैशाली में भगवान् से उपदेश सुनकर प्रव्रजित। अर्हत् पद पाने के बाद विमल स्थविर ने यह उदान गाया :

अम्बपाली तथा (बिम्बिसार) राजा का
पुत्र होकर मैं उत्पन्न हुआ।
(तथागत के) श्रेष्ठ धर्म द्वारा
मैंने अभिमान को नष्ट किया ॥६४॥

६५ उक्खेपकतवच्छ

श्रावस्ती के वत्सगोत्र के ब्राह्मण थे। प्रव्रजित होकर बड़ी श्रद्धा के साथ वे जहाँ तहाँ से धर्म सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करते थे। लेकिन उनके अध्ययन में कोई क्रम नहीं था। सारिपुत्र ने क्रमबद्ध रूप से धर्म सीखने की विधि उन्हें बताई। उसके बाद उस भिक्षु ने न केवल

विधिवत् धर्म का अध्ययन किया अपितु अर्हत् पद को भी प्राप्त किया। परम शान्ति प्राप्त कर उक्खेपकटवच्छ स्थविर ने यह उदान गाया

वहुत वर्षों से उक्खेपकटवच्छ ने
धार्मिक ज्ञान का संचय किया है।
वह (अब) वैठकर वड़ी प्रसन्नता के साथ
उसे गृहस्थों को वताता है ॥६५॥

६६. मेघिय

कपिलवस्तु के एक शाक्य राजकुमार। प्रव्रजित होकर कुछ समय तक भगवान् की सेवा भी करते थे। वाद में भगवान् से शिक्षा ग्रहण कर, तदनुसार ध्यान करके परम शान्ति को प्राप्त हुए। मेघिय स्थविर ने इस उदान द्वारा अपना विमुक्ति-सुख प्रकट किया है

सभी धर्मों में पारंगत महावीर ने (मुझे)
उपदेश दिया था।
उनका उपदेश सुनकर स्मृतिमान् हो
मैं उनके निकट ही रहता था।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया है
और वुद्ध-शासन को पूरा किया है ॥६६॥

६७ एकधम्मसवणिय

सेतव्य के एक सेठ के पुत्र। वहीं के सिंसपावन में भगवान से उपदेश सुन कर प्रव्रजित। परम शान्ति पाने के वाद एक दिन धम्मसवणिय ने इन शब्दों में उदान गाया

मेरी वासनायें जला दी गयीं।
सभी भय उन्मूलन किये गये।
जन्म रूपी संसार क्षीण हो गया।
अव मेरे लिए पुनर्जन्म नहीं ॥६७॥

६८ एकुदानिय

श्रावस्ती के एक सेठ के पुत्र। भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद पाए। एकुदानिय स्थविर ने परमानन्द में यह उदान गाया।

समाधि की उत्तम अवस्था को प्राप्त
अप्रमादी ज्ञान-मार्ग में शिक्षित,
चञ्चलता-रहित, उपशान्त, सदा स्मृतिमान्
मुनि को शोक नहीं होवे ॥६८॥

६९ छन्न

कपिलवस्तु के राज-घराने के दासी-पुत्र। प्रव्रजित होने के बाद राज परिवार के सम्बन्ध के कारण बड़े अभिमान के साथ रहते थे। इसके लिए छन्न को विनय के अनुसार दण्ड भी दिया गया था। बाद में अपनी भूल को समझ कर योगाभ्यास में तत्पर हो वे निर्वाण को प्राप्त हुए। निर्वाण प्राप्ति के आनन्द में छन्न स्थविर ने यह उदान गाया।

उत्तम सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट
मधुर धर्म को मैंने सुना।
अमृत की प्राप्ति के लिए निर्वाण-पथ के
महा ज्ञानी द्वारा निर्दिष्ट पथ पर (मैं) चला ॥६९॥

७० पुण्ण

सुनापरन्त देश के सुप्पारक पट्टन में उत्पन्न। वे व्यापार करने के लिए श्रावस्ती गये। वहाँ पर भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हुए। अर्हत् पद पाने के बाद पुण्ण ने अपने देश में जाकर धर्म का प्रचार किया और देहावसान के पहले यह उदान गाया।

यहाँ शील ही श्रेष्ठ है प्रज्ञा ही उत्तम है।
मनुष्यों और देवताओं में

शील तथा प्रज्ञा से ही
(यथार्थ) विजय होती है ॥७०॥

आठवाँ वर्ग

७१. वच्छपाल

राजगृह के धनी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित हो परमपद पाने के बाद वच्छपाल स्थविर ने यह उदान गाया

जो सूक्ष्म (तत्त्व) में निपुण है,
अर्थ-दर्शी है, मतिमान् है, कुशल है,
विनीत है और ज्ञानियों की संगति करता है,
उसे निर्वाण सुलभ है ॥७१॥

७२. आतुम

श्रावस्ती के एक सेठ के पुत्र। एक दिन जब माता ने विवाह का प्रस्ताव रक्खा तो वे घर से भाग कर प्रव्रजित हुए। माता विहार में जाकर उन्हें विवाह के लिए फिर प्रलोभन देने लगी। उस अवसर पर आतुम स्थविर ने इस उदान में अपना उद्देश्य प्रकट किया .

अच्छी तरह बढ़े हुए डालियों वाले
करीर को निकालना जिस प्रकार कठिन है,
(उसी प्रकार) स्त्री के लाने पर मेरी दशा भी होगी।
मुझे अनुमति दें, मैं अब प्रव्रजित हो गया हूँ ॥७२॥

७३. माणव

श्रावस्ती के धनी ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न। छ वर्ष तक घर के अन्दर ही उनका पालन-पोषण होता था और बाहरी ससार के दुःख

के रूप उनके सामने कभी नहीं आये। सात वर्ष की आयु में, सिद्धार्थ कुमार की तरह, चार निमित्तों को देख कर वे घर से निकल कर प्रव्रजित हुए और अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद मानव ने यह उदान गाया।

जीर्ण दुःखित, व्याधि-ग्रस्त,
आयु-समाप्त और मृत मनुष्य को देख कर,
विषय-वासनाओं को त्याग कर
मैं प्रव्रजित हुआ ॥७३॥

७४ सुयामन

वैशाली के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् से उपदेश सुन कर वे प्रव्रजित हो परमपद को प्राप्त हुए। सुयामन ने इस उदान में अपनी प्राप्ति को प्रकट किया है।

काम-तृष्णा वैमनस्य आलस्यीनता
अभिमान और संशय
इस भिक्षु में बिलकुल नहीं है ॥७४॥

७५ सुसारद

सारिपुत्र स्थविर के गाँव के ही एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। सारिपुत्र से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो वे अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद सुसारद स्थविर ने यह उदान गाया।

सत्पुरुषों का दर्शन कल्याणकारी है,
उससे संशय का विच्छेद होता है
और बुद्धि की वृद्धि होती है।
वे मूर्ख को भी पण्डित बना देते हैं।
इसलिए सत्पुरुषों की संगति करे ॥७५॥

७६. पियञ्जह

वैशाली के लिच्छवी राजकुमार। वे बड़े रणकामी थे। भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। पियञ्जह स्थविर ने परमानन्द में यह उदान गाया

अभिमानी लोगों में विनीत होवे।
(गुणों से) गिरे हुए लोगों में उन्नति करे।
(आर्य मार्ग का) अनुसरण न करने वालों में,
उसका अनुसरण करे।
जहाँ संसारी लोग रमण करते हैं वहाँ रमण न करे ॥७६॥

७७. हत्थारोहक पुत्र

श्रावस्ती के एक हाथीवान के पुत्र। शिक्षा प्राप्त कर वे भी चतुर हाथीवान बने। बाद में प्रव्रजित हो उसी चतुराई के साथ चित्त का दमन कर उन्होंने यह उदान गाया

पहले यह चित्त मनमाना जिधर चाहा उधर
स्वच्छन्द विचरता रहा।
उसे आज मैं सावधानी के साथ
वैसा ही अपने वश में लाऊँगा जैसा कि
अंकुश ग्रहण करनेवाला मस्त हाथी को ॥७७॥

७८. मेण्डसिर

साकेत के एक सम्पन्न परिवार में उत्पन्न। अञ्जन वन में भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो परम शान्ति की प्राप्ति के बाद मेण्डसिर स्थविर ने यह उदान गाया

अनेक जन्मों तक कहीं अन्त न पा कर
संसार में दौड़ता रहा।

दुःख में पड़े हुए मेरी
दुःख-राशि (अब) छूट गई है ॥७८॥

७९ रक्खित

देवदह के एक राजकुमार। जो पाँच सौ शाक्य और कोलिय राजकुमार भगवान् के पास प्रव्रजित हुए थे उनमें से एक थे। अर्हत् पद प्राप्ति के बाद रक्खित स्थविर ने यह उदान गाया।

मेरा सारा राग क्षीण हो गया।
मेरा सारा द्वेष नष्ट किया गया।
मेरा सारा मोह समाप्त हो गया।
मैं शान्त हूँ निर्वाण को प्राप्त हूँ ॥७९॥

८० उग्ग

कोशल देश के उग्ग नगर के एक सेठ के पुत्र। भगवान् से उपदेश सुनकर प्रव्रजित। परमपद प्राप्ति के बाद उग्ग स्थविर ने इस उदान में अपना विमुक्ति-सुख प्रकट किया।

जो कर्म मैंने किया था
थोड़ा या बहुत
वह सब पूर्ण रूप से क्षीण हो गया।
अब (मेरे लिए) पुनर्जन्म नहीं है ॥८०॥

नवाँ वर्ग

८१ समितिगुप्त

श्रावस्ती के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। प्रव्रज्या के बाद किसी पूर्व पापकर्म के कारण उनको कोढ़ हुआ और विकल होते रहे। एक

दिन धर्म-सेनापति सारिपुत्र रोगी भिक्षुओं को देखने के लिए रोगियों की शाला में गये। वहाँ पर समितिगुत्त को देखकर उन्होंने दुःख पर उपदेश दिया। उससे संवेग पाकर वहीं ध्यान-भावना कर अर्हत्व को प्राप्त हो समितिगुत्त स्थविर ने यह उदान गाया

जो पापकर्म दूसरे जन्मों में मैंने
पहले किया था, उसे यहाँ भोगना है।
(इसके बाद) कुछ शेष नहीं रह जाता ॥८१॥

८२. कस्सप

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। बचपन में ही पिता का देहान्त हुआ था और माता ने पुत्र का पालन पोषण किया। एक दिन जेतवन में भगवान् से उपदेश सुन कर, प्रव्रजित होने के बाद भगवान् के साथ चारिका के लिए जाने की उन्हें अभिलाषा हुई। माता ने बड़े हर्ष के साथ उन्हें अनुमति दे दी। प्रव्रजित हो अर्हत् पद पाने के बाद कस्सप स्थविर ने माता के उन्हीं शब्दों में उदान गाया जिनसे प्रेरणा मिली थी

जहाँ जहाँ भिक्षा सुलभ है,
क्षेम है, अभय है, पुत्र! वहीं जा
और शोक के वश में न आ जा ॥८२॥

८३. सीह

मल्ल जनपद के एक राजकुमार। भगवान् से उपदेश सुनकर प्रव्रजित हुए। लेकिन उनका मन विक्षिप्त रहता था। एक दिन भगवान् ने उन्हें उपदेश दिया। उससे प्रेरणा प्राप्त कर सीह ने अर्हत् पद को प्राप्त हो भगवान् के शब्दों में ही यह उदान गाया

धीर ! रात दिन तन्द्रा रहित हो, अप्रमादी हो विहरो
कल्याणकारी धर्म का अभ्यास करो।
और शीघ्र ही पुनर्जन्म का त्याग करो ॥८३॥

८४ नीत

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भिक्षुओं के जीवन को देखकर वे संघ में प्रव्रजित हुए। लेकिन ध्यान-भावना न कर रातभर सोते थे और दिनभर लोगों के साथ बातचीत करते थे। एक दिन भगवान् ने उपदेश द्वारा उन्हें सचेत किया। संवेग पाकर उद्योगी हो अर्हत् पद को पाकर भगवान् के सम्मुख में ही नीत स्थविर ने यह उदान गाथा :

जो रातभर सोकर दिन को
मेल-मिलाप में लगा रहता है
वह मूर्ख किस प्रकार
दुःख का अन्त करेगा ? ॥८४॥

८५ सुनाग

नालक गाँव के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। सारिपुत्र के एक मित्र। धर्मसेनापति से उपदेश सुनकर प्रव्रजित हो वे अर्हत् पद को प्राप्त हुए। इस उदान में सुनाग स्थविर ने अपने महान अनुभव को प्रकट किया :

जो चित्त के विषय में कुशल है
अनासक्ति रस को जान गया है,
ध्यान में कुशल स्मृतिमान् वह
निरामिष (= निर्वाण) सुख को प्राप्त होता है ॥८५॥

८६ नागित

कपिलवस्तु के एक शाक्य राजकुमार। प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त कर नागित स्थविर ने यह उदान गाया :

इस धर्म के बाहर नाना मतवादियों का
बताया हुआ जो मुक्ति का मार्ग है,
वह इस (अष्टांगिक मार्ग) जैसा नहीं है।
भगवान् संघ को इस प्रकार उपदेश देते हैं कि
मानो वे हथेली की वस्तु को दिखाते हैं ॥८६॥

८७. पविट्ठ

मगध के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। वे परिव्राजक हो कर विचरण करते थे। सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन के विषय में सुन कर वे भिक्षु संघ में प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद पविट्ठ स्थविर ने यह उदान गाया

मैंने स्कन्धों को यथार्थ रूप से देख लिया।
सभी भव विनष्ट किये गये।
जन्म रूपी संसार क्षीण हो गया।
अब (मेरे लिए) पुनर्जन्म नहीं है ॥८७॥

८८. अज्जुन

श्रावस्ती के एक सेठ के पुत्र। पहले वे निगण्ठ श्रावक थे। बाद को भगवान् के पास प्रव्रजित हो, अर्हत् पद को प्राप्त कर अज्जुन स्थविर ने यह उदान गाया

मैं अपने आपको (संसार रूपी) जल से उठा कर
(निर्वाण रूपी) स्थल पर उतार सका।
(संसार) प्रवाह में वहते समय मैंने
चार आर्य सत्यों को विदीर्ण किया ॥८८॥

८९. देवसभ

एक मण्डलेश्वर के पुत्र। पिता के पद पर आने के कुछ दिन बाद

भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। परमानन्द में वेणसम स्थविर ने यह उदान गाथा :

(वासना) पंक से उत्तीर्ण हुआ हूँ।
(दृष्टि) पाताल परित्यक्त हूँ।
(संसार) प्रवाह तथा (मानसिक) ग्रन्थियों से मुक्त हूँ।
सभी प्रकार के अहंकार विनष्ट हैं ॥८९॥

९० सामिदत्त

राजगृह के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त। एक दिन सब्रह्मचारियों में अपनी प्राप्ति को प्रकट करते हुए सामिदत्त स्थविर ने यह उदान गाथा :

मैंने पाँच स्कन्धों को अच्छी तरह जान लिया है,
उनकी जड़ें उखाड़ दी गयी हैं।
जन्म रूपी संसार क्षीण है
अब पुनर्जन्म नहीं है ॥९०॥

दसवाँ वर्ग

९१ परिपुण्णक

कपिलवस्तु के एक शाक्य राजकुमार। वे प्रति दिन सौ प्रकार के भोजनों का स्वाद लेते थे। निर्वाण के अमृत रस के विषय में सुन कर वे प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद परिपुण्णक स्थविर ने सामिष रस और निरामिष रस के बीच जो अन्तर है उसे दिखाते हुए यह उदान गाथा :

जिस अमृत का रस आज मैंने पाया है,
सौ भोजनों का रस भी उतना स्वादिष्ट नहीं है।
अपरिमित-दर्शी गौतम बुद्ध ने
(अमृत) धर्म का उपदेश दिया है ॥९१॥

९२. विजय

श्रावस्ती के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। तपस्वी हो वह एक अरण्य में ध्यान करते थे। बाद को भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो परमपद को प्राप्त हुए। विजय स्थविर ने मुक्त पुरुष की गति की ओर सकेत करते हुए यह उदान गाया है

जिसके (चित्त) मल क्षीण हो गये हैं,
जो आहार में आसक्त नहीं,
शून्य और अनिमित्त विमोक्ष जिसका गोचर है,
उसकी गति, आकाश में पक्षियों
की गति की भाँति अज्ञेय है ॥९२॥

९३. एरक

श्रावस्ती के एक सम्पन्न परिवार में उत्पन्न। वे बहुत ही सुन्दर थे। उचित समय पर एक योग्य कन्या से उनका विवाह हो गया। एक दिन भगवान् से उपदेश सुनने पर उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ। वे भगवान् के पास प्रव्रजित हो ध्यान भावना करने लगे। लेकिन उनके पूर्व कुसस्कार इतने प्रबल हो गये कि वे भिक्षु जीवन से उदास हो गये। भगवान् ने उनकी चित्त-प्रवृत्ति को देख कर एक दिन उन्हें सचेत करते हुए उपदेश दिया। उससे प्रेरणा पा कर उद्योगी हो वे शीघ्र ही अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद एरक स्थविर ने भगवान् के शब्दों में ही यह उदान गाया

परक ! विषय वासनायें दुःखदायी हैं
परक ! विषय वासनायें सुखदायी नहीं ।
परक ! जो विषय वासनाओं की कामना करता है
सो दुःख की ही कामना करता है ।
परक ! जो विषय वासनाओं की कामना नहीं करता
सो दुःख की भी कामना नहीं करता ॥९३॥

९४ मेघजि

मगध के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न । तरुण अवस्था में तपस्वी हो कर एक अरण्य में वास करते थे । बाद में भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो परम शान्ति को प्राप्त हुए । एक दिन मेघजि ने इस उदान में भगवान् की प्रशंसा की :

श्रीमान् शाक्यपुत्र उन भगवान् को नमस्कार हो ।
श्रेष्ठ (निर्वाण) को प्राप्त उन्होंने
इस श्रेष्ठ धर्म का उपदेश दिया है ॥९४॥

९५ चक्खुपाल

श्रावस्ती के एक धनी परिवार में उत्पन्न । महापाल और चूळपाल दो भाई थे । महापाल भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हुए । वे और साठ भिक्षुओं के साथ श्रावस्ती से बहुत दूर एक अरण्य में जा कर ध्यान-भावना करने लगे । महापाल बिना सोये दिन रात परिश्रम करते थे । उनकी दोनों आँखें खराब हो गयीं और वे अन्धे हो गये । इससे उनका नाम पड़ा चक्खुपाल । कुछ दिन के बाद और सब्रह्मचारियों के साथ ही चक्खुपाल भी अर्हत् पद को प्राप्त हुए । दूसरे भिक्षु श्रावस्ती लौट आये और चक्खुपाल वहीं रह गये । जब चूळपाल ने अपने भाई के विषय में सुना तो उसने अपने लड़के को उन्हें लिवा लाने के लिए भेज दिया । क्योंकि रास्ता संकटपूर्ण था इस

लिए उस लड़के को चीवर पहना कर श्रामणेर के वेष में भेज दिया। जब श्रामणेर चक्खुपाल स्थविर को ले कर आ रहा था तो जगल में उसे एक स्त्री का गीत सुनाई दिया। वह भिक्षु को वहीं बैठा कर जंगल में जा उस स्त्री से मिलकर आया। जब भिक्षु ने देर करने का कारण पूछा तो उसने सारी बात बतायी। तब चक्खुपाल ने उसके साथ जाने से इनकार किया। कहते हैं कि इन्द्र ने मनुष्य के वेष में आ कर भिक्षु को श्रावस्ती तक पहुँचा दिया। जो शब्द चक्खुपाल स्थविर ने उस श्रामणेर से कहे थे उन्हीं को यहाँ पर उदान के रूप में दिया गया है

मै अन्धा हूँ, मेरे नेत्र नष्ट हो गये हैं,
जंगल की राह पर आ गया हूँ।
यहाँ पर पड़े रहने पर भी
पापी साथी के साथ नहीं जाऊँगा ॥९५॥

९६. खण्डसुमन

पावा के मल्ल राजकुमार। भगवान् से उपदेश सुनकर प्रव्रजित हो उसके बाद खण्डसुमन स्थविर ने अपने किसी पूर्व कर्म को लक्ष्य करके यह उदान गाया

एक पुष्प चढ़ा कर मै अस्सी कोटि वर्ष
स्वर्गों में आनन्द लेता रहा।
शेष (पुण्य) के फल स्वरूप
अब शान्त हो गया हूँ ॥९६॥

९७. तिस्स

रोरुव के राजा के पुत्र। पिता की मृत्यु के बाद वे गद्दी पर बैठ गये। एक बार उन्होंने बिम्बिसार राजा के पास बहुत पुरस्कार भेजे। उसके बदले मगध नरेश ने भगवान् की जीवनी को एक कपड़े पर

चित्रित कराकर प्रतीत्य समुत्पाद को सोने की पट्टी पर लिखवा कर उन्हें तिस्स के पास भेज दिया। तिस्स उससे इतने प्रभावित हुए कि राज-पाट छोड़कर भगवान् के पास प्रव्रजित हुए। अर्हत् पद पाने के बाद तिस्स स्थविर ने यह उदान गाया।

कांसे और सोने के बने हुए बहुमूल्य
और सुन्दर पात्रों को त्याग कर
मिट्टी के पात्र को मैंने लिया है।
यह मेरा दूसरा अभिषेक है ॥९७॥

९८ अभय

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् से उपदेश सुनकर प्रव्रजित। एक दिन भिक्षा के लिए जब वे गाँव में गये तो सुन्दर स्त्री को देख कर उनके मन में विकार उत्पन्न हुआ। इस घटना पर मनन करते हुए वे और भी उद्योग करने लगे और शीघ्र ही अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उस घटना को स्मरण करके अभय स्थविर ने यह उदान गाया।

रूप को देख कर प्रिय निमित्त को
मन में लाने पर स्मृति नष्ट हो गयी।
जो आसक्त चित्त हो आनन्द लेता है
उसका मन उसमें पैठ जाता है।
(इस प्रकार) भव के मूल रूपी भव की ओर
ले जाने वाले उसके आश्रव बढ़ जाते हैं ॥९८॥

९९ उत्तिय

कपिलवस्तु के एक शाक्य राजकुमार। भगवान् से उपदेश सुन कर वे भी प्रव्रजित हुए। एक दिन भिक्षा के लिए जब वे गाँव में गये तो किसी स्त्री का गीत सुन कर उनके मन में विकार उत्पन्न हुआ।

विहार में लौट कर उस घटना पर मनन करते हुए वे और भी उद्योग करने लगे और शीघ्र ही अर्हत् पद को प्राप्त हुए। फिर उक्त घटना को लक्ष्य करके उत्तिय स्थविर ने यह उदान गाया

शब्द को सुन कर, प्रिय निमित्त को
मन में लाने पर स्मृति नष्ट हो गयी।
जो आसक्त-चित्त हो आनन्द लेता है,
उसका मन उसमें पैठ जाता है।
(इस प्रकार) संसार की ओर ले जाने वाले
उसके आश्रव बढ़ जाते हैं ॥९९॥

१०० देवसभ

कपिलवस्तु के ही एक शाक्य राजकुमार। निग्रोधाराम में भगवान् के पास प्रव्रजित हो परम पद को प्राप्तकर देवसभ ने यह उदान गाया

जो सम्यक् उद्योग से युक्त है
स्मृतिप्रस्थान जिसका विषय है,
विमुक्ति रूपी कुसुमों से आच्छादित,
आश्रव रहित वह शान्ति को प्राप्त होगा ॥१००॥

ग्यारहवाँ वर्ग

१०१. वेलट्ठकानि

श्रावस्ती के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् के पास प्रव्रजित हो वे एक अरण्य में ध्यान-भावना करते थे। बाद को आलसी हो कर लोगों के साथ गपशप में समय बिताते थे। एक दिन भगवान् ने उन्हें उपदेश दे कर सचेत कर दिया। संवेग पा कर उद्योगी हो वे

अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद वेणुकामि स्थविर ने भगवान् के शब्दों में ही यह उदान गाया।

गृहस्थ जीवन को त्यागने पर भी
जिसका कर्तव्य पूरा नहीं हुआ
जो मुखर है पेटू है आलसी है
भोजन से पुष्ट विशाल सूकर की तरह
वह मूर्ख बारम्बार जन्म लेता है ॥१०१॥

१०२ सेतुच्छ

एक मण्डलेश्वर के पुत्र। पिता की मृत्यु पर वे गद्दी पर बैठ गये। लेकिन शीघ्र ही वे राज्य भी खो बैठे। उसके बाद वह इधर-उधर फिरते थे। एक दिन भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो वे उद्योग करने लगे और अर्हत् पद को प्राप्त कर अपने अनुभव के प्रकाश में उन्होंने यह उदान गाया।

जो अभिमान् द्वारा वंचित हैं संस्कारों से मलिन हैं
लाभ और अलाभ से विचलित वे
समाधि को प्राप्त नहीं होते ॥१ २॥

१०३ बन्धुर

सीलवती नगर के एक सेठ के पुत्र। जब वे किसी काम से श्रावस्ती गये तो वहाँ पर भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो परमपद को प्राप्त हुए। उसके बाद अपने देश में जा कर सीलवती के राजा को चार आर्य-सत्यों का उपदेश दिया। राजा ने प्रसन्न हो कर उनके लिए एक विहार बनवा दिया। जब बन्धुर विहार संघ को दे कर श्रावस्ती जाने लगे तो कुछ भिक्षुओं ने उनसे वहीं रहने का अनुरोध किया। उस अवसर पर बन्धुर स्थविर ने यह उदान गाया।

मुझे इससे प्रयोजन नहीं,
मैं धर्म रस से सुखी हूँ, सन्तुष्ट हूँ।
श्रेष्ठ और उत्तम रस को पी कर
मैं विष का सेवन करना नहीं चाहता ॥१०३॥

१०४. खित्तक

श्रावस्ती के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। ऋद्धि-बल प्रदर्शन में कुशल थे। एक दिन उसको लक्ष्य करके खित्तक स्थविर ने यह उदान गाया

विपुल प्रीति-सुख का स्पर्श पा कर
मेरा शरीर हलका हो गया है।
वायु से उड़ने वाली रुई की तरह
मेरा शरीर भी आकाश में चलता है ॥१०४॥

१०५. मलितवम्भ

भरुकच्छ के एक ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न। वे प्रव्रजित हो वैसे स्थानो में रहते थे जहाँ भोजन को छोड़ और तीन प्रत्यय सुलभ थ। इस प्रकार अल्पेच्छुक हो, योगाभ्यास कर वे अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद अपनी चर्य्या को लक्ष्य करके मलितवम्भ स्थविर ने यह उदान गाया

उदासीनता में भी न रहे।
जहाँ सुख ही सुख हो
वहाँ से भी प्रस्थान करे।
जो स्थान अनर्थकारी हो
विचक्षण वहाँ वास न करे ॥१०५॥

१०६ सुहेमन्त

सीमाप्रान्त के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। संकस्स में भगवान् से उपदेश सुन कर परम ज्ञान को प्राप्त कर वे भिक्षुओं को उपदेश देते थे। एक दिन सुहेमन्त स्थविर ने अपनी ज्ञान को व्यक्त करते हुए यह उदान गाथा :

सौ संकेतों और सौ लक्षणों से युक्त
किसी अर्थ का मूर्ख एक ही अंग देखता है
और पण्डित सौ (अंगों) को देखता है ॥१०६॥

१०७ धम्मसव

मगध के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त कर धम्मसव स्थविर ने यह उदान गाया :

सोच समझ कर मैं घर से
बेघर हो प्रव्रजित हुआ।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया
और बुद्ध-शासन को पूरा किया ॥१०७॥

१०८ धम्मसव पितु

अपने पुत्र का अनुसरण कर वे भी प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद स्थविर ने यह उदान गाया।

एक सौ बीस वर्ष की आयु में मैं
बेघर हो प्रव्रजित हुआ।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया है
और बुद्ध-शासन को पूरा किया है ॥१०८॥

१०९ संघरक्खित

श्रावस्ती के सम्पन्न परिवार में उत्पन्न। प्रव्रजित हो एक समवयस्क ब्रह्मचारी के साथ किसी अरण्य में आश्रम ध्यान-भावना करते थे। वहाँ से

दोनों रहते थे वहाँ से थोड़ी ही दूर पर एक मृगी ने बच्चे को जन्म दिया था। वात्सल्य के कारण वह खाने पीने के लिए अधिक दूर नहीं जाती थी। इससे उसका शरीर दुर्बल हो गया था। संघरक्खित स्थविर इसे देख कर तृष्णा पर मनन करके अर्हत् पद को प्राप्त हुए। इसके बाद अपने साथी की चित्त प्रवृत्ति को देख कर मृगी को लक्ष्य करके उन्हें उपदेश दिया। संवेग पा कर उद्योगी हो वे भी अर्हत् पद को प्राप्त हुए। वह उपदेश इस उदान में आया है

जो एकान्त में भी परमहितानुकम्पी (बुद्ध) के
शासन का अनुसरण नहीं करता,
वह असंयत इन्द्रिय वाला उसी प्रकार रहता है,
जिस प्रकार तरुण मृगी वन मे ॥१०९॥

११०. उसभ

कोशल के एक सम्पन्न परिवार में उत्पन्न। प्रव्रजित हो एक गुफा में योगाभ्यास करते थे। वर्षा ऋतु मे एक दिन गुफा से निकलने पर लहलहाती हुई प्रकृति को देख कर उनके मन में हुआ कि इस ऋतु में मुझे भी आध्यात्मिक वृद्धि करनी चाहिए। इस प्रकार उद्योग कर शीघ्र ही परम पद को प्राप्त हो उसभ स्थविर ने यह उदान गाया :

नई वर्षा से सिक्त हो पर्वतों पर वृक्ष लहराते हैं।
(यह ऋतु) एकान्त-प्रिय, अरण्यवासी उसभ के मन में
अधिकाधिक स्फूर्ति उत्पन्न करती है ॥११०॥

बारहवाँ वर्ग

१११. जेन्त

मगध के एक मण्डलेश्वर के पुत्र। युवावस्था में ही उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ। फिर भी वे इस दुविधा मे पड़ गये कि गृहस्थ जीवन

में रहूँ या प्रव्रजित होऊँ। एक दिन वे भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो योगाभ्यास कर अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद उक्त दुविधा को लक्ष्य करके केन्त स्थविर ने यह उदान गाथा :

प्रव्रज्या दुष्कर है गृहवास दुखदाई है।
धर्म गम्भीर है, सम्पत्ति दुष्प्राप्य है।
एक न एक प्रकार से जीविका वृत्ति कठिन है।
इसलिए सदा अनित्य पर
मनन करना चाहिए ॥१११॥

११२ वच्छगोत

राजगृह के धनी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। ब्राह्मण-शास्त्रों में पारंगत हो वे परिव्राजक के वेष में विचरण करते थे। अन्त में भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो परम ज्ञान को प्राप्त हो वच्छगोत स्थविर ने यह उदान गाथा :

मैं त्रैविद्य हूँ महा ध्यानी हूँ
और चित्त शान्ति प्राप्त करने में कुशल हूँ।
मैंने सदर्थ को प्राप्त किया
और बुद्ध-शासन को पूरा किया ॥११२॥

११३ वनवच्छ

राजगृह के धनी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् के पास प्रव्रजित हो अरण्य में योगाभ्यास कर अर्हत् पद को प्राप्त। उसके बाद धर्मोपदेश द्वारा अपने बन्धु वर्ग की सेवा करने के लिए वे राजगृह गये। बन्धुओं ने राजगृह के किसी विहार में रहने के लिए उनसे अनुरोध किया। जिस पर वनवच्छ स्थविर ने इस उदान में अपनी रुचि को व्यक्त किया :

स्वच्छ जलवाले, विस्तृत शिलापटवाले,
लटूरों तथा दूसरे पशुओं से सेवित,
जल में उत्पन्न शैवाल से आच्छादित
जो पर्वत है वे मुझे प्रिय हैं ॥११३॥

११४. अधिमुत्त

श्रावस्ती के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त। जो उपदेश अधिमुत्त स्थविर ने शरीर पर अधिक ध्यान देनेवाले कुछ सब्रह्मचारियों को दिया था वही इस उदान में आया है

जो जीवन के क्षीण होते जाने पर
शरीर पर अधिक ध्यान देता है,
और शारीरिक सुख की इच्छा करता है,
वह श्रमण-धर्म कैसे पूरा कर सकता है? ॥११४॥

११५. महानाम

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित हो एक पहाड़ पर ध्यान करते थे। लेकिन मन विक्षिप्त ही रहता था। इससे उदास हो पहाड़ से कूद कर आत्महत्या करने को सोचा। इस विचार से एक चोटी पर चढ़ कर वे अपने आपको धिक्कारते थे कि उनके मन में संवेग उत्पन्न हुआ। पापी विचार को छोड़ कर उद्योगी हो वे परमपद को प्राप्त हुए। महानाम के उक्त विचार इस उदान में दिये गये हैं

(महानाम!) अनेक शिखरों से युक्त, शाल वृक्षों से घिरे हुए
नेसादक नाम से विख्यात इस पर्वत से
तुम (अभी) वञ्चित हो जाओगे ॥११५॥

११६. पारासरिय

राजगृह के पारासर ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। त्रिवेद पारगत हो ब्राह्मण माणवकों को वेदों का अध्ययन कराते थे। बाद में भगवान्

से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो परम तत्व को प्राप्त कर पाराशरिय स्थविर ने यह उदान गाथा :

छः स्पर्श आयतनों को त्याग कर,
इन्द्रिय रूपी द्वारों को सुरक्षित और संयत बनाकर
पाप के मूल को बाहर निकाल कर,
मैंने आस्रवों के क्षय को प्राप्त किया ॥११६॥

११७ यस

बनारस के एक सेठ के पुत्र। वे विलासी जीवन व्यतीत करते थे। एक दिन वैराग्य उत्पन्न होने पर ऋषिपतन (सारनाथ) की ओर गये। उसी समय भगवान् धर्म-चक्र प्रथम उपदेश दे कर ऋषिपतन में विराजमान थे। भगवान् से यश की भेंट हुई। भगवान् से उपदेश सुनकर धर्म-चक्षु पा यश प्रव्रजित हुए। तब स्थविर यश ने इन शब्दों में उदान गाया।

अच्छे उबटन लगाकर, अच्छे वस्त्र पहनकर,
सभी आभूषणों से विभूषित हो
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया
बुद्ध-शासन का पूरा किया ॥११७॥

११८ किम्बिल

कपिलवस्तु के एक शाक्य राजकुमार। वे रूप पर मोहित रहते थे। एक दिन अनुपिया में भगवान् ने अपनी ऋद्धि-बल से उनके सामने एक सुन्दर कन्या का निर्माण किया। उनके देखते ही देखते वह सुन्दर कन्या धीरे-धीरे वृद्धावस्था को प्राप्त हो गई। इस परिवर्तन को देखकर किम्बिल के मन पर अनित्यता का गहरा प्रभाव पड़ा। आगे भगवान् से उपदेश सुनकर प्रव्रजित हो वे अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद किम्बिल स्थविर ने उस दृश्य को स्मरण करके यह उदान गाया :

मानो प्रहार खाकर (उसकी) आयु गिरती जाती है,
आयु के बीतने पर मैं अपने आप को भी
दूसरा ही देखता हूँ ॥११८॥

११९. वज्जिपुत्त

वैशाली के एक लिच्छवी राजकुमार। भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। भगवान् के महापरिनिर्वाण के बाद वज्जिपुत्त ने आनन्द को कुछ ऐसे शब्द कहे जिनसे उन्हें संवेग उत्पन्न हुआ। संवेग पाकर उद्योगी हो आनन्द अर्हत् पद को प्राप्त हुए। वज्जिपुत्त के जिन शब्दों से आनन्द स्थविर को संवेग उत्पन्न हुआ था वे ही इस उदान के अन्तर्गत हैं

हे गौतम ! वृक्ष की घनी छाया में बैठ कर,
शान्ति को हृदय में धारण कर ध्यान करो,
प्रमाद न करो। संलाप तुम्हें क्या करेगा ? ॥११९॥

१२०. इसिदत्त

अवन्ति के वेलु गाँव में उत्पन्न। मच्छिका खण्ड के अदृष्ट मित्र चित्त से भगवान् के विषय में पत्र पाकर प्रसन्न हो वे महाकात्यायन के पास प्रव्रजित हुए। अर्हत् पद पाने के बाद अपने उपाध्याय से आज्ञा लेकर भगवान् के दर्शन के लिए गए। जब भगवान् ने कुशल मंगल पूछा तो इसिदत्त स्थविर ने उचित जवाब देते हुए यह उदान गाया

मैंने पाँच स्कन्धों को अच्छी तरह जान लिया है,
उनके मूल विच्छिन्न हो गये हैं।
मैंने दुःख-क्षय और आश्रव-क्षय को प्राप्त किया है ॥१२०॥

पहला निपात समाप्त ॥

दूसरा निपात

तेरहवाँ वर्ग

१२१ उत्तर

राजगृह के एक विख्यात ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। ब्राह्मण-शास्त्र में पारंगत हो प्रसिद्ध हुए। मगध का महामात्य वस्सकार ने अपनी कन्या का विवाह उनसे करना चाहा। लेकिन वे विवाह प्रस्ताव को ठुकरा कर सारिपुत्र के पास प्रव्रजित हुए। एक दिन सारिपुत्र बीमार पड़े और उत्तर वैद्य को बुलाने निकले। रास्ते में एक तालाब के किनारे अपना पात्र रखकर उत्तर मुँह धोने के लिए नीचे उतरे। उसी समय सिपाहियों द्वारा पीछा किया हुआ एक चोर उधर आ निकला। वह चुराए हुए मणि-मुक्ताओं को भिक्षु के पात्र में छोड़कर भाग गया। भिक्षु के पात्र में चोरी का माल देखकर पुलिस उन्हीं को चोर समझकर वस्सकार के पास ले गये। वस्सकार ने भिक्षु को शूली पर चढ़ाने की सजा दे दी। जब भगवान् को यह बात मालूम हुई तो वे स्वयं वध-स्थल पर गये। उन्होंने उत्तर के सिर पर हाथ रखकर उनके पूर्व कर्म समझाते हुए उपदेश दिया। वहीं पर ध्यान-भावना कर अर्हत् पद को प्राप्त हो उत्तर शूली से उतरकर खड़े हो गये। इस घटना को देखकर लोग आश्चर्य चकित हो गये। तब संसार के स्वभाव और अपनी मुक्ति को स्पष्ट करके उत्तर स्थविर ने यह उदान गाया:

कोई भी भव नित्य नहीं, संस्कार भी शाश्वत नहीं,
वे (पाँच) स्कन्ध एक के बाद एक उत्पन्न होते हैं
और नाश हो जाते हैं ॥१२१॥

इस दुष्परिणाम को जानकर मैं संसार की कामना नहीं
करता।
सभी विषय-वासनाओं से निर्लिप्त हूँ,
मैंने आश्रवों के क्षय को प्राप्त किया है ॥१२२॥

१२२. पिण्डोल भारद्वाज

कोशाम्बी के राजा उद्देन के राजपुरोहित के पुत्र। त्रिवेद-पारङ्गत हो ब्राह्मण माणवकों को वेदों का अध्ययन कराते थे। बाद में सब कुछ त्याग कर राजगृह में प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। वे धर्म सम्बन्धी किसी भी प्रश्न का उत्तर देने को तैयार थे। इसलिए भगवान् ने सिंहनाद करनेवाले अपने शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ उन्हें घोषित किया। एक दिन एक पुराना साथी ब्राह्मण पिण्डोल भारद्वाज से मिलने आया। वह बड़ा ही लोभी था। पिण्डोल ने उसे उपदेश देकर दान देने को कहा। ब्राह्मण ने समझा कि पिण्डोल अपने लिए दान देने को कह रहा है। इस गलत धारणा को दूर करते हुए पिण्डोल स्थविर ने उस अवसर पर यह उदान गाया

यह बिना नियम का जीवन नहीं,
मुझे आहार प्रिय नहीं,
शरीर आहार पर स्थित है,
यह देखकर भिक्षा की खोज में जाता हूँ ॥१२३॥
कुलों में जो वन्दना और पूजा होती हैं,
(ज्ञानियों ने) उन्हें पङ्क कहा है।
सत्कार रूपी सूक्ष्म तीर को
नीच पुरुष द्वारा निकालना कठिन है ॥१२४॥

१२३. वल्लिय

श्रावस्ती के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत्व को प्राप्त कर वल्लिय स्थविर ने यह उदान गाया

(चित्त रूपी) वानर पञ्चद्वार रूपी कुटी में
प्रवेश कर बारम्बार शोर करता हुआ
एक द्वार से दूसरे पर जाता है ॥१२५॥
वानर ! खड़े रहो दौड़ो नहीं।
तुम्हारी दशा पहले जैसी नहीं है।
प्रज्ञा द्वारा तुम्हारा निग्रह हुआ है
(अब) तुम दूर नहीं जा सकोगे ॥१२ ॥

१२४ गङ्गातीरिय

श्रावस्ती के एक कुलपुत्र। नाम था दत्त। गङ्गा के तट पर रहने के कारण बाद में गङ्गातीरिय नाम पड़ा। प्रव्रजित हो गङ्गा के तट पर कुटी बनाकर मौन व्रत धारण कर ध्यान करते थे। एक मल्लाह उपासिका भोजन दान कर उनकी सेवा करती थी। एक वर्ष के बाद यह देखने लिए कि भिक्षु मौन व्रती है या मूक उपासिका ने उनके शरीर पर दूध की कुछ बूँदें गिरा दीं। भिक्षु ने कहा कि भगिनी पर्याप्त है। इतना कहकर और भी उद्योगी हो तीसरे वर्ष अर्हत् पद को प्राप्त कर गङ्गातीरिय स्थविर ने यह उदान गाया :

मैंने गंगा नदी के किनारे तीन ताड़ पत्तों की कुटी बनाई
शव पर दूध गिराने का बरतन की तरह मेरा पात्र है
और मेरा पांशुकूल चीवर है ॥१२७॥
दो वर्षों के अन्दर मैंने एक ही शब्द कहा है
तीसरे वर्ष के अन्दर मैंने (अविद्या रूपी)
अन्धकार राशि को विदीर्ण किया ॥१२८॥

१२५ अजिन

श्रावस्ती के निर्धन ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न। प्रव्रजित हो अर्हत्

पद को प्राप्त। लेकिन किसी पूर्व कर्म के कारण अप्रसिद्ध रहते थे। एक दिन कुछ अबोध श्रामणेरों ने अजिन का उपहास किया था। उस अवसर पर उनमें संवेग उत्पन्न करने के लिए अजिन स्थविर ने यह उदान गाया

कोई त्रिविद्यक, मृत्यु-विजयी और आश्रवरहित भले ही हों,
यदि वे विख्यात न हों तो अज्ञ मूर्ख उनकी
अवहेलना करते हैं ॥१२९॥
यदि कोई व्यक्ति अन्न-पान के लाभी हो
और पापी स्वभाव का क्यों न हो,
वह उन (मूर्खों) से सम्मानित होता है ॥१३०॥

१२६ मेलजिन

बनारस के एक क्षत्रिय परिवार में उत्पन्न। वे अपनी विद्या के लिए बहुत ही प्रसिद्ध थे। ऋषिपतन में भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। सब्रह्मचारियों के बीच अपनी प्राप्ति को व्यक्त करते हुए मेलजिन स्थविर ने यह उदान गाया

उपदेश देते हुए शास्ता के पास मैंने धर्म सुना,
सर्वज्ञ, अपराजित (बुद्ध) में मुझे कोई शंका नहीं ॥१३१॥
सार्थवाह, महावीर, सारथियों में सर्वश्रेष्ठ (बुद्ध) में,
मार्ग में या (धार्मिक) रीति में
मुझे कोई शंका नहीं है ॥१३२॥

१२७. राध

राजगृह के एक ब्राह्मण। वृद्ध अवस्था में भगवान् के पास प्रव्रजित हो परमपद को प्राप्त कर राध स्थविर ने यह उदान गाया

जिस प्रकार अच्छी तरह न छाए हुए घर में
वर्षा का पानी प्रवेश करता है,
उसी प्रकार ध्यान भावना से रहित चित्त में
राग प्रवेश करता है ॥१३३॥
जिस प्रकार अच्छी तरह छाए हुए घर में
वर्षा का पानी प्रवेश नहीं करता
उसी प्रकार ध्यान भावना से अभ्यस्त चित्त में
राग प्रवेश नहीं करता ॥१३४॥

१२८ सुराध

राध के छोटे भाई। बड़े भाई का अनुसरण कर, प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त कर सुराध स्थविर ने यह उदान गाया :

मेरा जन्म क्षीण हो गया,
जिन-शासन को मैंने पूरा किया।
मैंने (तृष्णा) जाल को त्याग दिया
और भव-नदी (तृष्णा) को समाप्त किया ॥१३५॥
घर से बेघर हो जिस अर्थ के लिए
मैं प्रव्रजित हुआ, मैंने उस अर्थ को प्राप्त किया
और सभी बन्धनों को समाप्त किया ॥१३६॥

१२९ गौतम

राजगृह के ब्राह्मण। एक स्त्री के फेर में पड़कर सारी सम्पत्ति खो दिया। बाद में भगवान् के पास प्रव्रजित हो परमपद को प्राप्त कर गौतम स्थविर ने अपने जीवन को स्मरण करके यह उदान गाया :

जो मुनि स्त्रियों के फेर में नहीं पड़ते
वे सुख पूर्वक सोते हैं।

स्त्रियाँ सदा रक्षणीय है
और उनमें सत्य बहुत ही दुर्लभ है ॥१३७॥
काम ! तुम्हारी पीड़ा को समाप्त किया है,
अब हम तुम्हारे ऋणी नहीं हैं,
अब हम निर्वाण चलेंगे
जहाँ जाकर शोक नहीं करना है ॥१३८॥

१३०. वसभ

लिच्छवी राजकुमार। प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त कर एक विहार में रहते थे। लोग प्रसन्न होकर उनका बहुत ही सत्कार करते थे। वसभ का सत्कार इतना बढ़ गया कि कुछ लोगों को उनके विलासी बनने का सन्देह होने लगा। ये लोग एक दूसरे भिक्षु पर प्रसन्न थे जो देखने में बड़ा ही त्यागी था, लेकिन यथार्थ में पापाचारी था। एक दिन शक्र ने वसभ के पास आकर पापी भिक्षु के विषय में कहा। उक्त अवसर पर उस भिक्षु को लक्ष्य करके वसभ स्थविर ने यह उदान गाया

(पापी) पहले अपना नाश करता है
और बाद में दूसरों का नाश करता है।
(पक्षियों को फँसानेवाले) बहेलिया के पक्षी की तरह
वह अपना सर्वनाश करता है ॥१३९॥
बाहरी दिखावे से कोई श्रेष्ठ नहीं होता,
भीतर की शुद्धि से ही कोई श्रेष्ठ होता है।
हे सुजम्पति ! जिसमें पाप कर्म हैं वह नीच है ॥१४०॥

चौदहवाँ वर्ग

१३१ महाचुन्द

सारिपुत्र के छोटे भाई। बड़े भाई का अनुसरण कर प्रव्रजित हो वे भी परम शान्ति को प्राप्त हुए। अपने अनुभव को प्रकट करते हुए महाचुन्द स्थविर ने यह उदान गाथा।

जिज्ञासा से ज्ञान बढ़ता है ज्ञान से प्रज्ञा बढ़ती
प्रज्ञा से (मनुष्य) सदर्थ को जान लेता है,
जाना हुआ सदर्थ सुखकारी है॥१४१॥
दूर के एकान्त स्थानों का सेवन करे
और बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए आचरण करे,
यदि वहाँ मन न लगे तो
स्मृतिमान् संयमी हो संघ में वास करे॥१४२॥

१३२ जोतिदास

पाविय न जनपद के धनी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। महाकाश्यप पर प्रसन्न होकर उनके लिए अपने गाँव में एक विहार भी बनवाया था। बाद में प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। एक दिन गाँव में जाकर बन्धुओं को उपदेश देते हुए जोतिदास स्थविर ने कर्म विपाक को प्रकट करके यह उदान गाथा।

जो कठोर जन दारुण और अनेक प्रकार के
अन्य दुष्ट कामों से मनुष्यों को दुःख देते हैं
वे स्वयं उस गति को प्राप्त होते हैं,
क्योंकि कर्म-विपाक नाश नहीं होता॥१४३॥
मनुष्य जो अच्छा या बुरा कर्म करता है,

वह उस किये हुए कर्म का
उत्तराधिकारी हो जाता है ॥१४४॥

१३३. हेरञ्ञकानि

कोशल देश में उत्पन्न। चोरों को दण्ड देनेवाले कोशल नरेश के कर्मचारी थे। बाद में अपना काम छोटे भाई को सौंप कर प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। एक दिन गाँव में जाकर छोटे भाई को उपदेश दिया और वह भी भिक्षु बन गया। जो उपदेश भाई को दिया था वही इस उदान में आया है

दिन और रात बीतती जाती हैं,
जीवन निरुद्ध होता जाता है।
मनुष्यों की आयु वैसे ही क्षीण होती है
जैसा कि नालों का पानी ॥१४५॥
फिर भी पाप कर्म करनेवाला मूर्ख बाद में
होने वाले उसके कड़वी फल को नहीं समझता,
(बुरे कर्म का) फल बुरा ही होता है ॥१४६॥

१३४. सोममित्त

बनारस के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। त्रिवेद-पारङ्गत हो विमल थेर से उपदेश सुनकर प्रव्रजित हुए। लेकिन विमल आलसी थे। इस-लिए उन्हें छोड़कर महाकाश्यप के पास ध्यान-भावना कर परमपद को प्राप्त हुए। उसके बाद उपदेश द्वारा विमल थेर को भी सचेत कर दिया। वह उपदेश यहाँ उदान के रूप में दिया गया है

जिस प्रकार छेदे तख्ते पर चढ़ने से
(मनुष्य) समुद्र में डूबता है,
उसी प्रकार आलसी की संगति में आ कर
साधु पुरुष भी डूबता है।

चौदहवाँ वर्ग

१३१ महाचुन्द

सारिपुत्र के छोटे भाई। बड़े भाई का अनुसरण कर प्रव्रजित हो वे भी परम शान्ति को प्राप्त हुए। अपने अनुभव को प्रकट करते हुए महाचुन्द स्थविर ने यह उदान गाया :

जिज्ञासा से ज्ञान बढ़ता है ज्ञान से प्रज्ञा बढ़ती
प्रज्ञा से (मनुष्य) सत्य को जान लेता है,
जाना हुआ सत्य सुखकारी है ॥१४१॥
दूर के एकान्त स्थानों का सेवन करे
और बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए आचरण करे,
यदि वहाँ मन न लगे तो
स्मृतिमान् संयमी हो संघ में वास करे ॥१४२॥

१३२ जोतिदास

पादियत्थ जनपद के धनी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। महाकस्सप पर प्रसन्न होकर उनके लिए अपने गाँव में एक विहार भी बनवाया था। बाद में प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। एक दिन गाँव में जाकर जन्तुओं को कष्ट देते हुए जोतिदास स्थविर ने कर्म सिद्धान्त को लक्ष्य करके यह उदान गाया :

जो क्रूर जन ताड़न और अनेक प्रकार के
अन्य दुष्ट कामों से मनुष्यों को दुःख देते हैं
वे स्वयं उस गति को प्राप्त होते हैं,
क्योंकि कर्म-विपाक नाश नहीं होता ॥१४३॥
मनुष्य जो अच्छा या बुरा कर्म करता है

में ध्यान-भावना करते थे। श्मशान में काम करने वाली एक डोमनी ने भिक्षु के अशुभ कर्मस्थान के लिए एक शवके हाथ पैर तोड़ कर, सर फोड़ कर उन्हें ठीक कर उनके सामने रख दिया। उस पर मनन करते हुए वे शीघ्र ही परमपद को प्राप्त हुए। लाश को सामने देख कर महाकाल के मन में जो विचार उत्पन्न हुए उन्हें उदान का रूप दिया गया है

विशाल काय, कौवे की तरह काली स्त्री
एक जंघे और दूसरे जंघे को तोड़ कर,
एक बाहु और दूसरी बाहु को तोड़ कर,
दही के थाल की भाँति सर को फोड़ कर
उन्हें सामने रख कर बैठ गई है ॥१५१॥
(ऐसे दृश्य को देख कर) जो अज्ञ उपधि* करता है,
वह मूर्ख बारम्बार दुःख को प्राप्त होता है।
इसलिए लोग उपधि न करें।
(संसार में आकर) भिन्न सर वाला हो
(इस प्रकार) पड़े रहने का अवसर मुझे न मिले ॥१५२॥

१३७ तिस्स

राजगृह के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। त्रिवेद पारङ्गत हो ब्राह्मण माणवकों को वेदों का अध्ययन कराते थे। बाद में भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उनसे प्रसन्न हो लोग बहुत सत्कार, सम्मान करने लगे। इसे देख कर कुछ अबोध सब्रह्मचारी जलने लगे। इस अनुभव को लक्ष्य करके तिस्स स्थविर ने यह उदान गाया

सर मुँड़े हुए, चीवरधारी, अन्न, पान, वस्त्र और शयन के
लाभी (भिक्षु को भी) बहुत शत्रु हो जाते हैं ॥१५३॥

इसलिए आलसी अनुद्योगी को त्याग दे ॥१४७॥
जो एकान्तवासी हैं, निर्वाण में रत हैं
त्यागी हैं नित्य उद्योग करने वाले हैं
वैसे पण्डित आर्यों की संगति करे ॥१४ ॥

१३५ सम्भमित्त

श्रावस्ती के एक ब्राह्मण। प्रव्रजित हो एकान्त स्थान में रहते थे। एक दिन वह भगवान् के दर्शन के लिए आ रहे थे। रास्ते में हरिन के बच्चे को जाल में फँसा हुआ देखा। पास ही माँ बच्चे के लिए व्याकुल रहती थी। और थोड़ी दूर आने पर डाकुओं द्वारा सताये जाते उसे एक आदमी को देखा। सम्भमित्त ने उनके सामने कुछ ऐसे शब्द कहे जिनसे संवेग उत्पन्न हो वे उस आदमी को मुक्त कर सन्मार्ग पर आ गये। स्वयं सम्भमित्त भी इन घटनाओं से प्रेरणा प्राप्त कर उद्योगी हो शीघ्र ही अर्हत् पद को प्राप्त हुए। सम्भमित्त स्थविर के जिस उपदेश से डाकुओं को संवेग उत्पन्न हुआ वही उदान के रूप में दिया गया है।

लोग लोगों से संबन्द्ध हैं,
लोग लोगों पर आसक्त हैं।
लोग लोगों से पीड़ित हैं
लोग लोगों को पीड़ा पहुँचाते हैं ॥१४९॥
उसे पराये या अपने लोगों से क्या मतलब है!
वैसे बुरे मनुष्यों को छोड़कर
(शान्ति की प्राप्ति के लिए) चले ॥१५०॥

१३६ महाकाल

सेतव्य के व्यापारी कुल में उत्पन्न। व्यापार करने के लिए श्रावस्ती गये थे। वहाँ पर भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो एक श्मशान

में ध्यान-भावना करते थे। श्मशान में काम करने वाली एक डोमनी ने भिक्षु के अशुभ कर्मस्थान के लिए एक शवके हाथ पैर तोड़ कर, सर फोड़ कर उन्हें ठीक कर उनके सामने रख दिया। उस पर मनन करते हुए वे शीघ्र ही परमपद को प्राप्त हुए। लाश को सामने देख कर महाकाल के मन में जो विचार उत्पन्न हुए उन्हें उदान का रूप दिया गया है

विशाल काय, कौवे की तरह काली स्त्री
एक जंघे और दूसरे जंघे को तोड़ कर,
एक बाहु और दूसरी बाहु को तोड़ कर,
दही के थाल की भाँति सर को फोड़ कर
उन्हें सामने रख कर बैठ गई है ॥१५१॥
(ऐसे दृश्य को देख कर) जो अज्ञ उपधि* करता है,
वह मूर्ख बारम्बार दुःख को प्राप्त होता है।
इसलिए लोग उपधि न करें।
(संसार में आकर) भिन्न सर वाला हो
(इस प्रकार) पड़े रहने का अवसर मुझे न मिले ॥१५२॥

१३७ तिस्स

राजगृह के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। त्रिवेद पारङ्गत हो ब्राह्मण माणवकों को वेदों का अध्ययन कराते थे। बाद में भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उनसे प्रसन्न हो लोग बहुत सत्कार, सम्मान करने लगे। इसे देख कर कुछ अबोध सब्रह्मचारी जलने लगे। इस अनुभव को लक्ष्य करके तिस्स स्थविर ने यह उदान गाया

सर मुँड़े हुए, चीवरधारी, अन्न, पान, वस्त्र और शयन के
लाभी (भिक्षु को भी) बहुत शत्रु हो जाते हैं ॥१५३॥

सत्कार-सम्मान में इस दुष्परिणाम को
इस महाभय को जानकर, भिक्षु अल्प-लाभी हो
निर्लिप्त हो, स्मृतिमान् हो विचरण करे ॥१५४॥

१२८ किम्बिल

किम्बिल की कथा पहले परिच्छेद में बतायी गई है। परमपद को प्राप्त हो वे दूसरे ब्रह्मचारियों के साथ प्राचीनवंसदाय में अत्यन्त मैत्री पूर्वक रहते थे। भिक्षुओं के उस अपूर्व समागम को लक्ष्य कर के किम्बिल स्थविर ने यह उदान गाया।

प्राचीनवंसदाय में साथी शाक्यपुत्र
महान् सम्पत्ति को त्याग कर पात्र में
मिली भिक्षा से सन्तुष्ट हो विहरते हैं ॥१५५॥
उद्योगी निर्वाण में रत सदा दृढ़ पराक्रमी (वे)
लौकिक रति को त्याग कर धर्म-रति में रमते हैं ॥१५६॥

१२९ नन्द

राजा शुद्धोदन से महाप्रजापती की उत्पन्न पुत्र। इसलिए सिद्धार्थ कुमार के अनुज। जिस दिन नन्द का विवाह था उसी दिन भगवान् ने उन्हें, इच्छा के बिना ही प्रव्रजित किया। इसलिए उनका मन घर दौड़ता था और भिक्षु जीवन में नहीं लगता था। लेकिन थोड़े ही समय में भगवान् की शिक्षा द्वारा उनमें महान् परिवर्तन आया। नन्द उद्योगी हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद परमानन्द में नन्द स्थविर ने यह उदान गाया।

अज्ञान के कारण मैं (पहले) मण्डन के फेर में पड़ा था
अभिमानी था चञ्चल था
और कामराग से पीड़ित था ॥१५७॥
उपाय-कुशल आदित्य-बन्धु बुद्ध के कारण

ज्ञानपूर्वक आचरण कर मैंने
संसार से चित्त को ऊपर उठाया ।।१५८।।

१४० सिरिम

श्रावस्ती के सम्पन्न परिवार में उत्पन्न। सिरिवड्ढ के भाई। दोनों भाई भगवान् के पास प्रव्रजित हुए। सिरिम ध्यान-भावना कर शीघ्र ही अर्हत् पद को प्राप्त हुए। लेकिन वे छोटे भाई की तरह, जो कि अभी तक अर्हत् नहीं हुआ था, भाग्यशाली नहीं थे। इसलिए अबोध भिक्षु सिरिम का उपहास और सिरिवड्ढ की प्रशंसा करते थे। इसे लक्ष्य करके सिरिम स्थविर ने उन भिक्षुओं को कुछ ऐसे शब्द कहे जिनसे सिरिवड्ढ संवेग पाकर अर्हत् पद को प्राप्त हुआ। सिरिम के उन शब्दों को इस उदान के रूप में दिया गया है

दूसरे भले ही किसी की प्रशंसा करते हों
और वह स्वयं असमाहित हो तो
दूसरे बेकार ही प्रशंसा करते हैं,
क्योंकि वह स्वयं तो असमाहित है ॥१५९॥
दूसरे भले ही किसी की निन्दा करते हों
और वह स्वयं सुसमाहित हो तो
दूसरे बेकार ही निन्दा करते हैं,
क्योंकि वह स्वयं तो सुसमाहित है ॥१६०॥

पन्द्रहवाँ वर्ग

१४१. उत्तर

साकेत के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् से उपदेश सुनकर प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त। उसके बाद उत्तर स्थविर ने सब्रह्मचारियों के बीच यह उदान गाया

मैंने स्कन्धों को अच्छी तरह जान लिया है
मैंने तृष्णा को पूर्ण रूप से नाश किया है,
मैंने बोध्यांगों* का अभ्यास किया है,
और मैंने आस्रवों के क्षय को प्राप्त किया है ॥१६१॥

स्कन्धों को अच्छी तरह जानकर
तृष्णा को बाहर कर,
बोध्यांगों का अभ्यास कर,
आस्रवरहित हो मैं निर्वाण को प्राप्त हूँगा ॥१६२॥

१४२ भद्दजि

भद्दिय नगर के एक सेठ के पुत्र। बड़े ही वैभवशाली थे। बाद में भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। एक दिन गंगा नदी के तट पर भगवान् के कहने से भद्दजि ने ऋद्धि-बल दिखाया। एक बार भद्दजि महापनाद नामक प्रतापी और वैभवशाली राजा होकर पैदा हुए थे। उस समय का महल गंगा नदी में डूब गया था। भद्दजि ने ऋद्धि-बल से उसे भी ऊपर कर दिखाया और उसे लक्ष्य करके यह उदान गाया।

पनाद नामक वह राजा था
जिसका महल सोने का था।
वह (महल) मीलों तक विस्तृत था
और मीलों तक ऊँचा था ॥१६३॥

उसके सहस्रों तल्ले थे सैकड़ों दरवाजे थे
(जगह जगह पर) ध्वजे और तोरण लगे थे।
यहाँ सहस्र गन्धर्व सात मण्डलियों में नाचते थे ॥१६४॥

१४३. सोभित

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित हो परमपद को प्राप्त। पूर्व जन्मों को स्मरण करने में बहुत ही कुशल थे। इसलिए भगवान् ने सोभित को इस ज्ञान में कुशल अपने शिष्यों में श्रेष्ठ घोषित किया। अपने कौशल को लक्ष्य करके सोभित स्थविर ने यह उदान गाया

स्मृतिमान्, प्रज्ञावान् और उद्योगी भिक्षु हूँ।
मैंने पाँच सौ कल्पों को
एक ही रात्रि में स्मरण किया ॥१६५॥
चार स्मृतिप्रस्थान*, सात बोध्यांग तथा
अष्टांगिक मार्ग* का मैंने अभ्यास किया।
मैंने पाँच सौ कल्पों को
एक ही रात्रि में स्मरण किया ॥१६६॥

१४४. वल्लिय

वैशाली के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। महाकात्यायन के पास प्रव्रजित हो योगाभ्यास करते थे। लेकिन प्रतिभा कम होने के कारण कम उन्नति कर सके। बाद में वेणुदत्त थेर के पास जाकर उनसे ध्यान-भावना सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण कर अर्हत् पद को प्राप्त हुए। वल्लिय ने शिक्षा के लिए वेणुदत्त से जो प्रार्थना की थी उसी को उदान के रूप में दिया गया है

जो (काम) दृढ़ वीर्य्य से करना है,
जो (काम) सत्य के बोध के लिए करना है,
उसे पूरा करूँगा और पीछे नहीं हटूँगा,
(मेरे) वीर्य्य को, पराक्रम को देखें ॥१६७॥

अमृत (निर्वाण) का ऋजु मार्ग मुझे बतावें।
मैं आर्य मौन से शान्ति को
उसी प्रकार प्राप्त करूँगा जिस प्रकार
गङ्गा की धारा सागर में जा मिलती है ॥१६८॥

१४५ वीतसोक

सम्राट अशोक के छोटे भाई। गिरिदत्त थेर के पास धार्मिक शिक्षा पाई। एक दिन बाल बनवाते समय पलित केश को देखकर विरक्त हो गिरिदत्त थेर के पास ही प्रव्रजित हुए। अर्हत् पद पाने के बाद वीतसोक ने अपने अनुभव को प्रकट कर के यह उदान गाथा।

बाल बनाने के लिए नाई मेरे पास आ गया।
उससे दर्पण लेकर मैंने शरीर पर मनन किया ॥१६९॥
मुझे शरीर तुच्छ दिखाई दिया।
(अविद्या रूपी) अन्धकार राशि दूर हो गई।
(वासना रूपी) सब वस्त्र पूर्ण रूप से छिन्न हैं।
अब (मेरे लिए) पुनर्जन्म नहीं है ॥१७०॥

१४६ पुण्णमास

श्रावस्ती के सम्पन्न परिवार में उत्पन्न। एक पुत्र के जन्म होने के बाद प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त। एकाएक उनके पुत्र की मृत्यु हुई। माँ दाह-क्रिया कर के कुछ लोगों के साथ अपने पूर्व पति को घर बुलाने गई। पुण्णमास स्थविर ने अपनी मुक्त अवस्था को व्यक्त करते हुए उदान गाथा।

पाँच नीवरणों॰ को त्याग कर
योगक्षेम (निर्वाण) की प्राप्ति के लिए

धर्मरूपी दर्पण लेकर
अपने ज्ञान से (वस्तु-स्थिति को) देखने लगा ॥१७१॥
इस पूरे शरीर पर—भीतर और बाहर,
अपने और पराये—मनन करने लगा
और यह तुच्छ शरीर दिखाई देने लगा ॥१७२॥

१४७ नन्दक

चम्पा के धनी परिवार में उत्पन्न। प्रव्रजित हो ध्यान-भावना करते थे। लेकिन प्रज्ञा का उदय नहीं हुआ। एक दिन गाड़ी में जोते हुए बैल को गिरते देखा। जब गाड़ीवान् उसे खोल कर खिला-पिला कर फिर जोत दिया तो वह अच्छी तरह चलने लगा। उक्त घटना से प्रेरणा प्राप्त कर नन्दक उद्योग करने लगे और शीघ्र ही अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद नन्दक स्थविर ने अपने अनुभव को लक्ष्य कर के यह उदान गाया

जिस प्रकार भद्र, आजानीय (वृषभ)
गिरने पर भी उठ खड़ा हो जाता है
और अधिक संवेग प्राप्त कर, अदीन हो भार को ले चलता है,
सम्यक् सम्बुद्ध का दर्शन सम्पन्न श्रावक भी
उसी प्रकार का है।
बुद्ध के औरस पुत्र मुझे आजानीय समझे ॥१७३–४॥

१४८. भरत

नन्दक के बड़े भाई। वह भी प्रव्रजित हो परम पद को प्राप्त हुए। एक दिन भगवान् के दर्शनार्थ जाने के लिए नन्दक को बुलाते हुए उन्होंने यह उदान गाया

नन्दक ! आओ, उपाध्याय के पास चलें।
श्रेष्ठ बुद्ध के सम्मुख हम सिंहनाद करें ॥१७५॥
जिसके लिए मुनि ने अनुकम्पापूर्वक
हमें प्रव्रजित किया है
सभी बन्धनों के क्षय (रूपी)
उस अर्थ को हमने प्राप्त किया है ॥१७६॥

१४९ भारद्वाज

राजगृह का एक ब्राह्मण। कण्हदिन्न नामक उसका एक पुत्र था। उसे शिक्षा के लिए तक्षशिला भेज दिया। वह मार्ग में एक भिक्षु से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुआ। इधर पिता भी राजगृह में भगवान् के पास ही प्रव्रजित हो अर्हत्व हुआ। कुछ समय के बाद कण्हदिन्न भगवान् के दर्शन के लिए राजगृह आया और वहाँ पर अपने पिता को भी देखा। उस समय पुत्र को लक्ष्य कर के भारद्वाज स्थविर ने यह उदान गाया :

प्राज्ञ वीर, संग्रामविजयी, सेना सहित मार को जीतकर
वैसा ही नाद करता है
जैसा कि सिंह अपनी गिरि गुहा में ॥१७७॥
मैंने अच्छी तरह शास्ता की सेवा की है
धर्म और संघ मुझ से पूजित हैं।
मैं अपने दान्त पुत्र को देखकर खुश हूँ, प्रसन्न हूँ ॥१७८॥

१५० कण्हदिन्न

राजगृह के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। धर्म सेनापति के पास प्रव्रजित हो अर्हद् पद को प्राप्त कर कण्हदिन्न स्थविर ने यह उदान गाया :

(मैंने) सत्पुरुषों की सेवा की, प्रायः
(धर्म को) सुनकर अमृत (निर्वाण)
पहुँचानेवाले मार्ग का अनुसरण किया ॥१७९॥
मेरी भव-तृष्णा नष्ट हुई,
फिर मुझे भव-तृष्णा नहीं होगी।
(नष्ट होने के बाद तृष्णा) न तो हुई
न होगी और न इस समय है ॥१८०॥

सोलहवाँ वर्ग

१५१. मिगसिर

कोशल के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। मृत लोगों की खोपड़ियों को नाखून से बजाकर मन्त्र बल से उनकी गति बता सकते थे। बाद में परिव्राजक हो विचरण करते हुए श्रावस्ती में भगवान् के पास पहुँच गये। उन्होंने भगवान् से अपने मन्त्र की चर्चा की। भगवान् ने एक अर्हन्त की खोपड़ी मँगवाकर दे दी। मिगसिर ने नाखून से बजाकर देखा, लेकिन कुछ भी पता नहीं लगा। इस रहस्य को जानने के लिए वे भगवान् के पास प्रव्रजित हुए और अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद मिगसिर स्थविर ने यह उदान गाया

जब से मैं सम्यक् सम्बुद्ध के शासन में प्रव्रजित हुआ
(तब से) मुक्त होता हुआ ऊपर उठा
और काम-भूमि से परे हो गया ॥१८१॥
ब्रह्मा (=बुद्ध) के देखते मेरा चित्त तृष्णा से मुक्त हुआ।
मेरी मुक्ति विचलित होने को नहीं है,
मैं सभी बन्धनों के क्षय को प्राप्त हुआ हूँ ॥१८२॥

१५२ सीवक

राजगृह के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त कर सीवक स्थविर ने यह उदान गाया।

जगह जगह बारम्बार (शरीर रूपी)
अनित्य गृह बनाये गये।
(मैं) गृह-कारक की खोज करता रहा,
बारम्बार जन्म लेना दुःख है ॥१८३॥
(तृष्णा रूपी) गृहकारक! तुम को देख लिया है,
तुम फिर घर नहीं बना सकोगे।
तुम्हारी सभी कड़ियाँ तोड़ दी गयी हैं
शिखर भी टूट गया है।
चित्त का फिर आविर्भाव नहीं होगा
उसका यहीं अन्त होगा ॥१८४॥

१५३ उपवान

श्रावस्ती के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त। देवहित नामक ब्राह्मण उपवान से प्रसन्न हो उनकी सब आवश्यकताओं को पूरा करता था। कुछ समय उपवान भगवान् की सेवा भी करते रहे। एक दिन भगवान् वातावात से पीड़ित हो गये। उपवान देवहित के पास भगवान् के लिए गरम पानी लाने गये। उस समय उपवान स्थविर ने देवहित से जो सत्य कहे उन्हीं को उदान का रूप दिया गया है :

संसार के अर्हत्, सुगत मुनि वातावात से पीड़ित हैं।
ब्राह्मण! यदि गरम जल हो तो मुनि के लिए दे दे ॥१८५॥
वे भगवान् पूजा के योग्य लोगों द्वारा भी पूजित हैं

सत्कार के योग्य लोगों द्वारा भी सत्कृत हैं,
सम्मान के योग्य लोगों द्वारा भी सम्मानित हैं,
उनके लिए मैं (जल) ले जाना चाहता हूँ ॥१८६॥

१५४. इसिदिन्न

सुनापरन्त जनपद के एक सेठ के पुत्र। वे भगवान् से उपदेश सुनकर स्रोतापन्न हो गृहस्थ जीवन व्यतीत करते थे। एक हितैषी देवता ने कुछ उपदेशप्रद बातें सुनाकर उनमें संवेग उत्पन्न किया। वे प्रव्रजित हो ध्यान-भावना कर अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद इसिदिन्न स्थविर ने देवता की उपदेशयुक्त बातों को ही उदान के रूप में गाया

मैंने धर्मधर उपासकों को
यह कहते देखा है कि काम अनित्य है।
(लेकिन वे) मणि-कुण्डलों में अत्यन्त आसक्त हैं
और उन्हें पुत्र-दाराओं की अपेक्षा है ॥१८७॥
सचमुच वे धर्म को यथार्थ रूप से न जानकर
यह बताते हैं कि काम अनित्य हैं।
उनमें राग का छेदन करने की शक्ति नहीं है,
इसलिए पुत्र, स्त्री और धन में वे आसक्त हैं ॥१८८॥

१५५. सम्बुलकच्चान

मगध के एक सम्पन्न परिवार में उत्पन्न। प्रव्रजित हो हिमालय के निकट भेरवाय नामक गुफा में ध्यान-भावना करते थे। एक दिन आँधी और बिजली के साथ ही अकाल वर्षा होने लगी। उसकी भयानकता के कारण सभी पशु-पक्षी काँपने लगे। उस समय और भी

उद्योगी हो अर्हत् पद को प्राप्त कर सप्पुस स्थविर ने यह उदान गाया :

देव बरसता है देव गड़गड़ाहट के साथ गिरता है।
मैं अकेला भैरव गुफा में वास करता हूँ।
अकेले भैरव गुफा में रहने वाले मुझे
भय त्रास या रोमाञ्च नहीं होता ॥१८९॥
यह धार्मिक रीति है कि (इस प्रकार) अकेले
भैरव गुफा में रहनेवाले मुझे
भय, त्रास या रोमाञ्च नहीं होता ॥१९०॥

१५६ खितक

कोसल देश के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित हो अरण्य में ध्यान-भावना कर अर्हत् पद को प्राप्त हो सब्रह्मचारियों को योगा-भ्यास में प्रोत्साहित करते हुए खितक स्थविर ने यह उदान गाया :

जिसका चित्त पर्वत की तरह स्थिर है
और विचलित नहीं होता
रंजनीय वस्तुओं से विरक्त रहता है
और कोपनीय वस्तुओं से कुपित नहीं होता।
जिसका चित्त इस प्रकार अभ्यस्त है,
वह किस प्रकार दुःख को प्राप्त होगा ? ॥ १९१॥
मेरा चित्त पर्वत की तरह स्थिर है
और विचलित नहीं होता
रंजनीय वस्तुओं से विरक्त रहता है
और कोपनीय वस्तुओं से कुपित नहीं होता।
मेरा चित्त इस प्रकार अभ्यस्त है।
इसलिए मुझे कहाँ से दुःख प्राप्त होगा ? ॥१९२॥

१५७. सोण

कपिलवस्तु के सम्पन्न परिवार में उत्पन्न। राजा भद्दिय के
नापति। भद्दिय के प्रव्रजित होने के बाद वे भी संघ में दीक्षित हुए।
किन अनुद्योगी रहते थे। एक दिन भगवान् ने उपदेश द्वारा उनमें
वेग उत्पन्न किया। सोण ने प्रेरणा प्राप्त कर श्रमण-धर्म पूरा करने
ा संकल्प कर लिया। उसके अनुसार ध्यान भावना कर अर्हत् पद को
ाप्त हुए। बाद में सोण स्थविर ने भगवान् के उपदेश और अपने
ंकल्प को उदान के रूप में गाया

नक्षत्र समूह युक्त रात्रि सोने के लिए नहीं है।
ऐसी रात्रि ज्ञानियों के जाग्रत रहने के लिए है ॥१९३॥
संग्राम-भूमि में आगे बढ़कर
हाथी पर से भले ही गिर जाय।
पराजित होकर जीने की अपेक्षा
संग्राम में प्राप्त मृत्यु ही मुझे अभीष्ट है ॥१९४॥

१५८. निसभ

कोलिय राजकुमार। प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। एक
अनुद्योगी भिक्षु को प्रोत्साहित करते हुए निसभ ने यह उदान गाया

पाँच काम-गुणों और मनोरम प्रिय रूपों को त्याग कर,
श्रद्धा पूर्वक घर से निकलकर, दुःख का अन्त करो ॥१९५॥
मैं न तो मृत्यु का अभिनन्दन करता हूँ
और न जीवन का ही अभिनन्दन करता हूँ।
ज्ञान पूर्वक, स्मृतिमान् हो
अपने समय की प्रतीक्षा करता हूँ ॥१९६॥

१५९ उसभ

शाक्य राजकुमार थे। वे प्रव्रजित हो रात भर सोते थे और दिन भर गपशप करते थे। एक दिन उन्हें स्वप्न आया कि हरा चीवर पहन कर हाथी की पीठ पर चढ़ कर भिक्षा के लिये गाँव में गये हैं। नींद के टूटने पर अपने चित्त के विकार पर उन्हें संवेग उत्पन्न हुआ। उसी दिन से उद्योग कर अर्हत् पद को प्राप्त हो उसभ स्थविर ने अपने अनुभव का स्मरण करके यह उदान गाया।

आम के पत्ते के समान रंग वाले चीवर को पहन कर,
हाथी की पीठ पर बैठ कर भिक्षा के लिए
मैंने गाँव में प्रवेश किया ॥१९७॥
हाथी की पीठ पर से उतरने पर
मुझे संवेग उत्पन्न हुआ।
तब मैंने (अपने) दर्प को शान्त करके
आस्रवों के क्षय को प्राप्त किया ॥१९८॥

१६० कप्पटकुर

श्रावस्ती के एक दरिद्र परिवार में उत्पन्न। वह गुदड़ी पहन भिक्षा माँग कर जीविका करते थे। बाद में घास बेचने लगे। एक दिन घास काटने के लिए जंगल में गये। वहाँ एक अर्हत् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हुए। लेकिन मन श्रमण-धर्म में कम लगता था। जब कभी मन उदास हो जाता तो फेंकी हुई गुदड़ी को देखकर संभल जाते। इस प्रकार सात बार संभल गये। एक दिन धर्म-सभा में कुछ भिक्षुओं ने भगवान् से इसकी चर्चा की। भगवान् ने कप्पटकुर को समझाते हुए कुछ उपदेश दिया। वे संविग्न हो ज्ञान-भावना कर परमपद को प्राप्त हुए। तब उन्होंने भगवान् के शब्दों में ही यह उदान गाया।

कप्पटकुर ! यह (तुम्हारी) गुदड़ी है ।
क्या तुम्हें (अब चीवर) भारी मालूम होता है ?
अमृत घट रूपी धर्म के पाने पर
ध्यान क्यों नहीं करते ? ॥१९९॥
कप्पट ! ऊँघो नहीं । कप्पट ! कान पर
हाथ लगाने का अवसर न दो ।
कप्पट ! संघ के बीच में ऊँघते हुए तुमने
धर्म को जरा भी नहीं समझा ॥२००॥

सतरहवाँ वर्ग

१६१. कुमार कस्सप

राजगृह में उत्पन्न । उसकी माता एक सेठ की कन्या थी । उसने अपने माता पिता से प्रव्रज्या के लिए अनुमति माँगी । अनुमति न देकर उन्होंने उसका विवाह कर दिया । बाद में पति से अनुमति लेकर वह भिक्षुणी-संघ में दीक्षित हुई । प्रव्रज्या के पहले उसे अपने पति से गर्भ हुआ था । लेकिन उसे इसका पता न था । बाद में जब गर्भ बढ़ने लगा तो लोग उसके आचरण पर सन्देह करने लगे । पता लगाने पर असली बात मालूम हुई और लोगों का सन्देह दूर हो गया । भिक्षुणी को एक पुत्र उत्पन्न हुए और कोशल नरेश के यहाँ उनका पालन पोषण हुआ । बाद में माता का अनुसरण कर कुमार कस्सप भी प्रव्रजित हुए । वह संघ में कुशल वक्ताओं में सर्वश्रेष्ठ हुए । अर्हत् पद पाने के बाद कुमार कस्सप ने त्रिरत्न को लक्ष्य करके यह उदान गाया :

बुद्ध धन्य हैं, धर्म धन्य है,
हमारे शास्ता की (गुण) सम्पत्ति धन्य है—

जहाँ कि साधक इस प्रकार के धर्म का
साक्षात्कार कर लेता है ॥२०१॥
असंख्य कल्पों तक पाँच स्कन्धों के फेर में पड़ा था।
यह उनका अन्तिम (आविर्भाव) है, यह अन्तिम जन्म है।
जन्म-मृत्यु रूपी संसार, पुनर्जन्म अब नहीं होगा ॥२०२॥

१६१ धम्मपाल

अवन्ति के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त कर लौटते समय एक भिक्षु से उपदेश सुनकर प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। जिस विहार में वे रहते थे उसके दो श्रामणेर फूल तोड़ने के लिए एक पेड़ पर चढ़े। डाली के टूट जाने से दोनों गिरे। धम्मपाल ने दोनों को बचाकर उन्हें श्रमण-धर्म में प्रोत्साहित करते हुए यह उदान गाया :

जो तरुण भिक्षु बुद्ध के शासन में तत्पर रहता है,
सुप्तों में जागत रहता है
उसका जीवन रिक्त नहीं होता ॥२०३॥
इसलिए बुद्ध के उपदेश का स्मरण कर
मेधावी श्रद्धा तथा शील का आचरण कर
प्रसन्नता और धर्म का दर्शन पावे ॥२०४॥

१६२ ब्रह्मालि

कोशल के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त कर ब्रह्मालि ने सब्रह्मचारियों के बीच यह उदान गाया :

सारथी द्वारा अच्छी तरह दमन किये गये अश्व की भाँति
किसकी इन्द्रियाँ शान्त हो गई हैं ?

अभिमान रहित, आश्रव रहित, अविचलित
उसकी स्पृहा देवता भी करते हैं ॥२०५॥
सारथी द्वारा अच्छी तरह दमन किये गये अश्व की भाँति
मेरी इन्द्रियाँ शान्त हो गई हैं,
अभिमान रहित, आश्रव रहित, अविचलित
मेरी स्पृहा देवता भी करते हैं ॥२०६॥

१६४. मोघराज

ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। बावरि के शिष्यों मे से एक। बाद में भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त। एक बार मोघराज को कुष्ठ रोग हुआ। वे विहार के बाहर पुआल का आसन बनाकर रहते थे। वे एक दिन भगवान् के दर्शन के लिए गये। भगवान् ने उनसे इस प्रकार पूछा

मोघराज ! तुम चर्मरोग से पीड़ित हो,
प्रसन्न-चित्त हो, सतत समाहित हो।
हेमन्त समय की ठण्ढी रातें आ रही हैं,
तुम भिक्षु हो और समय कैसे बिताओगे ? ॥२०७॥
मोघराज ने जवाब देते हुए कहा
मैंने सुना है कि सारा मगध शस्य सम्पन्न है।
मैं पुआल बिछाकर सोऊँगा जब कि
और लोग सुखपूर्वक सोयेंगे ॥२०८॥

१६५. विसाख

मगध के एक राजा के पुत्र। पिता की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठे। बाद में भगवान् से उपदेश सुनकर, सब कुछ त्याग कर प्रव्रजित

हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। एक दिन अपने बन्धुओं को उपदेश देते हुए विसाख ने यह उदान गाया :

न तो अपनी प्रशंसा करे और न दूसरों की निन्दा ही करे।
जो (संसार के) पार गये हैं उनकी अवहेलना न करे,
उन पर आक्षेप न करे। परिषद् में अपनी बड़ाई न करे।
अभिमान रहित होवे मितभाषी होवे सुव्रती होवे ॥२०९॥

जो अति सूक्ष्म निपुण अर्थ के दर्शी हैं
मतिमान् हैं कुशल हैं विनीत स्वभाव का है,
प्रबुद्ध लोगों से सेवित है-उसे निर्वाण दुर्लभ नहीं ॥२१०॥

१६६ चूलक

मगध के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् के पास प्रव्रजित हो इन्द्रसाल गुफा में ध्यान भावना करते थे। वर्षा की ऋतु आ गयी। आकाश में बादल भर गये। पानी बरसने लगा। सारी प्रकृति पुष्पित हो गयी। मोर नाचते हुए गाने लगे। इस सुन्दर और शान्त वातावरण में भिक्षु का चित्त समाधिस्थ हुआ और शीघ्र ही वे अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद चूलक स्थविर ने यह उदान गाया :

सुन्दर शिखा वाले सुन्दर चोंच वाले सुन्दर नील ग्रीवा वाले सुन्दर मुख वाले मोर मधुर गीत गाते हैं।
इस महापृथ्वी पर सुन्दर घास उगी है,
जल फैल गया है और आकाश बादलों से भर गया है ॥२११॥

जो सम्यक् रूप से घर त्याग कर
बुद्धशासन में आकर प्रसन्न है
उसके ध्यान करने के लिये यह समुचित समय है।

(अब) सूक्ष्मातिसूक्ष्म, निपुण, दुर्दर्शनीय, उत्तम,
अच्युत (निर्वाण) पद को स्पर्श करो ॥२१२॥

१६७. अनूपम

कोशल के धनी परिवार मे उत्पन्न । सुन्दरता के करण अनूपम नाम पड़ा । भगवान् के पास प्रव्रजित हो अरण्य में योगाभ्यास करते थे । लेकिन चित्त चञ्चल रहता था । एक दिन अनूपम अपने मन को समझाकर दृढ़ सकल्प के साथ ध्यान करने लगे । शीघ्र ही अर्हत् पद को प्राप्त हो अनूपम स्थविर ने इन शब्दों मे ही यह उदान गाया

चित्त ! आनन्द के पीछे पड़ते हो
और (मुझे दु:ख रूपी) शूल पर चढ़ाते हो ।
तुम वहाँ वहाँ जाते हो (जहाँ जहाँ) शूल है,
कलिङ्गर (= वध करने की लकड़ी) है ॥२१३॥
चित्त ! तुझे मैं बाधक कहकर पुकारता हूँ,
शास्ता जो तुम्हें मिले है वे दुर्लभ हैं,
(चित्त !) मुझे अनर्थ में न लगाओ ॥२१४॥

१६८ वज्जित

कोशल के ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न । प्रव्रज्या के बाद अर्हत् पद को प्राप्त हो वज्जित स्थविर ने यह उदान गाया

(चार) आर्य सत्यों के न देखने के कारण ।
अन्धभूत पृथक्जन* हो दीर्घकाल तक
अनेक गतियों मे भ्रमण करता रहा ॥२१५॥
अप्रमत्त हो मैंने वासनाओं को आमूल नष्ट किया है ।
सभी गतियाँ पूर्ण रूप से विच्छिन्न हैं,
अब (मेरे लिए) पुनर्जन्म नहीं है ॥२१६॥

१६९ सन्धित

कोशल के सम्पन्न कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। अपने पूर्व जन्म का स्मरण कर सन्धित स्थविर ने यह उदान गाया :

हरितपर्ण, अच्छी तरह पड़े हुए
अश्वत्थ वृक्ष के नीचे स्मृतिमान् मुझे
बुद्ध सम्बन्धी धारणा उत्पन्न हुई ॥२१७॥
एकतीस कल्प पहले जो धारणा मुझे उत्पन्न हुई थी,
उस धारणा के फलस्वरूप मैं
आश्रवों के क्षय को प्राप्त हुआ ॥२१८॥

दूसरा निपात समाप्त

तीसरा निपात

अठारहवाँ वर्ग

१७०. अग्गिक भारद्वाज

उक्कट्ठा नगर के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। ब्राह्मण-शास्त्रों में पारगत हो कठिन तप करते हुए एक वन में अग्नि की उपासना करते थे। बाद में भगवान् से उपदेश सुनकर प्रव्रजित हो अर्हत् पदको प्राप्त हुए। उसके बाद भारद्वाज स्थविर ने अपने बन्धुओं को भी उपदेश देकर बुद्ध-धर्म में दीक्षित किया। एक दिन कुछ ब्राह्मणों द्वारा ब्राह्मण-धर्म छोड़कर भिक्षु होने का कारण पूछने पर भारद्वाज स्थविर ने यह जवाब दिया जो कि उदान के रूप में दिया गया है

अज्ञानपूर्वक शुद्धि की गवेषणा करता हुआ
वन में अग्नि की उपासना करता रहा।
शुद्धि के मार्ग को न जानने के कारण
अमरत्व के लिए कठिन तप किया ॥२१९॥
(अब) मैंने सुख से ही सुख को प्राप्त किया है,
धर्म की महिमा को देखो।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया है,
बुद्ध-शासन को पूरा किया है ॥२२०॥
पहले मैं ब्रह्म-बन्धु था,
अब (यथार्थ) ब्राह्मण हूँ, त्रैविद्य हूँ,
स्नातक हूँ, श्रोत्रिय हूँ और वेदज्ञ हूँ ॥२२१॥

१७१ पक्ख

कौशिम्बी नगर में उत्पन्न। प्रव्रजित हो दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ ध्यान-भावना कर अर्हत् पद को प्राप्त हो पक्ख स्थविर ने यह उदान गाया।

प्रव्रजित हो पाँच दिन हुए,
शैक्ष्य* और न पहुँचे हुए मनवाले
विहार में प्रवेश किये हुए मेरे मन में
यह संकल्प उत्पन्न हुआ ॥२२२॥
(तब तक)न तो खाऊँगा न पीऊँगा न विहार से निकलूँगा
और न लेटूँगा ही जब तक कि तृष्णा रूपी
तीर को न निकाल दूँगा ॥२२३॥
इस प्रकार विहरनेवाले मेरे वीर्य्य और पराक्रम को देखो,
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया।
और बुद्ध शासन को पूरा किया ॥२२४॥

१७२ बक्कुल

कौशाम्बी के एक सेठ के पुत्र। एक दिन धाई यमुना में उसे स्नान करा रही थी कि एक मछली उसे निगल गई। कुछ दिनों के बाद बनारस के एक मछुए ने उस मछली को पकड़ कर वहाँ की एक सेठानी को बेच दिया। सेठानी ने मछली के पेट में बच्चे को पाकर उसका पालन पोषण किया। अस्सी वर्ष की आयु में प्रव्रजित हो बक्कुल अर्हत् पद को प्राप्त हुए। बक्कुल कभी भी बीमार नहीं पड़े थे। इस लिए नीरोग भिक्षुओं में सर्वश्रेष्ठ घोषित हुए। अर्हत्व के बाद बक्कुल स्थविर ने यह उदान गाया।

जो पहले करने योग्य काम को पीछे करना चाहता है
वह सुख-स्थान से वञ्चित हो जाता है
और बाद को पछताता है ॥२२५॥

जो करे उसे बतावे, जो न करे उसे न बतावे ।
जो (कुछ) न करते हुए बातें करता है,
पण्डित अच्छी तरह उसे जान जाते हैं ॥२२६॥
सम्यक् सम्बुद्ध द्वारा देशित निर्वाण सुखकारी है,
शोक रहित है, रज रहित है, क्षेम है,
जहाँ कि दुःख का निरोध हो जाता है ॥२२७॥

१७३. धनिय

राजगृह के कुंभकार कुल में उत्पन्न । प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त कर कुछ असयत भिक्षुओं को लक्ष्य करके धनिय स्थविर ने यह उदान गाया

यदि सुख पूर्वक जीना चाहे
और साधु जीवन की अपेक्षा हो तो
संघ के चीवर, पात्र और
भोजन की अवहेलना न करे ॥२२८॥
यदि सुखपूर्वक जीना चाहे
और साधु जीवन की अपेक्षा हो तो
चूहे के बिल में रहनेवाले साँप की तरह
(बिना आसक्ति के) निवास का सेवन करे ॥२२९॥
यदि सुखपूर्वक जीना चाहे
और साधु जीवन की अपेक्षा हो तो
जो कुछ मिल जाय उससे सन्तुष्ट हो
एक (श्रमण धर्म) का ही अभ्यास करे ॥२३०॥

१७४. मातंगपुत्त

कोशल देश के एक जमींदार के पुत्र । प्रव्रजित हो अर्हत् पद

को प्राप्त। घर में वे बहुत ही आलसी रहते थे। पहले और बाद के जीवन को लक्ष्य करके भर्वगुप्त स्थविर ने यह उदान गाथा।

अधिक शीत है, अधिक उष्ण है, अधिक शाम हो गई,
इस प्रकार जो लोग अपने कामों को छोड़ देते हैं,
वे अपने अवसर को खोते हैं ॥२११॥
जो शीत और उष्ण को तृण से अधिक न समझते हुए
पुरुष (योग्य) कार्यों को करता है
वह सुख से वञ्चित नहीं होता ॥२१२॥
दूब कुश, पोटकिल, उशीर,
मूँज और बाबज (रूपी मलों) को
हृदय से निकाल कर शान्ति का अभ्यास करूँगा ॥२१३॥

१७५ सुञ्जसोभित

पाटलिपुत्र के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। जन्म से कुबड़े थे। इसलिए सुञ्जसोभित नाम पड़ा। भगवान् के परिनिर्वाण के बाद आनन्द स्थविर के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। जिस समय राजगृह की सप्तपर्णी गुफा में प्रथम संगीति हो रही थी सुञ्जसोभित आयुष्मान् आनन्द को बुलाने गये। कहते हैं कि गुफा पर देवताओं का पहरा लगा था। द्वार के पास पहुँच कर सोभित स्थविर ने देवताओं से कहा।

पाटलिपुत्र के कुशलवक्ता बहुश्रुत भिक्षुओं में एक
सुञ्जसोभित द्वार पर खड़ा है ॥२१४॥
तब देवताओं ने संघ से कहा :
पाटलिपुत्र के कुशल वक्ता बहुश्रुत भिक्षुओं में एक
सुञ्जसोभित हवा से लाया हुआ द्वार पर खड़ा है ॥२१५॥

सोभित ने भीतर प्रवेश कर सघ के सम्मुख अपनी प्राप्ति को व्यक्त करते हुए यह उदान गाया

अच्छी तरह (मार से) युद्ध कर,
अच्छी तरह यक्ष कर, संग्राम विजयी हो,
श्रेष्ठ जीवन का अभ्यास कर
(परम) सुख को प्राप्त हुआ हूँ ॥२३६॥

१७६ वारण

कोशल के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित हो एक अरण्य में ध्यान-भावना करते थे। एक दिन भगवान् के दर्शन के लिए जाते समय कुछ लोगों को लड़ाई मे आहत देखा। वारण ने भगवान् को उसके विषय में सुनाया। भगवान् ने उपदेश देकर उन्हें योगाभ्यास में और भी प्रोत्साहित किया। अर्हत् पद पाने के बाद वारण स्थविर ने भगवान् के शब्दों में ही यह उदान गाया

जो यहाँ मनुष्यों में दूसरे प्राणियों की हिंसा करता है,
वह मनुष्य इस लोक और परलोक दोनों में
(सुख से) वञ्चित हो जाता है ॥२३७॥
जो मैत्री चित्त से सभी प्राणियों पर
अनुकम्पा करता है, वैसा मनुष्य
पुण्य का वहुत संचय करता है ॥२३८॥
अच्छी वातों को वोलना,
श्रमणों की सेवा तथा संगति करना,
और एकान्त स्थान में चित्त को
शान्त करना सीखें ॥२३९॥

१७७ पस्सिक

कोशल के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् के पास प्रव्रजित हो

उद्योग करते समय बीमार पड़े। बन्धुओं की शुश्रूषा से ठीक हो गये। अर्हत् पद पाने के बाद अपने गाँव में जा बन्धुओं को उपदेश देकर उन्हें भी भगवान् के भक्त बनाये। एक दिन जब वस्सिक भगवान् के दर्शन के लिए गये तो उन्होंने बन्धुओं के विषय में पूछा। भगवान् को जवाब देते हुए वस्सिक स्थविर ने यह उदान गाया:

अश्रद्धालु बन्धुओं में (मैं) अकेला श्रद्धालु
मेधावी धर्म पर स्थित और शील सम्पन्न था,
मैंने (उपदेश द्वारा) उन बन्धुओं की सेवा की ॥२४०॥
अनुकम्पा पूर्वक मेरे द्वारा वे बन्धु
फटकारे और समझाये गये।
तब उन बन्धुओं ने
प्रेम से भिक्षुओं की सेवा की ॥२४१॥
वे यहाँ से गुजरे और देव-सुख को प्राप्त हुए,
ये मेरे भाई तथा माता सुख की
कामना करती हुई आनन्द मनाती हैं ॥२४२॥

१७८ यसोज

श्रावस्ती के केवट कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित हो सहज उद्योग से अर्हत् पद को प्राप्त। दर्शन के लिए गये यसोज को लक्ष्य करके भगवान् ने कहा:

(यसोज) वल्लिलता की गाँठों जैसे अङ्गवाला है,
दुबला पतला है नसों से भरे शरीरवाला है
अन्नपान में उचित मात्रा को जाननेवाला है
और अदीन मनवाला मनुष्य है ॥२४३॥

इस अवसर पर यसोज ने यह उदान गाया:

अरण्य में, महावन में मक्खियों और
मच्छड़ों का स्पर्श पाकर (भिक्षु),
संग्राम भूमि में आगे रहनेवाले हाथी की तरह,
स्मृतिमान् हो उसका सहन करें ॥२४४॥
जहाँ (भिक्षु) अकेला है ब्रह्मा के समान है।
जहाँ दो हैं देवताओं के समान हैं।
जहाँ तीन हैं गाँव के समान है।
जहाँ तीन से अधिक हैं भीड़ के समान हैं ॥२४५॥

१७९. सातिमत्तिय

मगध के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित हो परमपद पानेके बाद वे लोगों को उपदेश देने लगे। एक परिवार विशेष रूप से उन पर प्रसन्न था। जब कभी वे भिक्षा के लिए जाते तो घर की एक कन्या भिक्षा देती थी। अब मार ने लोगों को बिगाड़ना चाहा। एक दिन भिक्षु के भेष में आकर उसने कन्या का हाथ पकड़ लिया। यह देखकर लोग बहुत ही अप्रसन्न हुए। दूसरे दिन जब भिक्षु वहाँ गये तो लोगों ने उनका सत्कार-सम्मान नहीं किया। बाद में जब असली बात का पता लगा तो लोगों ने भिक्षु से क्षमा माँगी। उस अवसर पर साति-मत्तिय स्थविर ने इस प्रकार कहा

पहले तुझमें श्रद्धा थी, अब सो नहीं है।
तुझमें जो कुछ है सो तुम्हारा है,
मुझमें कोई दुराचार नहीं है ॥२४६॥
(कुछ लोगों की) श्रद्धा अनित्य है, चंचल है,
मैंने इस बात को देखा है।
(लोग) प्रसन्न होते भी हैं, अप्रसन्न भी होते हैं,
मुनि इसके लिए नहीं जीता है ॥२४७॥

घर घर में मुनि के लिए थोड़ा थोड़ा भात पकता है।
भिक्षा के लिए जाऊँगा
मेरी जंघाओं में बल है ॥२४८॥

१८० उपालि

नापित कुल में उत्पन्न और शाक्य राजकुमारों के साथ ही प्रव्रजित। विनयधर भिक्षुओं में सर्वश्रेष्ठ। अर्हत् पद पाने के बाद कुछ तरुण भिक्षुओं को सम्बोधन करके उपालि स्थविर ने यह उदान गाथा :

श्रद्धा पूर्वक घर से निकल कर जो तरुण प्रव्रजित हुआ है
(वह) कल्याण मित्रों की संगति करे,
शुद्ध आजीविका करे और आलस रहित होवे ॥२४९॥
श्रद्धा पूर्वक घर से निकल कर जो तरुण प्रव्रजित हुआ है
(वह) भिक्षु संघ में रहते हुए
बुद्धि पूर्वक विनय को सीखे ॥२५०॥
श्रद्धा पूर्वक घर से निकल कर जो तरुण प्रव्रजित हुआ है
(वह) अभिमान रहित हो उचित और अनुचित का
विचार कर आचरण करे ॥२५१॥

१८१ उत्तरपाल

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित हो ध्यान भावना करते थे। एक दिन उनके मन में अनेक प्रकार के वितर्क उठने लगे। दृढ़ संकल्प के साथ भिक्षु ने उनपर विजय पाई। इस विजय को स्मरण कर के उत्तरपाल स्थविर ने यह उदान गाया :

मैं अपने को ज्ञानी समझता था
और सदर्थ पर मनन करना पर्याप्त समझता था कि
मोहने वाले संसार के पाँच
कामगुणों ने मुझे गिरा दिया ॥२५२॥

दृढ़ तीर से आहत हो मैं मार के वश में आ गया,
फिर भी मृत्युराज के पाश से मैं मुक्त हो सका ॥२५३॥
मेरे सब काम क्षीण हो गये,
सभी भव विदीर्ण हो गये।
जन्म रूपी संसार क्षीण हो गया,
अब (मेरे लिए) पुनर्जन्म नहीं ॥२५४॥

१८२. अभिभूत

वेठपुर के राजा के पुत्र। पिता की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठे। भगवान् से उपदेश सुन सारी सम्पत्ति को त्याग कर प्रव्रजित हो परमपद को प्राप्त हुए। बाद में अपने बन्धु वर्ग को उपदेश देते हुए अभिभूत स्थविर ने यह उदान गाया

जितने भी बन्धु यहाँ पर एकत्रित है वे सुनें,
मैं तुम्हे धर्म का उपदेश दूँगा,
बारम्बार जन्म लेना दुःख है ॥२५५॥
पराक्रमी बनो, निकलो, बुद्ध-शासन में लग जाओ।
मृत्यु की सेना को उसी प्रकार हिला दो जिस प्रकार
सरकडों के बने घर को हाथी हिला देता है ॥२५६॥
जो इस धर्म विनय में अप्रमादी हो विहरता है,
वह जन्मरूपी ससार को त्यागकर
दुःख का अन्त करेगा ॥२५७॥

१८३. गोतम

एक शाक्य राजकुमार। प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। बाद में बन्धुओं के सम्मुख अपने अनुभव को सुनाते हुए गोतम स्थविर ने यह उदान गाया

संसार में भ्रमण करता हुआ नरक में गया
बारम्बार प्रेतलोक में गया
और दीर्घकाल तक पशु योनि में
मैंने अनेक प्रकार का दुःख सहा ॥२५८॥
मनुष्य होकर भी सन्तुष्ट हुआ बार बार स्वर्ग में भी गया,
रूप भूमियों में अरूप भूमियों में नैवसंज्ञी भूमियों में
और असंज्ञी भूमियों में भी गया ॥२५९॥
(मैंने) इन गतियों को असार जान लिया,
संस्कार चंचल हैं, परिवर्तनशील हैं।
इस प्रकार जन्म के स्वभाव को जानकर
स्मृतिमान् हो मैं शान्ति को प्राप्त हुआ ॥२६०॥

१८४ हारित

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित होने के बाद भी पुरानी आदत के कारण लोगों को अवज्ञा के साथ बोलते थे। एक दिन भगवान् से उपदेश सुनकर उद्योगी हो वे अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद हारित स्थविर ने यह उदान गाया।

जो पहले करने योग्य काम को पीछे करता है
वह सुख-स्थान से वञ्चित हो जाता है
और बाद को पछताता है ॥२६१॥
जो करे उसे बतावे जो न करे उसे न बतावे।
जो (कुछ भी) न करते हुए बातें करता है
पण्डित अच्छी तरह उसे जान जाता है ॥२६२॥
सम्यक् सम्बुद्ध द्वारा देशित निर्वाण सुखकारी है
शोक रहित है रज रहित है, क्षेम है।
जहाँ कि दुःख का निरोध हो जाता है ॥२६३॥

१८५. विमल

बनारस के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। सोममित्त थेर के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। बाद में एक सब्रह्मचारी को उपदेश देते हुए विमल स्थविर ने यह उदान गाया

पाप मित्रों को त्याग कर, उत्तम व्यक्ति की संगति करे,
अचल सुख की कामना करता हुआ
उसके आदेश का अनुसरण करे ॥२६४॥
जिस प्रकार छोटे तख्ते पर चढ़ने से
(मनुष्य) समुद्र में डूबता है,
उसी प्रकार आलसी की संगति में आकर
साधु पुरुष भी डूबता है।
इसलिए आलसी, अनुद्योगी को त्याग दे ॥२६५॥
जो एकान्तवासी हैं, निर्वाण में रत है,
ध्यानी हैं, नित्य उद्योग करनेवाले है,
वैसे पण्डित आर्यों की संगति करे ॥२६६॥

तीसरा निपात समाप्त

चौथा निपात

उन्नीसवाँ वर्ग

१८६ नागसमाल

कपिलवस्तु के शाक्य कुल में उत्पन्न। भिक्षा के लिए जाते समय एक स्त्री को नाचती हुई देखकर अनित्य भावना का अभ्यास कर बाद में अर्हत् पद को प्राप्त। उक्त घटना को लक्ष्य करके आयुष्मान् नागसमाल ने यह उदान गाया।

अलंकृत सुन्दर वस्त्र पहनी, माला धारण की हुई
चन्दन लगाई हुई नाटिका स्त्री
महा मार्ग के बीच में तूर्य के साथ नाचती रही ॥२६७॥
मैं भिक्षा के लिए निकला,
जाते हुए मैंने अलंकृत, सुन्दर वस्त्र पहने
लगे हुए मृत्यु-पाश जैसी उसे देखा ॥२६८॥
तब मुझे विवेक पूर्ण विचार उत्पन्न हुआ,
(रूप के) दुष्परिणाम प्रकट हुए,
निर्वेद उत्पन्न हुआ ॥२६९॥
संस्कारों से मेरा चित्त मुक्त हुआ,
धर्म की महिमा को देखो।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया
बुद्ध शासन को पूरा किया ॥ ७०॥

१८७ भगु

एक शाक्य राजकुमार। प्रव्रज्या के बाद विहार में रह कर ध्यान कर रहे थे। जब नींद आने लगी तो विहार से निकल कर

चंक्रमण (=टहलने का स्थान) पर चढ़े। लेकिन वहीं गिर पड़े। सवेग पा कर उद्योगी हो शीघ्र ही शान्त पद को प्राप्त हुए। उसके वाद अपने अनुभव को व्यक्त करते हुए भगु स्थविर ने यह उदान गाया

नींद से सताये जाने पर
मैं विहार से निकला और चंक्रमण पर
चढ़ते ही वहीं जमीन पर गिर पड़ा ॥२७१॥
शरीर को साफ कर मैं फिर भी चंक्रमण पर चढ़ा।
चंक्रमण पर टहलते हुए मैंने अपने
अध्यात्म को शान्त किया ॥२७२॥
तव मुझे विवेक पूर्ण विचार उत्पन्न हुआ।
(शारीरिक) दुष्परिणाम प्रकट हुए,
निर्वेद उत्पन्न हुआ ॥२७३॥
संस्कारों से मेरा चित्त मुक्त हुआ,
धर्म की इस महिमा को देखो।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया,
बुद्ध-शासन को पूरा किया ॥२७४॥

१८८. सभिय

परिव्राजक से एक क्षत्राणी को उत्पन्न पुत्र। वे भी परिव्राजक हो महावादी बने। बाद में भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। एक दिन देवदत्त के कुछ पथभ्रष्ट अनुयायियों को उपदेश देते हुए सभिय स्थविर ने यह उदान गाया

अनाड़ी लोग इसका ख्याल नहीं करते कि
हम इस संसार में नहीं रहेंगे।
जो इसका ख्याल करते हैं,
उनके सारे कलह शान्त हो जाते हैं ॥२७५॥

चौथा निपात

उन्नीसवाँ वर्ग

१८६ नागसमाल

कपिलवस्तु के शाक्य कुल में उत्पन्न। भिक्षा के लिए जाते समय एक स्त्री को नाचती हुई देखकर अनित्य भावना का अभ्यास कर बाद में अर्हत् पद को प्राप्त। उस घटना को स्मरण करके आयुष्मान् नागसमाल ने यह उदान गाया।

अलंकृत सुन्दर वस्त्र पहनी माला धारण की हुई
चन्दन लगाई हुई नाटिका स्त्री
महा मार्ग के बीच में तूर्य के साथ नाचती रही ॥२६७॥
मैं भिक्षा के लिए निकला,
जाते हुए मैंने अलंकृत सुन्दर वस्त्र पहने
लगे हुए मृत्यु-पाश जैसी उसे देखा ॥२६८॥
तब मुझे विवेक पूर्ण विचार उत्पन्न हुआ
(रूप के) दुष्परिणाम प्रकट हुए,
निर्वेद उत्पन्न हुआ ॥२६९॥
संस्कारों से मेरा चित्त मुक्त हुआ,
धर्म की महिमा को देखा।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया,
बुद्ध-शासन को पूरा किया ॥ २७०॥

१८७ भगु

एक शाक्य राजकुमार। प्रव्रज्या के बाद विहार में बैठ कर ध्यान कर रहे थे। जब नींद आने लगी तो विहार से निकल कर

जो मूर्ख है, वुद्धिहीन है, मतिहीन है,
मोह से आच्छादित है, वे ही मार के फेंके हुए
जाल में आसक्त हो जाते है ॥२८१ ॥
जिनमें राग, द्वेप और अविद्या छूट गयी है,
जो स्थिर है, जिनके सूत्र टूट गये है, जो वन्धन रहित है,
वे वहाँ आसक्त नहीं होते ॥२८२॥

१९०. जम्वुक

दरिद्र कुल में उत्पन्न। नग्न साधु हो विष्टा खाते हुए शरीर को अनेक प्रकार का कष्ट देते रहे। वाद में भगवान् से उपदेश सुनकर अर्हत् पद को प्राप्त हो, अपने जीवन को लक्ष्य करके जम्वुक स्थविर ने यह उदान गाया

पचपन साल तक धूल और मैल पोतता रहा।
मास में एक वार भोजन करता हुआ
सिर और चेहरे के वाल नोचता रहा ॥२८३॥
आसन त्याग कर एक पैर से खड़ा रहा।
सूखी विष्टा को खाता था और
किसी का दिया भोजन नहीं लेता था ॥२८४॥
इस प्रकार दुःखदायी वहुत काम किये।
महाप्रवाह से वह जाने पर
मै वुद्ध की शरण में आ गया।
शरणागमन को देखो,
धर्म की महिमा को देखो।
तीन विद्याओं को मैने प्राप्त किया,
वुद्ध का शासन पूरा किया ॥२८५-२८६॥

जब कि मरणधर्मी लोग देवता होने का दम्भ भरते हैं
तब धर्म के ज्ञाता मनुष्यों में
स्वस्थ (की भाँति) दिखाई देते हैं ॥२७६॥

जो कर्म शिथिल है, जो व्रत मलयुक्त है
और जो ब्रह्मचर्य अशुद्ध है
वह महाफल नहीं होता ॥२७७॥

सब्रह्मचारियों का जिसका गौरव प्राप्त नहीं होता
वह सद्धर्म से वैसा ही दूर है
जैसा कि आकाश पृथ्वी से ॥२७८॥

१८९ नन्दक

श्रावस्ती के सम्पन्न कुल में उत्पन्न। भगवान् से उपदेश सुनकर परम पद को प्राप्त। उनसे उपदेश सुन कर पाँच सौ भिक्षुणियाँ अर्हत् पद को प्राप्त हुईं। भिक्षुणियों को उपदेश देनेवालों में सर्वश्रेष्ठ। नन्दक एक दिन भिक्षा के लिए श्रावस्ती में निकले तो भूतपूर्व की पत्नी लुभाने के विचार से हँस पड़ी। इस अवसर पर नन्दक स्थविर ने यह उदान गाया।

दुर्गन्ध-पूर्ण मार के पक्ष में रहने वाली
वासना-पूर्ण (तुम्हें) धिक्कार है।
तुम्हारे शरीर में नव स्रोत हैं
जिनसे सदा गन्दगी बहती है ॥२७९॥
मुझे पहले जैसा न समझो,
तथागत के शिष्य मुझे प्रलोभन न दो।
(तथागत के) ये शिष्य स्वर्ग में भी आसक्त नहीं होते
मनुष्य के विषय में कहना ही क्या है ॥२८०॥

उसके अर्थ वैसे ही अवनति को प्राप्त होते हैं,
जैसे कि कालपक्ष में चन्द्रमा।
वह अयश को प्राप्त होता है और मित्रों से
(उसका) विरोध भाव भी हो जाता है ॥२९२॥
जो मन्द गति के योग्य समय मन्दगामी होता है
और शीघ्र गति के योग्य समय शीघ्रगामी होता है,
विवेकशील संविधान के कारण
पण्डित सुख को प्राप्त होता है ॥२९३॥
उसके अर्थ वैसे ही पूर्णता को प्राप्त होते हैं,
जैसे कि शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा।
वह यश तथा कीर्ति को भी प्राप्त होता है
और मित्रों से (उसका) विरोध भाव भी नहीं होता ॥२९४॥

१९३ राहुल

सिद्धार्थ कुमार के पुत्र। प्रव्रजित हो भगवान् से ही शिक्षा प्राप्त कर अर्हत् पद को प्राप्त। अपने अनुभव को व्यक्त करते हुए राहुल ने यह उदान गाया है

दोनों ओर से भाग्यशाली मुझे (सब्रह्मचारी)
भाग्यवान् राहुल के नाम से जानते हैं,
क्योंकि मैं बुद्ध का पुत्र हूँ और
धर्मों के विषय में चक्षुमान् हूँ ॥२९५॥
मेरे आस्रव क्षीण हैं, (मेरे लिए) पुनर्जन्म नहीं है,
(मैं) अर्हन्त हूँ, दक्षिणार्ह हूँ, त्रैविद्य हूँ
और अमृत (निर्वाण) के दर्शक हूँ ॥२९६॥
(लोग) कामान्ध हैं, (काम) जाल से आवृत हैं,

१९१ सेनक

गया काश्यप के भानजे। एक दिन लोगों के साथ फल्गु नदी के तट पर उत्सव मना रहे थे। वहाँ पहुँच कर भगवान् ने लोगों को उपदेश दिया। सेनक प्रभावित हो प्रव्रजित हुए। अर्हत् पद पाने के बाद उन्होंने यह उदान गाया।

गया में फल्गु के तट पर मुझे यह ही लाभ हुआ कि
उत्तम धर्म के उपदेशक सम्बुद्ध के दर्शन पाये ॥२८७॥
वे महा प्रतापी हैं गणाचार्य हैं,
उत्तम अवस्था को प्राप्त हैं,
देवता सहित संसार के महान् नेता हैं,
जिन हैं और अनुपम (निर्वाण) दर्शी हैं ॥२८८॥
वे महानाग हैं, महावीर हैं महान् ज्योतिष्मान् हैं,
आश्रव रहित हैं (उनमें) सभी आश्रव क्षीण हैं, शास्ता हैं
और अकुतोभय (निर्वाण) को प्राप्त हैं ॥२८९–२९०॥

१९२ सम्भूत

सम्पन्न परिवार में उत्पन्न। भगवान् के महापरिनिर्वाण के बाद आनन्द स्थविर के पास प्रव्रजित और अर्हत् पद को प्राप्त। जिस घटना को लेकर दूसरी संगीति हुई थी उसे लक्ष्य करके आयुष्मान् सम्भूत ने यह उदान गाया।

जो मन्द गति के योग्य समय शीघ्रगामी होता है
और शीघ्र गति के योग्य समय मन्दगामी होता है
विवेक रहित संविधान के कारण वह
मूर्ख दुःख को प्राप्त होता है ॥२९१॥

उसके अर्थ वैसे ही अवनति को प्राप्त होते हैं,
जैसे कि कालपक्ष में चन्द्रमा ।
वह अयश को प्राप्त होता है और मित्रों से
(उसका) विरोध भाव भी हो जाता है ॥२९२॥
जो मन्द गति के योग्य समय मन्दगामी होता है
और शीघ्र गति के योग्य समय शीघ्रगामी होता है,
विवेकशील संविधान के कारण
पण्डित सुख को प्राप्त होता है ॥२९३॥
उसके अर्थ वैसे ही पूर्णता को प्राप्त होते हैं,
जैसे कि शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा ।
वह यश तथा कीर्ति को भी प्राप्त होता है
और मित्रों से (उसका) विरोध भाव भी नहीं होता ॥२९४॥

१९३ राहुल

सिद्धार्थ कुमार के पुत्र । प्रव्रजित हो भगवान् से ही शिक्षा प्राप्त कर अर्हत् पद को प्राप्त । अपने अनुभव को व्यक्त करते हुए राहुल ने यह उदान गाया है

दोनों ओर से भाग्यशाली मुझे (सब्रह्मचारी)
भाग्यवान् राहुल के नाम से जानते हैं,
क्योंकि मैं बुद्ध का पुत्र हूँ और
धर्मों के विषय में चक्षुमान् हूँ ॥२९५॥
मेरे आस्रव क्षीण है, (मेरे लिए) पुनर्जन्म नहीं है,
(मैं) अर्हन्त हूँ, दक्षिणार्ह हूँ, त्रैविद्य हूँ
और अमृत (निर्वाण) के दर्शक हूँ ॥२९६॥
(लोग) कामान्ध हैं, (काम) जाल से आवृत हैं,

तृष्णा रूपी पट से आच्छादित हैं
प्रमत्तबन्धु (मार) से घिरे हुए बंधे हैं
जैसे कि टाप के मुख में मछली ॥२९७॥
मैं उस काम को हटाकर
मार बन्धन का छेदन कर
सामूल तृष्णा को बाहर कर
शान्त हुआ हूँ, प्रशान्त हुआ हूँ ॥२९८॥

१९४ चन्दन

श्रावस्ती के धनी परिवार में उत्पन्न। घरमें रहते ही स्रोतापन्न हुए थे। एक पुत्र के होने के बाद प्रव्रजित हो श्मशान में ध्यान-भावना करते थे। एक दिन (भूत पूर्व) पत्नी बच्चे को लेकर उन्हें लुभाने आयी। और भी उद्योग कर अर्हत् पद को प्राप्त हो चन्दन स्थविर ने पत्नी को भी दीक्षित किया। बाद में उस घटना को स्मरण करके चन्दन ने यह उदान गाया।

सोने के गहने पहन कर पुत्र को गोद में लेकर,
दासियों के साथ स्त्री मेरे पास आयी ॥२९९॥
अलंकृत सुन्दर वस्त्र पहन आती हुई
अपने पुत्र की माता को
मार के लगाये हुए पाश की तरह देखा ॥३००॥
तब मुझे विवेकपूर्ण विचार उत्पन्न हुआ।
(शरीर के) दुष्परिणाम प्रकट हुए
और निर्वेद उत्पन्न हुआ ॥३०१॥
तब मेरा चित्त मुक्त हुआ,
धर्म की महिमा को देखा।

(मैंने) तीन विद्याओं को प्राप्त किया,
बुद्ध शासन को पूरा किया ॥२०२॥

१९५. धम्मिक

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न। भगवान् के पास प्रव्रजित हो गाँव के विहार में रहते थे। आगन्तुक भिक्षुओं के आने-जाने से बहुत चिढ़ते थे। इसलिए उनका आना-बन्द हुआ। जब भगवान् को इस बात का पता लगा तो उन्होंने भिक्षु को उपदेश दिया। सवेग पाकर उद्योगी हो वे अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद धम्मिक स्थविर ने भगवान् के शब्दों में ही यह उदान गाया .

निस्संदेह धर्म धर्मचारी की रक्षा करता है।
अच्छी तरह अभ्यस्त धर्म सुख पहुँचाता है।
अच्छी तरह अभ्यस्त धर्म का यही सुपरिणाम है।
धर्मचारी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता ॥२०३॥

धर्म और अधर्म समान फल नहीं देते।
अधर्म नरक पहुँचाता है
और धर्म सुगति पहुँचाता है ॥२०४॥

इसलिए प्रमोद के साथ सुगत, अचल
(तथागत द्वारा उपदिष्ट) धर्मकी इच्छा करे।
श्रेष्ठ सुगत के श्रावक धर्म में स्थित हैं।
वे धीर उत्तम शरण में आकर आगे बढ़ जाते हैं ॥२०५॥

(स्कन्ध रूपी) फोड़े की जड़ तोड़ दी गयी है।
तृष्णा रूपी जाल नष्ट कर दिया गया है।
जिसका जन्म क्षीण है,

जिसकी तृष्णा (कुछ भी) शेष नहीं रही
वह पूर्णमासी का ज्योतिष्मान् चन्द्र की भाँति है ॥१०६॥

१९६ सप्पक

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् के पास प्रव्रजित हो अजकर्णी नदी तट पर एक विहार में योगाभ्यास कर अर्हत् पद को प्राप्त हुए। एक दिन श्रावस्ती आकर भगवान् के दर्शन के बाद अपने बन्धुओं को उपदेश देकर विहार में लौटना चाहा तो बन्धुओं ने उनसे श्रावस्ती में ही रहने का अनुरोध किया। तिसपर सप्पक स्थविर ने अपनी एकान्त प्रियता को प्रकट कर के यह उदान गाया :

जब कि स्वच्छ और उजले पंखवाले बलाक
काले मेघ के भय से त्रस्त हो
निवास स्थान की खोज में भागते हैं
तब अजकर्णी नदी मुझे प्रिय लगती है ॥१०७॥

जब कि स्वच्छ शुभ्र, उज्ज्वल (पंखवाले) बलाक
काले मेघ के भय से त्रस्त हो
पास में गुफा न देखकर गुफा की खोज करते हैं
तब अजकर्णी नदी मुझे प्रिय लगती है ॥१०८॥

जहाँ मेरी गुफा के पास नदी के दोनों किनारे
जामुन के वृक्षों से सुशोभित हैं,
वहाँ कौन नहीं रमते हैं ? ॥१०९॥

साँपों के न होने के कारण मेढक धीरे धीरे गाते हैं कि
आज गिरि-नदियों से प्रवास का समय नहीं
अजकर्णी क्षेम है शिव है सुरम्य है ॥११०॥

१९७. मुदित

कोशल के एक सम्पन्न परिवार में उत्पन्न। किसी कारण राजा से डर कर वन में भाग गये। वहाँ एक अर्हन्त से उनकी भेंट हुई। अर्हन्त ने उन्हें शान्त किया। बाद मे उनके पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद अपनी प्राप्ति को लक्ष्य कर के मुदित स्थविर ने यह उदान गाथा

मैं जीवन की रक्षा के लिए प्रव्रजित हुआ,
फिर उपसम्पदा पाने पर श्रद्धा प्राप्त कर
दृढ़ उद्योग के साथ पराक्रम किया ॥३११॥
यह शरीर भले ही फूट जाय, मॉस पेशी नाश हो जायॅ,
जोड़ाई से निकल कर मेरे दोनों जॉघ गिर जायॅ ॥३१२॥
मैं तब तक न खाऊँगा, न पिऊँगा,
न विहार से निकलूँगा और न लेटूँगा ही,
जब तक कि तृष्णा रूपी तीर को न निकालूँगा ॥३१३॥
इस प्रकार रहने वाले मेरे
वीर्य और पराक्रम को देखो।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया,
और बुद्ध-शासन को पूरा किया ॥३१४॥

चौथा निपात समाप्त

पाँचवाँ निपात

बीसवाँ वर्ग

१९८ राजदत्त

श्रावस्ती के व्यापार कुल में उत्पन्न। एक बार राजदत्त व्यापार करने के लिए राजगृह गये थे। वहाँ एक वेश्या के पीछे अपना सारा धन खो दिया। एक दिन कुछ लोगों के साथ वेणुवन में भगवान् से उपदेश सुनने गये। उपदेश से इतने प्रभावित हुए कि वे उसी दिन प्रव्रजित हो गये। एक दिन अशुभ भावना के लिए श्मशान में गए। वहाँ एक सुन्दर स्त्री का शव पड़ा था। उसे देखकर भिक्षु के मन में विकार उत्पन्न हुआ। होश संभालकर दृढ़ संकल्प के साथ वहीं ध्यान करने लगे और शीघ्र ही परमपद को प्राप्त हुए। तब राजदत्त स्थविर ने उस घटना को स्मरण करके यह उदान गाया :

भिक्षु ने श्मशान में जाकर
फेंके हुए स्त्री (शव) को देखा।
श्मशान में पड़े हुए उसे कीड़े खा रहे थे ॥३१५॥
जिस निर्जीव शव को देखकर कुछ लोग घृणा करते हैं,
(उसे देखकर) मुझे काम-राग उत्पन्न हुआ
मैं अन्धा हुआ अपने वश में नहीं रहा ॥३१६॥
जितनी देर में भात पकता है उससे भी कम समय में
(काम-राग को शान्त कर) मैं उस स्थान से हट गया।
मैं स्मृतिमान् हो ज्ञान पूर्वक एक तरफ बैठ गया ॥३१७॥

तब मुझे विवेकपूर्ण विचार उत्पन्न हुआ।
(शरीर के) दुष्परिणाम प्रकट हुए,
निर्वेद उत्पन्न हुआ ॥३१८॥
(संस्कारों से) मेरा चित्त मुक्त हुआ।
धर्म की महिमा को देखो।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया,
बुद्ध-शासन को पूरा किया ॥३१९॥

११९. सुभूत

मगध के साधारण परिवार में उत्पन्न। पहले तीर्थकों के पास प्रव्रजित हुए। बाद में भगवान् से उपदेश सुनकर उनके पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद सुभूत स्थविर ने अपने अनुभव के प्रकाश में यह उदान गाया

यदि कोई पुरुष सफलता की इच्छा से
अपने आपको अनुचित में लगा देता है
और वह उस अर्थ को प्राप्त नहीं होता
तो वह उसका अशुभ लक्षण है ॥३२०॥
(यदि कोई) बुराई पर विजय पाकर
उसके एक देश को भी त्याग दे
तो यह अभागा होगा।
यदि सारी (विजय) को छोड़ दे तो वह
सम और विषम को न देखने वाले
अन्धे की भाँति होगा ॥३२१॥
जो करे वही कहे,
जो न करे उसे न कहे।

जो (कुछ भी) न करता हुआ बात करता है
पण्डित उसे अच्छी तरह जान लेते हैं ॥१२२॥

जैसे सुन्दर, वर्णयुक्त निर्गन्ध पुष्प होता है
वैसे ही (कथनानुसार) आचरण न करने वाले के लिए
सुभाषित वाणी निष्फल होती है ॥१२३॥

जैसे सुन्दर वर्णयुक्त सुगन्धित पुष्प होता है,
वैसे ही (कथनानुसार) आचरण करनेवाले के लिए
सुभाषित वाणी सफल होती है ॥१२४॥

२०० गिरिमानन्द

इनकी कथा भी सुभूति थेर की कथा जैसी है। बिम्बिसार के राज पुरोहित के पुत्र। अर्हत् पद के बाद गिरिमानन्द स्थविर ने यह उदान गाथा :

देव (जैसे) बरसता है (मानो) गीत हो रहा है।
मेरी कुटी छाई है, सुखदायी है और हवा से सुरक्षित है।
इसमें उपशान्त हो विहरता हूँ।
देव! चाहो तो बरसो ॥१२५॥

देव (जैसे) बरसता है (मानो) गीत हो रहा है।
मेरी कुटी छाई है सुखदायी है और हवा से सुरक्षित है।
इसमें शान्त-चित्त हो विहरता हूँ।
देव चाहो तो बरसो ॥१२६॥

मैं राग रहित हो विहरता हूँ
देव! चाहो तो बरसो ॥१२७॥

मैं द्वेष रहित हो विहरता हूँ ..
देव ! चाहो तो बरसो ॥३२८॥
मैं मोह रहित हो विहरता हूँ ..
देव ! चाहो तो बरसो ॥३२९॥

२०१. सुमन

कोशल के साधारण परिवार में उत्पन्न। अपने मामा के पास, जो स्वय अर्हन्त थे, प्रव्रजित। उनसे शिक्षा लेकर ध्यान-भावना कर परम-पद को प्राप्त। एक दिन सुमन स्थविरने अपने उपाध्याय के सम्मुख यह उदान गाया

धर्म में उन्नति चाहता हुआ
उपाध्याय ने मेरे ऊपर अनुग्रह किया।
अमृत की आकांक्षा करता हुआ
मैंने कर्त्तव्य को पूरा किया ॥३३०॥

मैंने निर्वाण को प्राप्त किया, स्वयं साक्षात् किया,
(अब) धर्म में शका नहीं रही। (मेरा) ज्ञान विशुद्ध है,
शंकारहित हूँ, आपके सम्मुख (इसे) प्रकट करता हूँ ॥३३१॥

पूर्व जन्म को जानता हूँ, दिव्य चक्षु विशुद्ध है,
मैंने सदर्थ को प्राप्त किया है,
और बुद्ध-शासन को पूरा किया है ॥३३२॥

अप्रमाद के साथ मेरी शिक्षा होती रही,
आपके उपदेशों को अच्छी तरह सुना।
मेरे सभी आस्रव क्षीण हैं,
और अब (मेरे लिए) पुनर्जन्म नहीं ॥३३३॥

आर्य-व्रत पर (आप ने) मुझे उपदेश दिया
अनुकम्पा की अनुग्रह किया।
आपका अनुशासन खाली नहीं गया
आपका शिष्य रहकर शिक्षित[1] हुआ हूँ ॥२२४॥

२०२ वड्ढ

भरुकच्छ के एक साधारण कुल में उत्पन्न। माता बचपन में ही उन्हें बन्धुओं को सौंपकर भिक्षुणी हो अर्हत् पद को प्राप्त हुई। ये भी बाद में प्रव्रजित हुए। एक दिन वे अपनी माता को देखने के लिए उत्तरासंग[1] के बिना ही विहार में गये। माता ने उन्हें समझाकर वैसा करने को मना किया। माता की बातों से संवेग पाकर उन्होंने ही अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद उक्त घटना को स्मरण करके वड्ढ स्थविर ने यह उदान गाया।

अच्छा हुआ कि मेरी माता ने
(मेरे ऊपर उपदेश रूपी) छड़ी का प्रयोग किया।
माता के वचन को सुनकर मैं शिक्षित हुआ ॥२२५॥
मैं पराक्रमी हूँ निर्वाण में रत हूँ
उत्तम सम्बोधि को प्राप्त हूँ
अर्हन्त हूँ, दक्षिणार्ह हूँ त्रैविद्य हूँ
और अमृत (निर्वाण) दर्शी हूँ ॥२२६॥
मार की सेना का नाश कर,
आश्रव रहित हो विहरता हूँ।
मेरे भीतर और बाहर जो आश्रव थे

अर्हन्त। १ ऊपर का चीवर।

वे निःशेष उच्छिन्न हैं,
और फिर उत्पन्न नहीं होंगे।
भगिनी! विशारद होकर,
तुमने इस प्रकार कहा। ॥२३७-८॥

मैं जैसी हूँ वैसा तुझ में भी तृष्णा न रहे।
मैंने दुःख का अन्त किया है,
यह अन्तिम जन्म है।
जरामरण रूपी संसार (समाप्त है),
अब फिर पुनर्जन्म नहीं ॥२३९॥

२०३. नदीकस्सप

मगधके ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न। परिव्राजक हो तीन सौ शिष्यों के साथ परिव्राजक जीवन व्यतीत करते थे। बाद में भगवान् से उपदेश सुनकर शिष्यों के साथ ही उनके पास प्रव्रजित हो अर्हत्पद को प्राप्त हुए। अपनी प्राप्ति को लक्ष्य करके नदीकस्सप ने यह उदान गाया है

मेरे अर्थ के लिए बुद्ध नेरञ्जरा नदी के तट पर गये।
उनके धर्मको सुनकर मैंने मिथ्या दृष्टिको छोड़ दिया॥२४०॥

इसी को शुद्धि मानकर मैंने अनेक यज्ञों का
अनुष्ठान किया और अग्निहोत्र किया,
मैं अन्धा था, सामान्य जन था ॥२४१॥

(मैं) दृष्टिरूपी जंगल में पड़ा था,
मतवाद से मोहित था।
अशुद्धि को शुद्धि समझता था,
अन्धा था, अज्ञानी था ॥२४२॥

आर्य-सत्य पर (आप ने) मुझे उपदेश दिया,
अनुकम्पा की अनुग्रह किया।
आपका अनुशासन खाली नहीं गया,
आपका शिष्य रहकर शिक्षित[1] हुआ हूँ ॥३३४॥

२०२ वड्ढ

भरुकच्छ के एक साधारण कुल में उत्पन्न। माता बचपन में ही उन्हें बन्धुओं को सौंपकर भिक्षुणी हो अर्हत् पद को प्राप्त हुई। पुत्र भी बाद में प्रव्रजित हुए। एक दिन वे अपनी माता को देखने के लिए उत्तरासंग[2] के बिना ही विहार में गये। माता ने उन्हें समझाकर वैसा करने को मना किया। माता की बातों से संवेग पाकर उद्योगी हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद उस घटना को स्मरण करके वड्ढ स्थविर ने यह उदान गाया।

अच्छा हुआ कि मेरी माता ने
(मेरे ऊपर उपदेश रूपी) छड़ी का प्रयोग किया।
माता के वचन को सुनकर मैं शिक्षित हुआ ॥३३५॥
मैं पराक्रमी हूँ, निर्वाण में रत हूँ,
उत्तम सम्बोधि को प्राप्त हूँ,
अर्हन्त हूँ, दक्षिणार्ह हूँ, त्रैविद्य हूँ
और अमृत (निर्वाण) दर्शी हूँ ॥३३६॥
मार की सेना का नाश कर,
आस्रव रहित हो विचरता हूँ।
मेरे भीतर और बाहर जो आस्रव थे

---

१ अर्हत्व। २ ऊपर का चीवर।

बुद्ध का औरस पुत्र हूँ ॥३४८॥
अष्टाङ्गिक मार्ग रूपी स्रोत में उतर कर
सभी पाप को बहा दिया।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया,
और बुद्ध शासन को पूरा किया ॥३४९॥

२०५. वक्कलि

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न और त्रिवेदपारङ्गत। भगवान् के रूप सौन्दर्य पर प्रमत्त हो प्रव्रजित हुए और नित्य प्रति उनका दर्शन करते थे। एक दिन भगवान् ने उन्हें उपदेश देकर ध्यान भावना के लिए भेज दिया। वक्कलि कठिन स्थान में रह कर योगाभ्यास करने लगे और वात रोग से पीड़ित हुए। वहाँ पहुँच कर भगवान्‌ने एक दिन वक्कलि स्थविर से पूछा

भिक्षु ! वात रोग से पीड़ित हो
कानन में, वन मे रह रहे हो।
भिक्षा-कठिन स्थान में आकर
तुम कैसे रहोगे ? ॥३५०॥

वक्कलि ने उत्तर दिया

विपुल प्रीति सुख को शरीर में फैला कर,
कठिनाई को वश में कर,
मै कानन में विहरूँगा ॥३५१॥
(चार) स्मृति प्रस्थानों, (पाँच) इन्द्रियों,
(पाँच) बलों और (सात) बोध्याङ्गों का
अभ्यास करता हुआ मैं कानन में विहरूँगा ॥३५२॥
(मैं) उद्योगी हूँ, निर्वाण में रत हूँ,
नित्य दृढ़ पराक्रमी हूँ।

मेरी मिथ्या-दृष्टियाँ छूट गयी हैं,
सभी भव विदीर्ण हैं।
दक्षिणार्ह रूपी अग्नि की उपासना करता हूँ,
तथागत को नमस्कार करूँगा ॥३४३॥
मेरे सब मोह छूट गये हैं
भव-तृष्णा विदीर्ण है।
जन्मरूपी संसार क्षीण है
(अब) मेरे लिए पुनर्जन्म नहीं ॥३४४॥

२०४ गयाकस्सप

मगध के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। नदीकस्सप की तरह परिव्राजक हो भी शिष्यों के साथ रहते थे। बाद में उनके साथ ही भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। अपनी शुद्धि को लक्ष्य करके गयाकस्सप ने यह उदान गाया है।

मैं दिन में तीन बार प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल
गया के फल्गु नदी के पानी में उतरता था ॥३४५॥
जो कुछ पाप पहले जन्मों में मैंने किया,
उसे अब यहाँ बहा देता हूँ—
इस प्रकार पहले मेरी धारणा रही ॥३४६॥
सुन्दर वचन को अर्थयुक्त धर्मपद को सुनकर
विवेकपूर्वक मैंने उसके ठीक
अर्थ पर मनन किया ॥३४७॥
(धर्म रूपी नदी में) सब पाप को धो डाला हूँ
निर्मल हूँ शुद्ध हूँ पवित्र हूँ।
विशुद्ध (बुद्ध) का विशुद्ध उत्तराधिकारी हूँ।

बुद्ध का औरस पुत्र हूँ ॥३४८॥
अष्टाङ्गिक मार्ग रूपी स्रोत में उतर कर
सभी पाप को वहा दिया।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया,
और बुद्ध शासन को पूरा किया ॥३४९॥

२०५. वक्कलि

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न और त्रिवेदपारङ्गत। भगवान् के रूप सौन्दर्य पर प्रसन्न हो प्रव्रजित हुए और नित्य प्रति उनका दर्शन करते थे। एक दिन भगवान् ने उन्हें उपदेश देकर ध्यान भावना के लिए भेज दिया। वक्कलि कठिन स्थान में रह कर योगाभ्यास करने लगे और वात रोग से पीड़ित हुए। वहाँ पहुँच कर भगवान्‌ने एक दिन वक्कलि स्थविर से पूछा

भिक्षु ! वात रोग से पीड़ित हो
कानन में, वन में रह रहे हो।
भिक्षा-कठिन स्थान में आकर
तुम कैसे रहोगे ? ॥३५०॥

वक्कलि ने उत्तर दिया

विपुल प्रीति सुख को शरीर में फैला कर,
कठिनाई को वश में कर,
मैं कानन में विहरूँगा ॥३५१॥
(चार) स्मृति प्रस्थानों, (पाँच) इन्द्रियों,
(पाँच) वलों और (सात) बोध्याङ्गों का
अभ्यास करता हुआ मैं कानन में विहरूँगा ॥३५२॥
(मैं) उद्योगी हूँ, निर्वाण में रत हूँ,
नित्य दृढ़ पराक्रमी हूँ।

मेघ ओल में रहने वाले ब्रह्मचारियों को
देख कर कानन में विचरूँगा ॥१५३॥

श्रेष्ठ, शान्त और समाहित सम्बुद्ध का
स्मरण कर रात दिन
तन्द्रा रहित हो कानन में विचरूँगा ॥१५४॥

२०६ विजितसेन

कोसल के हाथीवान-कुल में उत्पन्न । दो मामा—सेन और उपसेन—प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए थे । विजितसेन उनके पास प्रव्रजित हो उद्योग करने लगे । लेकिन मन विक्षिप्त रहता था । एक दिन एक संकल्प के साथ वे समाधि में बैठ गये और अर्हत् पद को प्राप्त हुए । उसके बाद अपने संकल्प को लक्ष्य कर के विजितसेन स्थविर ने यह उदान गाया :

चित्त ! (नगर) द्वार पर बंधे हाथी की तरह
मैं तुम्हें बाँध डालूँगा जिससे कि तुम
पाप में न लगो शरीर से उत्पन्न काम-जाल में न फँसो ॥१५५॥

बाँधने पर तुम वैसे ही नहीं जा सकोगे,
जैसे कि द्वार के विवर से हाथी ।
अभागा चित्त ! बारम्बार प्रयत्न करने पर भी
तुम पाप-रत हो विचरण नहीं कर सकोगे ॥१५६॥

जिस प्रकार बलवान् हाथीवान्
नये पकड़े गये अदान्त हाथी को
उसकी इच्छा के विरुद्ध घुमा देता है
उसी प्रकार (चित्त) मैं तुम्हें घुमाऊँगा ॥१५७॥

जिस प्रकार उत्तम घोड़े के दमन में
कुशल, प्रवर सारथी अच्छे घोड़े का दमन करता है,
उसी प्रकार पाँच बलों में प्रतिष्ठित हो
मैं तुम्हारा दमन करूँगा ॥३५८॥

स्मृति से तुम्हें बाँध डालूँगा।
संयत हो तुम्हारा दमन करूँगा।
वीर्य रूपी धुर से निग्रह किये जाने पर,
चित्त ! तुम यहाँ से दूर नहीं जा सकोगे ॥३५९॥

२०७. यसदत्त

मल्ल राजवंश में उत्पन्न। शिक्षा के लिए तक्षशिला गये थे। शिक्षा समाप्त कर सभिय परिव्राजक के साथ श्रावस्ती आये। जेतवन में जाकर सभिय परिव्राजक भगवान् से धर्मसम्बन्धी कुछ प्रश्न पूछने लगे। यसदत्त भी साथ में थे। वितंडा में कुशल वे भगवान् की आलोचना के लिए अवसर देख रहे थे। उनके मनको जानकर भगवान् ने उन्हें सवेगोत्पादक उपदेश दिया। यसदत्त प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। भगवान् के जिन शब्दों से उन्हे सवेग उत्पन्न हुआ उन्हीं को यसदत्त स्थविर ने उदान के रूपमें गाया

जो मूर्ख आलोचना के विचार से
जिन (=बुद्ध) का उपदेश सुनता है,
वह सद्धर्म से उसी प्रकार दूर है,
जिस प्रकार कि पृथ्वी आकाश से ॥३६०॥

जो मूर्ख आलोचना के विचार से
जिन का उपदेश सुनता है,

वह सद्धर्म से उसी प्रकार गिर जाता है
जिस प्रकार कि काल-पक्ष में चन्द्रमा ॥३६४॥

जो मूर्ख आलोचना के विचार से
जिन का उपदेश सुनता है,
वह सद्धर्म में उसी प्रकार सूख जाता है,
जिस प्रकार कि थोड़े पानी में मछली ॥३६५॥

जो मूर्ख आलोचना के विचार से
जिन का उपदेश सुनता है
सद्धर्म में उसकी वृद्धि उसी प्रकार नहीं होती
जिस प्रकार कि खेत में सड़ा हुआ बीज ॥३६६॥

जो प्रसन्न चित्त से जिन का उपदेश सुनता है
वह सभी आस्रवों को समाप्त कर,
निर्वाण को साक्षात् कर,
परम शान्ति को प्राप्त कर,
आस्रव रहित हो परिनिर्वाण को प्राप्त होगा ॥३६७॥

२०८ सोण

अवन्ति के एक सेठ के पुत्र। महाकच्चायन के श्रावक। बाद में सब कुछ त्यागकर उन्हीं के पास प्रव्रजित हुए थे। एक दिन उपाध्याय के कहने पर और सब्रह्मचारियों के साथ भगवान् के पास कुछ आदेश पाने गये। वहाँ उपदेश सुनकर वहाँ भगवान् ने उसी विहार में रात भी बिता दी। आवश्यक आदेश पाकर सोण अपने उपाध्याय के पास गये। अर्हत् पद पाने के बाद सोण ने उक्त घटना का स्मरण करके यह उदान गाया।

मैंने उपसम्पदा भी पायी,
आस्रव रहित हो मुक्त भी हुआ हूँ।
मैंने भगवान् का दर्शन पाया,
और साथ ही विहार में भी रहा ॥३६५॥
रात्रि में देर तक भगवान्
खुले स्थान में विराजे,
तब (ब्रह्म) विहारों* में कुशल शास्ता ने
विहार में प्रवेश किया ॥३६६॥
संघाटि को बिछाकर गौतम वैसा ही सोये
जैसा कि भय और त्रास रहित सिंह पर्वत गुफा में ॥३६७॥
तब सुन्दर वचनवाला सम्यक् सम्बुद्ध का श्रावक
सोण ने श्रेष्ठ बुद्ध के सम्मुख सद्धर्म की चर्चा की ॥३६८॥
(वह) पाँच स्कन्धों को जानकर,
(आर्य) मार्ग का अभ्यास कर,
परम शान्ति को प्राप्त हो,
आस्रव रहित हो निर्वाण को प्राप्त होगा ॥३६९॥

२०९. कोसिय

मगध के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। आनन्द के पास प्रव्रजित हो परमपद को प्राप्त। अपने अनुभव के प्रकाश में कोसिय स्थविर ने यह उदान गाया

जो धीर गुरुओं के वचन को समझता है,
और प्रेम पूर्वक उसका आचरण करता है,
वह पण्डित भक्तिमान् कहलाता है।
वह धर्म को जान कर
विशेषता को प्राप्त होता है ॥३७०॥

बड़ी विपत्ति के भी आ पड़ने पर
वह व्याकुल नहीं होता
विवेकशील होता है।
वह पण्डित बलवान् कहलाता है।
वह धर्म को जान कर विशेषता को प्राप्त होता है ॥२७१॥
जो समुद्र की तरह स्थित है
अचल है, गम्भीर प्रज्ञ है,
अर्थ के दर्शन में निपुण है,
वह पण्डित असंहारिय[1] कहलाता है।
वह धर्म को जान कर
विशेषता को प्राप्त होता है ॥२७२॥
जो बहुश्रुत है धर्मधर है,
धर्म के अनुसार आचरण करता है
वह पण्डित (गुरु के) समान है।
वह धर्म को जान कर
विशेषता को प्राप्त होता है ॥२७३॥
जो (उपदिष्ट) धर्म के अर्थ को जानता है,
अर्थ को जान कर उसके अनुसार आचरण करता है,
वह पण्डित अर्थान्तर[2] कहलाता है।
वह धर्म को जान कर
विशेषता को प्राप्त होता है ॥२७४॥

पाँचवाँ निपात समाप्त

---

१ जो त्यागने योग्य न हो।
२ अर्थ के ज्ञान के बाद ही आचरण करने वाला।

छठवाँ निपात

इक्कीसवाँ वर्ग

२१०. उरुवेलकस्सप

नदीकस्सप तथा गयाकस्सप के बड़े भाई। छोटे भाई की तरह त्रिवेद-पारङ्गत हो पाँच सौ शिष्यों की मण्डली के साथ रहते थे। बाद में, छोटे भाइयों की तरह, भगवान् से उपदेश सुन कर प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद उरुवेलकस्सप स्थविर ने यह उदान गाया ·

यशस्वी गौतम के प्रातिहार्यों[1] को देखकर भी
ईर्षा और अभिमान से वञ्चित होने के कारण
मैंने उन्हें प्रणाम नहीं किया ॥३७५॥

मेरे विचार को जान कर
नर-सारथी ने (मेरा) दोष दिखाया।
तब मुझे संवेग उत्पन्न हुआ,
अद्भुत रोमांच हुआ ॥३७६॥

पहले जटिल[2] रहते समय मुझे
जो सत्कार सम्मान मिला था,
उसे त्याग कर मैं जिन-शासन में प्रव्रजित हुआ ॥३७७॥

पहले काम भूमि* (में जन्म लेने) की आशा से
यज्ञ से सन्तुष्ट रहता था।

---

१ ऋद्धिबल।

२ जटाधारी साधु।

बाद में राग, द्वेष और मोह को
जामूल नष्ट किया ॥५७८॥
मैं पूर्व जन्मों को जानता हूँ,
(मेरा) दिव्य चक्षु विशुद्ध है।
ऋद्धिमान हूँ दूसरों के चित्त को जाननेवाला हूँ
और दिव्य श्रोत को प्राप्त हुआ हूँ ॥५७९॥
जिस अर्थ के लिए घर से
बेघर होकर प्रव्रजित हुआ,
मैंने उस अर्थ को,
सभी बन्धनों के क्षय को
प्राप्त किया ॥५८०॥

२११ तेकिच्छकानि

बनारस के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। चाणक्य के कहने पर राजा द्वारा पिता को कारागार में बन्द करने पर वे घर से भाग गये। बाद में एक भिक्षु के पास प्रव्रजित हो खुले मैदान में ध्यान-भावना करने लगे। एक दिन मार ने धान कट जाने के बाद क्षेत्र-रक्षक के भेष में आकर भिक्षु को साधना से विचलित करने के विचार से इस प्रकार कहा :

धान कोठे में गया है और शालि खलिहान में गया है
भिक्षा भी नहीं मिलेगी (अब) मैं क्या करूँगा ? ॥५८१॥

भिक्षु ने मार के विचार को जानकर अपने मन को समझाते हुए कहा :

अपरिमित बुद्ध का स्मरण कर प्रसन्न हो जाओ
शरीर को प्रीति से भर दो और
सतत उल्लास के साथ रहो ॥५८२॥

असीम धर्म का स्मरण करो
सतत उल्लास के साथ रहो ॥३८३॥
असीम संघ का स्मरण करो,
सतत उल्लास के साथ रहो ॥३८४॥
फिर भी मार ने इस प्रकार कहा
क्या खुले मैदान में रहोगे !
हेमंत की ये रातें शीत है ।
शीत के वश में होकर परेशान न होओ,
विहार में प्रवेश कर द्वार बन्द कर लो ॥३८५॥
फिर जवाब देते हुए भिक्षु ने इस प्रकार कहा
चार अप्रमेयों[1] का अनुभव प्राप्त करूँगा,
उनसे सुख पूर्वक विहार करूँगा ।
मैं शीत से परेशान नहीं हूंगा,
(उससे) अविचलित रहूँगा ॥३८६॥

२१२. महानाग

साकेत के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न । गवम्पति थेर के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त । एक दिन कुछ धृष्ट भिक्षुओं को, जो कि और भिक्षुओं का गौरव नहीं करते थे, समझाते हुए महानाग स्थविर ने इस प्रकार कहा

जिस (भिक्षु) का गौरव सब्रह्मचारियों को प्राप्त नहीं होता,
वह सद्धर्म से वैसे ही गिर जाता है,
जैसे कि अल्पजल में मछली ॥३८७॥
जिस (भिक्षु) का गौरव सब्रह्मचारियों को प्राप्त नहीं होता,

१ ब्रह्मविहार ।

वह सद्धर्म में वैसे ही वृद्धि को प्राप्त नहीं होता,
जैसे कि खेत में सड़ा बीज ॥३८८॥
जिस (भिक्षु) का गौरव सब्रह्मचारियों को प्राप्त होता है,
वह धर्मराज के शासन में आकर (भी)
निर्वाण से दूर रह जाता है ॥३८९॥
जिस (भिक्षु) का गौरव सब्रह्मचारियों को प्राप्त होता है,
वह सद्धर्म से वैसे ही नहीं गिरता,
जैसे कि बड़े जलाशय में मछली ॥३९०॥
जिस (भिक्षु) का गौरव सब्रह्मचारियों को प्राप्त होता है,
वह सद्धर्म में वैसे ही वृद्धि को प्राप्त होता है,
जैसे कि खेत में अच्छा बीज ॥३९१॥
जिस (भिक्षु) का गौरव सब्रह्मचारियों को प्राप्त होता है,
वह धर्मराज के शासन में आकर
निर्वाण के निकट हो जाता है ॥३९२॥

२१३ कुल्ल

श्रावस्ती के एक कुलीन के पुत्र। भगवान् के पास प्रव्रजित हो ध्यान करते थे किंतु चित्त कामासक्त रहता था। भगवान् ने उन्हें अशुभ कर्मस्थान दे दिया। वे श्मशान में जाकर शव पर ध्यान कर मनको शान्त कर अर्हत् पद को प्राप्त हुए। तब अनुभव को प्रकट करके आयुष्मान् कुल्ल ने यह उदान गाया :

श्मशान में जाकर कुल्ल ने फेंके हुए स्त्री (शव) को देखा।
श्मशान में पड़े हुए उसे कीड़े खा रहे थे ॥३९३॥
कुल्ल ! रोगी अपवित्र और सड़े हुए इस शरीर को देखो।
ऊपर और नीचे (पीब पसरपाता) यह शरीर
मूर्खों को पसन्द है ॥३९४॥

धर्म रूपी दर्पण लेकर ज्ञान-दर्शन की प्राप्ति के लिए
भीतर और बाहर इस तुच्छ शरीर पर
(मैंने) मनन किया ॥३९५॥
जैसा यह (शरीर) है वैसा वह शरीर है।
जैसा वह है वैसा यह है।
जैसा नीचे है वैसा ऊपर है।
जैसा ऊपर है वैसा नीचे है ॥३९६॥
जैसा दिन में है वैसा रात्रि में है।
जैसा रात्रि में है वैसा दिन में है।
जैसा पहले था वैसा बाद में होगा।
जैसा बाद में होगा वैसा पहले था ॥३९७॥
पाँच प्रकार के तूर्यों से भी
वैसा आनन्द नहीं मिलता,
जैसा आनन्द एकाग्रचित्त हो
सम्यक् रूप से धर्म देखनेवाले (साधक) को मिलता है ॥३९८॥

२१४ मालुंक्यपुत्र

कोशल नरेश के गणक के पुत्र। शिक्षा के बाद परिव्राजक हो विचरण करते थे। बाद में भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। एक दिन मालुक्यपुत्र अपने बन्धुओं को उपदेश देने गये। लोगों ने उन्हें प्रलोभित कर घर पर रखने का प्रयत्न किया। उस अवसर पर मालुंक्यपुत्र स्थविर ने यह उदान गाया

प्रमत्त होकर आचरण करनेवाले मनुष्य की तृष्णा
मालुवा लता की भाँति बढ़ती है,

वन में फल की इच्छा से (एक शाखा से दूसरी शाखा पर)
कूदनेवाले वानर की तरह वह
जन्मजन्मान्तर में भटकता रहता है ॥३९९॥
यह विषरूपी नीच तृष्णा जिसे अभिभूत कर देती है
उसके शोक वर्षाकाल में बीरण तृण की भाँति
वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥४० ॥
जो संसार में इस दुस्त्याज्य नीच तृष्णा को जीत लेता है,
उसके शोक उस तरह गिर जाते हैं
जिस तरह कमल के ऊपर से जल के बिन्दु ॥४०१॥
तुमलोग जितने यहाँ पर एकत्र हुए हैं
उनके कल्याण के लिए कहता हूँ ।
जैसे खस के लिए लोग उशीर को खोदते हैं,
वैसे ही तुम तृष्णा की जड़ खोदो ।
स्रोत में (उत्पन्न) नरकुल की भाँति
मार बारम्बार तुम्हें न तोड़े ॥४ २॥
बुद्ध-वचन का अनुसरण करो
अपने अवसर को न खोओ ।
जो अवसर को खोते हैं
वे नरक में पड़कर पछताते हैं ॥४०३॥
सर्वदा प्रमाद ही रज है ।
प्रमाद से ही (वासना रूपी) रज इकट्ठा होता है ।
अप्रमाद और विद्या से
अपने (दुःख रूपी) तीर को निकाल दो' ॥४०४॥

२१५ सप्पदास

राजा शुद्धोदन के राज पुरोहित के पुत्र। वे भगवान् के पास प्रव्रजित हुए थे। उनके मन में काम वितर्क उत्पन्न होते थे और काया प्रसन्न

करने पर भी मन को शान्ति नहीं मिलती थी। उदास होकर एक दिन वे आत्म-हत्या के लिए तैयार हो गये कि उनका मन समाधिस्थ हुआ और वे अर्हत् पद को प्राप्त हुए। तव सप्पदास ने अपने अनुभव को लक्ष्य करके यह उदान गाया

मुझे प्रव्रजित हुए पचीस वर्ष हुए,
लेकिन अंगुली बजाने भर समय के लिए भी
चित्त-शान्ति नहीं मिली ॥४०५॥
चित्त की एकाग्रता को न पा,
काम राग से पीड़ित हो,
बाँह पकड़ कर रोता हुआ
मैं विहार से निकल गया ॥४०६॥
(आत्म-हत्या के लिए) शस्त्र लाऊँगा।
मेरे जीने से क्या लाभ है?
मुझ जैसा (व्यक्ति) नियमों को त्याग कर
किस प्रकार मर सकता है? ॥४०७॥

तब मैं उस्तरा लेकर पलंग पर बैठ गया।
अपनी धमनी काटने के लिए
(गले पर) उस्तरा रक्खा ही था ॥४०८॥

तब मुझे विवेकपूर्ण विचार उत्पन्न हुआ।
(शरीर के) दुष्परिणाम प्रकट हुए,
निर्वेद उत्पन्न हुआ ॥४०९॥

तब मेरा चित्त मुक्त हुआ।
धर्म की महिमा को देखो।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया
और बुद्ध शासन को पूरा किया ॥४१०॥

वन में फल की इच्छा से (एक शाखा से दूसरी शाखा पर)
कूदनेवाले वानर की तरह वह
जन्मजन्मान्तर में भटकता रहता है ॥३९९॥
यह विषरूपी नीच तृष्णा जिसे अभिभूत कर देती है
उसके शोक वर्षाकाल में वीरण तृण की भाँति
वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥४ ॥
जो संसार में इस दुस्त्याज्य नीच तृष्णा को जीत लेता है,
उसके शोक उस तरह गिर जाते हैं
जिस तरह कमल के ऊपर से जल के विन्दु ॥४०१॥
तुमलोग जितने यहाँ पर एकत्र हुए हैं
उनके कल्याण के लिए कहता हूँ :
जैसे खस के लिए लोग उशीर को खोदते हैं,
वैसे ही तुम तृष्णा की जड़ खोदो।
स्रोत में (उत्पन्न) नरकुल की भाँति
मार बारम्बार तुम्हें न तोड़े ॥४ २॥
बुद्ध-वचन का अनुसरण करो
अपने अवसर को न खोओ।
जो अवसर को खोते हैं
वे नरक में पड़कर पछताते हैं ॥४०३॥
सर्वदा प्रमाद ही रज है।
प्रमाद से ही (वासना रूपी) रज इकट्ठा होता है।
अप्रमाद और विद्या से
अपने (दुःख रूपी) तीर को निकाल दो ॥४०४॥

२१५ सप्पदास

राजा शुद्धोदन के राज पुरोहित के पुत्र। वे भगवान् के पास प्रव्रजित हुए थे। उनके मन में काम वितर्क उत्पन्न होते थे और काफ प्रयत्न

करने पर भी मन को शान्ति नहीं मिलती थी। उदास होकर एक दिन वे आत्म-हत्या के लिए तैयार हो गये कि उनका मन समाधिस्थ हुआ और वे अर्हत् पद को प्राप्त हुए। तब सप्पदास ने अपने अनुभव को लक्ष्य करके यह उदान गाया

मुझे प्रव्रजित हुए पच्चीस वर्ष हुए,
लेकिन अंगुली बजाने भर समय के लिए भी
चित्त-शान्ति नहीं मिली ॥४०५॥

चित्त की एकाग्रता को न पा,
काम राग से पीड़ित हो,
बाँह पकड़ कर रोता हुआ
मैं विहार से निकल गया ॥४०६॥

(आत्म-हत्या के लिए) शस्त्र लाऊँगा।
मेरे जीने से क्या लाभ है?
मुझ जैसा (व्यक्ति) नियमों को त्याग कर
किस प्रकार मर सकता है? ॥४०७॥

तब मैं उस्तरा लेकर पलंग पर बैठ गया।
अपनी धमनी काटने के लिए
(गले पर) उस्तरा रक्खा ही था ॥४०८॥

तब मुझे विवेकपूर्ण विचार उत्पन्न हुआ।
(शरीर के) दुष्परिणाम प्रकट हुए,
निर्वेद उत्पन्न हुआ ॥४०९॥

तब मेरा चित्त मुक्त हुआ।
धर्म की महिमा को देखो।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया
और बुद्ध शासन को पूरा किया ॥४१०॥

२१६ कातियान

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् के पास प्रव्रजित हो दिन रात योगाभ्यास करते थे। एक दिन चंक्रमण पर चलते हुए ध्यान-भावना करते समय उन्हें नींद आयी और वे चंक्रमण से गिर पड़े। भगवान् ने उन्हें सचेत करते हुए उपदेश दिया। कातियान उद्योग कर शीघ्र ही अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद एक दिन भगवान् के उक्त उपदेश को कातियान स्थविर ने उदान के रूप में गाया :-

कातियान ! उठो और बैठो।
निद्रा बहुल न होओ जागृत रहो।
प्रमत्त बन्धु मृत्युराज
आलसी तुम्हें धोखे से जीत न ले ॥४११॥
महासमुद्र की तरंगों के वेग की तरह
जन्म मृत्यु तुम्हें वश में न कर ले।
तुम अपने लिए अच्छा द्वीप बना लो
तुम्हारे लिए कोई दूसरा त्राण नहीं है ॥४१२॥
शास्ता ने (तुम्हारे लिए) यह मार्ग ठीक किया है,
ये आसक्ति जन्म जरा और भय से परे हो गये हैं।
रात्रि के आरम्भ में और अन्त में (भी)
अप्रमादी हो (ध्यान में) तत्पर रहो
और उद्योग को दृढ़ करो ॥४१३॥
पहले (गृहस्थ) बन्धनों से मुक्त हो जाना।
चीवर पहन कर, उस्तरे से सर मुड़ा कर
भिक्षा से प्राप्त भोजन ग्रहण कर
क्रीड़ा और निद्रा का आनन्द न ले।
कातियान ! तत्पर हो ध्यान करो ॥४१४॥

कातियान ! ध्यान करो और विजयी बनो ।
योगक्षेम (निर्वाण) पथ में कुशल बनो ।
अनुत्तर विशुद्धि को प्राप्त हो (उसी प्रकार) शान्त हो जाओ,
(जिस प्रकार) पानी से आग शान्त हो जाती है ॥४१५॥
अल्प ज्योति की रोशनी वायु से झुकी लता की तरह है ।
इसी प्रकार इन्द्र के समान गोत्रवाले तुम
अनासक्त हो मार को हिला दो ।
वेदनाओं में निर्लिप्त हो, शान्त हो,
यहीं समय की प्रतीक्षा करो ॥४१६॥

२१७. मिगजाल

महोपासिका विसाखा के एक पुत्र । प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त कर मिगजाल स्थविर ने यह उदान गाया

चक्षुमान् आदित्य बन्धु बुद्ध द्वारा
सुदेशित यह (धर्म) है ।
यह (लोगों को) सभी बन्धनों से पार कर देता है ।
सारे भवचक्र को नाश कर डालता है ॥४१७॥
यह नैर्याणिक[1] है, (संसार से) उतार देता है,
तृष्णा की जड़ को सुखा देता है,
दुःख पहुँचाने वाले (तृष्णा) विष के मूल को
काट कर शान्ति को पहुँचाता है ॥४१८॥
(यह) अविद्या के मूल को तोड़ देता है,
कर्म यन्त्र को विघटित कर देता है,

---

१ निर्वाण को पहुँचानेवाला ।

और ज्ञान-वज्र को गिरा कर
(प्रतिसन्धि) विज्ञान० को समाप्त कर देता है ॥५१९॥

(यह) वेदनाओं (के यथार्थ स्वभाव) को दिखाता है,
उपादान से मुक्त कर देता है
और ज्ञान द्वारा भव रूपी अङ्गारगर्त को दिखाता है॥५२०॥

आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग महान् रसयुक्त है
गम्भीर है जरा और मृत्यु को समाप्त कर देता है
दुःख को शान्त करता है और शिव है ॥५२१॥

कर्म को कर्म जाने और (कर्म) फल को (कर्म) फल जाने।
(ज्ञान) आलोक द्वारा प्रतीत्यसमुत्पाद धर्मों को देखे।
(यह धर्म) महान् क्षेम को पहुँचाता है
(उसका) अन्त कल्याणकारी है।॥५२२॥

२१८ जेन्त

कोशल नरेश के राजपुरोहित के पुत्र। वे जाति धन तथा रूप सौन्दर्य के अभिमान से मस्त होकर गुरुजनों का सम्मान नहीं करते थे। बाद में भगवान् से उपदेश सुनकर प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद जेन्त स्थविर ने उक्त अभिमान को नष्ट कर के यह उदान गाया।

जातिमद भोग तथा ऐश्वर्य से मस्त हो
संस्थान[1] वर्ण तथा रूप मद से मस्त हो,
मैं विचरता था ॥५२३॥

---

१ शक्ल।

किसी को अपने समान या
(अपने से) बड़ा नहीं समझता था।
मूर्ख (मैं) अभिमान से पीड़ित था,
धृष्ट था, दुर्विनीत था ॥४२४॥
माता, पिता या किसी दूसरे गुरुजन का
अभिवादन नहीं करता था,
अभिमान से फुला था, आदर रहित था ॥४२५॥
विशिष्ट और अग्र नेता को, सारथियों में श्रेष्ठ
और उत्तम (सारथी) को, भिक्षु-मण्डली के साथ
प्रकाशमान आदित्य जैसे (बुद्ध) को
देखकर, अभिमान तथा मद त्यागकर,
बहुत प्रसन्न चित्त से, सभी प्राणियों में
श्रेष्ठ (बुद्ध) का सिर से (मैंने) अभिवादन किया ॥४२६-७॥
अभिमान और अवमान क्षीण हैं,
अच्छी तरह नष्ट हैं।
अहङ्कार आमूल नष्ट हैं,
सभी प्रकार के अभिमान नष्ट हैं ॥४२८॥

२१९. सुमन

अनुरुद्ध थेर के उपस्थायक (=सेवा करनेवाले) उपासक के पुत्र। सात वर्ष की आयु में प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त। वे ऋद्धि-बल द्वारा अपने उपाध्याय अनुरुद्ध के लिए अनोतत्त दह (=मानसरोवर) से पानी लाने गये। वहाँ पर रहनेवाला एक नागराज उन्हें तंग करने लगा। श्रामणेर अपने ऋद्धि-बल से नागराज को वश में कर पानी लेकर आ रहे थे। आते हुए उन्हें सारिपुत्त को दिखाकर भगवान् ने उनकी

प्रशंसा की। अपने उदान में सुमन स्थविर ने भगवान् के वचनों को भी जोड़ दिया।

मैं नव-प्रव्रजित था, जन्म से सात वर्ष का था।
ऋद्धि (बल) से प्रतापी नागराज को
वश में कर लिया ॥४२९॥

विशाल अनोतत्त दह से उपाध्याय के लिए
मैं जल ला रहा था।
मुझे देखकर शास्ता ने इस प्रकार कहा ॥४३०॥

सारिपुत्र! पानी के घड़े को लेकर आनेवाले
उस कुमार को देखो,
उसका मन सुसमाहित है ॥४३१॥

वह प्रसन्न मती है,
(उसका) रहन सहन कल्याणकारी है।
अनुरुद्ध का श्रामणेर ऋद्धि में कुशल है ॥४३२॥

(यह) नव-प्रव्रजित है, जन्म से सात वर्ष का है।
ऋद्धि द्वारा प्रतापी नागराज को वश में किया है ॥४३३॥

श्रेष्ठ (अनुरुद्ध) द्वारा सुविनीत है,
साधु (पुरुष) द्वारा साधु बनाया गया है।
अनुरुद्ध द्वारा विनीत है
कृतकृत्य (अनुरुद्ध) द्वारा शिक्षित ॥४३४॥

परम शान्ति को प्राप्त हो, निर्वाण को साक्षात् कर,
यह सुमन श्रामणेर चाहता है कि
(दूसरे) मुझे न जानें ॥४३५॥

२२०. नहातकमुनि

राजगृह के ब्राह्मणकुल में उत्पन्न। त्यागी बनकर एक वन में अग्नि की उपासना करते थे। बाद में भगवान् से उपदेश सुनकर, प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। कुछ समय के बाद वातरोग से पीड़ित हो नहातक मुनि वन में ही रहते थे। एक दिन भगवान् ने उनसे पूछा

वात रोग से पीड़ित हो तुम कानन में, वन में विहरते हो।
भिक्षु! भिक्षा-दुर्लभ इस रुक्ष स्थान में कैसे रहोगे? ॥४३६॥

तब नहातकमुनि ने भगवान् से कहा

शरीर में विपुल, प्रीति सुख फैला कर,
कठिनाई को वश में कर,
कानन में विहरूँगा ॥४३७॥

सात बोध्याङ्गों, (पाँच) इन्द्रियों और
(पाँच) बलों का अभ्यास कर,
सूक्ष्म ध्यान से युक्त हो, आस्रव रहित हो विहरूँगा ॥४३८॥

मन के विकारों से पूर्ण रूप से मुक्त हो,
विशुद्ध चित्त हो, अचल हो, सतत
विवेकशील हो, आस्रव रहित हो विहरूँगा ॥४३९॥

अन्दर और बाहर जो मेरे आस्रव थे,
वे निःशेष उच्छिन्न हैं, फिर वे उत्पन्न नहीं होंगे ॥४४०॥

पाँच स्कन्ध पूर्ण रूप से जाने गये हैं,
वे आमूल नष्ट हैं। दुःख के क्षय को प्राप्त हुआ हूँ,
अब (मेरे लिए) पुनर्जन्म नहीं है ॥४४१॥

२२१ ब्रह्मदत्त

कोशल नरेश के पुत्र। प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त। एक दिन भिक्षा के लिए जाते समय किसी ब्राह्मण ने उन्हें दुर्वचन कहा। भिक्षु चुप थे। उन्हें चुप देख कर कुछ लोग उनकी आलोचना करने लगे। जिस पर ब्रह्मदत्त स्थविर ने लोगों को इस प्रकार समझाया।

शान्त सम जीवी, सम्यक् ज्ञान द्वारा मुक्त,
उपशान्त अचल, क्रोधहीन (पुरुष) को
क्रोध कहाँ से? ॥४४२॥
जो क्रुद्ध (मनुष्य) पर क्रोध करता है,
उससे उसका अपना अहित होता है।
जो क्रुद्ध (मनुष्य) पर क्रोध नहीं करता
वह दुर्जेय संग्राम को जीत लेता है ॥४४३॥
दूसरे को क्रुद्ध जान कर जो स्मृतिमान् हो शान्त रहता है,
वह अपना और पराया दोनों का हित करता है ॥४४४॥
अपना और पराया दोनों का प्रतीकार करने वाले उसे
धर्म को न जानने वाले लोग मूर्ख समझते हैं ॥४४५॥

इस उपदेश को सुन कर स्वयं वह ब्राह्मण ब्रह्मदत्त स्थविर पर प्रसन्न हुआ और उनके पास ही प्रव्रजित हुआ। उसके बाद ब्रह्मदत्त ने अपने उस शिष्यको क्रोध पर विजय पाने के लिए उपदेश देते हुए इस प्रकार कहा।

यदि क्रोध उत्पन्न हो तो आरी की उपमा का स्मरण करो।
यदि स्वाद में तृष्णा उत्पन्न हो तो
पुत्र माँस की उपमा का स्मरण करो ॥४४६॥

यदि तुम्हारा चित्त काम (तृष्णा)
और भव (तृष्णा) की ओर दौड़े तो
स्मृति से शीघ्र ही उसका निग्रह वैसे ही करो,
जैसे कि नई फसल को खाने वाले दुष्ट पशु को ॥४४७॥

२२२. सिरिमन्द

सुंसुमारगिरि के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भेसकला वन में भगवान् से उपदेश सुनकर प्रव्रजित। एक दिन संघ के बीच सिरिमन्द ने अपने किसी दोष को प्रकट किया। अर्हत् पद पाने के बाद सिरिमन्द स्थविर ने दोष छिपाने के दुष्परिणाम और दोष प्रकट करने के सुपरिणाम को दिखाते हुए कुछ भिक्षुओं को इस प्रकार उपदेश दिया .

(दोष को) छिपाने से वह बढ़ता है।
(दोष को) प्रकट करने से वह बढ़ता नहीं।
इसलिए किए दोष को प्रकट करो,
इससे वह बढ़ेगा नहीं ॥४४८॥
संसार मृत्यु से पीड़ित है, जरा से घिरा है,
तृष्णा (रूपी) तीर से आहत है,
और इच्छा (रूपी अग्नि) से सदा तप्त है ॥४४९॥
संसार मृत्यु से पीड़ित है, जरा से आवृत है,
सतत त्राण के बिना (वैसा ही) पीड़ित रहता है,
जैसा कि पकड़ा हुआ चोर राजदण्ड से ॥४५०॥
मृत्यु, व्याधि, जरा—ये तीनों
अग्निराशि की तरह आ जाते हैं,
(उनका) सामना करने का बल नहीं,
(उनसे) भाग जाने का जव नहीं ॥४५१॥

अल्प या बहुत साधना द्वारा
दिवस को खाली न जाने दे।
ज्यों ज्यों रात बीतती जाती है
उससे जीवन भी कम होता जाता है ॥४५२॥
चलते, ठहरते या लेटते
आखीरी रात आ जाती है,
(अतः) तुम्हें प्रमाद करने का समय नहीं ॥४५३॥

२२१ सब्बकामि

भगवान् के महापरिनिर्वाण के बाद वैशाली के क्षत्रिय कुल में उत्पन्न। आनन्द के पास प्रव्रजित। एक दिन उपाध्याय के साथ ही घर पर गये। वहाँ अपनी पूर्व पत्नी को शोकातुर देखकर उनका मन विचलित हुआ। संवेग पाकर श्मशान में जा के अशुभ भावना का अभ्यास करने लगे और शीघ्र ही अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद ससुर अपनी लड़की को लेकर उन्हें लिवा जाने के लिए विहार गया। उस अवसर पर सब्बकामि स्थविर ने अपनी शान्ति को व्यक्त करते हुए यह उदान गाया :

यह अपवित्र और दुर्गन्ध द्विपादक
(शरीर) गन्दगी फैलाता है।
अनेक गन्दगियों से भरा यह (शरीर)
जहाँ तहाँ दुर्गन्ध फैलाता है ॥४५४॥
जिस प्रकार छिपे हुए मृग को धोखे से
मछली को काँटे से और बन्दर को लेप से
फँसाया जाता है उसी प्रकार
सामान्य जन (काम तृष्णा में) फँसाये जाते हैं ॥४५५॥

मनोरम रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श,
ये पाँच प्रकार के काम-गुण
स्त्री रूप में दिखाई देते हैं ॥४५६॥
जो आसक्त-चित्त सामान्य जन
इनका उपभोग करते है,
वे घोर संसार को बढ़ाते है,
और पुनर्जन्मों का संचय करते है ॥४५७॥
जो इसका त्याग वैसा ही कर देता है
जैसा कि पैर साँप के सर को,
वह स्मृतिमान् हो इस विपाक्त
संसार के परे हो जाता है ॥४५८॥
कामों के दुष्परिणामको देखकर
निष्कामता को क्षेम (के रूपमें) देखा।
सभी कामों से निर्लिप्त हो मैंने
आस्रवों के क्षय को प्राप्त किया ॥४५९॥

छठवाँ निपात समाप्त

सातवाँ निपात

बाईसवाँ वर्ग

२२४ सुन्दरसमुद्द

राजगृह के एक सेठ के पुत्र। भगवान् के पास प्रव्रजित हो श्रावस्ती में रहते थे। माता पुत्र के वियोग से शोकातुर रहती थी। एक वेश्या माता की अनुमति लेकर पुत्र को लुभा लाने के लिए, श्रावस्ती गई। एक दिन जब भिक्षु भिक्षा के लिए निकले तो उसी स्त्री ने उन्हें भिक्षु जीवन से विचलित करने का प्रयत्न किया। तब उससे और भी उद्योगी हो भिक्षु ध्यान-भावना करने लगे और अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद उस घटना को स्मरण करके सुन्दर समुद्द स्थविर ने यह उदान गाया :

अलंकृत सुन्दर वस्त्र पहन कर,
माला धारणकर, आभूषित हो
पावों को आलता से सजाकर,
पादुका पहन कर वेश्या (आयी) ॥५१०॥
पादुका उतार कर उसने मेरे सम्मुख प्रणाम किया,
फिर मेरे सामने वह बैठी
और चिकनी चुपड़ी बातें बोली ॥५११॥
तुम जवान ही में प्रव्रजित हुए हो,
मेरी बात मानो। मानुषिक कामों का
उपभोग करो मैं तुम्हें धन देती हूँ ॥५१२॥

मैं तुम्हारे साथ सच्ची प्रतिज्ञा करती हूँ।
या आग लाकर (उसके सामने प्रतिज्ञा करती हूँ)।
जब दोनों बूढ़े होंगे, दण्ड परायण होंगे ॥४६३॥
(तब) दोनों प्रव्रजित होंगे और
(इस लोक और परलोक)
दोनों का लाभ उठायेंगे।
इस प्रकार अलंकृत सुन्दर वस्त्र पहन
मार के लगाये हुए पाश के समान,
अञ्जलीबद्ध हो प्रार्थना करती हुई
उस स्त्री को देखकर
मुझे विवेकशील विचार उत्पन्न हुआ ॥४६४-५॥
(मुझे शरीर के) दुष्परिणाम प्रकट हुए,
निर्वेद उत्पन्न हुआ।
तब मेरा चित्त मुक्त हुआ,
धर्म की इस महिमा को देखो।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया,
और बुद्ध-शासन को पूरा किया ॥४६६॥

२२५. लकुण्टक भद्दिय

श्रावस्ती के सम्पन्न परिवार में उत्पन्न। नाम था भद्दिय। बहुत ही नाटे थे। इसलिए लकुण्टक भद्दिय नाम भी पड़ा। भद्दिय देखने में कुरूप थे। लेकिन उनका स्वर बहुत ही मधुर था। भगवान् से उपदेश सुनकर वे प्रव्रजित हुए और विख्यात उपदेशक बने। एक दिन एक स्त्री लकुण्टक भद्दिय को देखकर हँस पड़ी। भद्दिय उसके दाँतों पर मनन कर अनागामि हो गये। बाद में सारिपुत्र से शिक्षा लेकर

उपोसथी हो परमपद को प्राप्त हुए। तब भद्दिय स्थविर ने अपने अनुभव के प्रकाश में यह उदान गाया :

अम्बाटकाराम से आगे वन खण्ड में
भाग्यशाली भद्दिय समूल तृष्णा का
नाश कर ध्यान में बैठा है ॥४६७॥
कुछ लोग वीणाओं मृदङ्गों और तबलाओं में रमते हैं।
मैं वृक्षमूल में बैठे बुद्ध-शासन में रत हूँ ॥४६८॥
यदि बुद्ध मुझे कोई वर दें तो
मैं यही वर माँगूगा कि
सारा संसार सदा कायगतास्मृति का अभ्यास करे॥४६९॥

जो मेरे रूप की अवहेलना करते हैं
और मेरी आवाज के पीछे पड़ते हैं
छन्दराग के वश में पड़े वे लोग
मुझे नहीं पहचानते ॥४७०॥
जो अन्दर (की बातों) को नहीं जानता
और भीतर (की बातों) को नहीं देखता
चारों ओर से आवृत वह मूर्ख
शब्द से बह जाता है ॥४७१॥
जो अन्दर (की बातों) को नहीं जानता
भीतर (की बातों) को नहीं देखता
और (केवल) बाहरी फल को देखता है
वह भी शब्द से बह जाता है ॥४७२॥
जो अन्दर (की बातों) को समझता है
और भीतर (की बातों) को देखता है,
अनावरणदर्शी वह शब्द से नहीं बह जाता ॥४७३॥

२२६. भद्द

श्रावस्ती के एक सेठ के पुत्र। इनके माँ-बाप को जब एक भी पुत्र नहीं हुआ तो वे व्रत और उपवास के बाद भगवान् के पास गये और कहा कि यदि कोई पुत्र हमें उत्पन्न हो जाय, तो उसे आप की सेवा में दे देंगे। बाद में भद्द उन्हें प्राप्त हुए। सात वर्ष की आयु में इनके माता-पिता इन्हें लेकर भगवान् के पास गये। भगवान् ने इन्हें प्रव्रजित करने के लिए आनन्द से कहा। प्रव्रज्या के कुछ दिन बाद इन्होंने अर्हत् पद को प्राप्त कर लिया और अपने जीवन को लक्ष्य करके यह उदान गाया

मैं अकेला पुत्र था,
माता को प्रिय था,
पिता को प्रिय था।
बहुत व्रत-अनुष्ठान और प्रार्थना के बाद
(उन्होंने) मुझे पाया था ॥४७४॥

मेरे ऊपर अनुकम्पा करके
(मेरा) अर्थ और हित चाहनेवाले
दोनों पिता और माता मुझे लेकर
भगवान् के पास गये ॥४७५॥

इस पुत्र को कठिनाई से प्राप्त किया है,
यह सुकुमार है, सुख से पला है।
नाथ! इसे हम जिन की सेवा में दे देते हैं ॥४७६॥

मुझे स्वीकार करके शास्ता ने
आनन्द से इस प्रकार कहा—

इसे शीघ्र ही प्रव्रजित करो,
यह श्रेष्ठ पुरुष होगा ॥४७७॥
मुझे प्रव्रजित कर शास्ता जिन ने
विहार में प्रवेश किया।
सूर्य न उगने के पहले ही
मेरा चित्त मुक्त हुआ ॥४७८॥
तब शास्ता ने उपेक्षापूर्वक
ध्यान से उठकर मुझ से कहा
भद्र! आओ और यही मेरी उपसम्पदा हुई ॥४७९॥
जन्म से सात ही वर्ष में मैंने उपसम्पदा पायी।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया।
अहो धर्म की महिमा को ॥४८०॥

२२७ सोपाक

चण्डाल कुल में उत्पन्न। जब वे केवल चार महीने के थे तो उनका पिता गुजर गया। चाचा ने उनका पालन-पोषण किया। जब वे सात वर्ष के हो गये तो चाचा उनसे चिढ़कर श्मशान में ले जाकर, हाथ पैर बाँधकर फिर उन्हें एक शव में बाँधकर वहीं छोड़ गया। सोपाक बेचारे तो वहीं रोते रहे। महाकारुणिक भगवान् बुद्ध की कृपा-दृष्टि उन पर पड़ी। भगवान् ने उनका उद्धार कर प्रव्रजित किया। परम शान्ति को पाने के बाद सोपाक स्थविर ने इसे कथन करके यह उदान गाया।

प्रासाद[1] की छाया में टहलते हुए नरोत्तम को देखकर,
वहाँ पहुँचकर पुरुषोत्तम की वन्दना की ॥४८१॥

---

1 गन्धकुटी।

चीवर को एक कंधे पर कर के,
हाथों को जोड़कर,
रज रहित, सभी प्राणियों में श्रेष्ठ,
(बुद्ध) के पीछे पीछे टहला ॥४८२॥
तब प्रश्नों में कुशल, विज्ञ ने मुझसे प्रश्न पूछे।
बिना कम्पन के, बिना भय के,
मैंने शास्ता को जवाब दिया ॥४८३॥
प्रश्नों के मेरे जवाब देने पर
तथागत ने उनका अनुमोदन किया।
(फिर) भिक्षु-संघ को देखकर,
उन्होंने यह बात कही ॥४८४॥
अङ्ग और मगध के लोगों को बड़ा ही लाभ हुआ
जिनका चीवर, पिण्डपात औषधि और निवास का
यह (सोपाक) उपभोग करता है ॥४८५॥
(भगवान्) बोले कि आदर सम्मान से भी
उन्हें लाभ होता है।
सोपाक! आज से मेरे दर्शन के लिए आओ।
सोपाक! यही तुम्हारी उपसम्पदा हो ॥४८६॥
जन्म से सात वर्ष होने पर मैंने उपसम्पदा पायी।
(अब) अन्तिम देह धारण करता हूँ।
देखो धर्म की महिमा को! ॥४८७॥

२२८. सरभङ्ग

राजगृह के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। तपस्वी हो अपने हाथों से ही सरकंडों की कुटी बनाकर रहते थे। बाद में भगवान् से उपदेश सुनकर

इसे शीघ्र ही प्रव्रजित करो,
यह श्रेष्ठ पुरुष होगा ॥४७७॥
मुझे प्रव्रजित कर शास्ता जिन ने
विहार में प्रवेश किया।
सूर्य के उठने के पहले ही
मेरा चित्त मुक्त हुआ ॥४७८॥
तब शास्ता ने उपेक्षापूर्वक
ध्यान से उठकर मुझ से कहा
भद्र ! आओ और यही मेरी उपसम्पदा हुई ॥४७९॥
जन्म से सात ही वर्ष में मैंने उपसम्पदा पायी।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया।
देखो धर्म की महिमा को ॥४८०॥

२२७ सोपाक

चण्डाल कुल में उत्पन्न। जब वे केवल चार महीने के थे तो उनका पिता गुजर गया। चाचा ने उनका पालन-पोषण किया। जब वे सात वर्ष के हो गये तो चाचा उनसे चिढ़कर श्मशान में ले जाकर, हाथ पैर बाँधकर फिर उन्हें एक शव में बाँधकर वहीं छोड़ गया। सोपाक लाचार हो वहीं रोते रहे। महाकारुणिक भगवान् बुद्ध की कृपा-दृष्टि उन पर पड़ी। भगवान् ने उनका उद्धार कर प्रव्रजित किया। परम शान्ति को पाने के बाद सोपाक स्थविर ने इसे कहन करके यह उदान गाया।

प्रासाद[1] की छाया में टहलते हुए नरोत्तम को देखकर,
वहाँ पहुँचकर पुरुषोत्तम की वन्दना की ॥४८१॥

---

[1] गन्धकुटी।

इससे संसार का अनन्त दुःख बन्द हो जाता है।
इस शरीर के टूट जाने से,
इस जीवन के नष्ट होने से
(मेरे लिए) दूसरा जन्म नहीं,
मैं सभी वासनाओं से
पूर्ण रूप से मुक्त हूँ ॥४९४॥

सातवाँ निपात समाप्त

प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। कुटी को बुरी दशा में देखकर एक दिन कुछ लोगों ने उसकी मरम्मत न करने का कारण पूछा। उन लोगों को जवाब देते हुए सरभङ्ग स्थविर ने यह उदान गाथा।

(अपने) हाथों से सरकण्डे तोड़ कर
कुटी बना कर रहता था।
इसलिए व्यवहार में
मेरा नाम सरभङ्ग पड़ा ॥४८८॥
आज मुझे (अपने) हाथों से सरकण्डे नहीं तोड़ने चाहिए।
यशस्वी गौतम ने हमारे लिए नियम बनाये हैं ॥४८९॥
पहले सरभङ्ग ने (पाँच स्कन्धरूपी)
रोग को पूर्ण रूप से नहीं देखा था।
देवातिदेव (बुद्ध) के वचन का
अनुसरण करनेवाले (मैंने) उसे (अब) देखा है ॥४९०॥
जिस मार्ग से विपस्सी गये, जिस मार्ग से सिखी
वेस्सभू ककुसन्ध कोणागमन और कस्सप गये
उसी मार्ग से गौतम (भी) गये ॥४९१॥
तृष्णा रहित आसक्ति रहित
सातों बुद्ध क्षय[1] को प्राप्त हुए।
उन धर्मभूत अचल (बुद्धों) ने
इस धर्म का उपदेश किया है ॥४९२॥
प्राणियों पर अनुकम्पा करके
दुःख दुःख का कारण दुःख का निरोध
और दुःख निरोध का मार्ग
इन चार आर्यसत्यों का उपदेश किया है ॥४९३॥

---

१ निर्वाण।

नीच पुरुष द्वारा मुश्किल से निकाला जा सकता है,
छोड़ा जा सकता है ॥४९६॥

कच्चायन ने एक दिन चण्डप्रद्योत को इस प्रकार उपदेश दिया

मनुष्य को न तो दूसरों से पाप कर्म कराना चाहिए
और न स्वयं ही उसका आचरण करना चाहिए,
क्योंकि मनुष्य (अपने) कर्म का उत्तराधिकारी होता है॥४९७॥
दूसरों के कहने से कोई चोर नहीं होता,
दूसरों के कहने से कोई मुनि (भी) नहीं होता।
हम स्वयं अपने को जानते हैं,
और देवता भी उसी प्रकार हमें जानते है ॥४९८॥
अनाड़ी लोग इसका ख्याल नही करते
कि हम इस संसार में नहीं रहेंगे,
जो इसका ख्याल करते है
उनके सारे कलह शान्त हो जाते हैं ॥४९९॥
धनहीन होने पर भी प्राज्ञ (यथार्थ में) जीता है।
धनवान् होने पर भी अज्ञानी (यथार्थ में) नहीं जीता॥५००॥

फिर एक दिन स्वप्न के विषय में पूछने पर कच्चायन ने राजा से इस प्रकार कहा

(मनुष्य) सब कुछ कान से सुनता है,
और सब कुछ आँख से देखता है।
धीर देखी हुई और सुनी हुई
सभी बातों की उपेक्षा न करे ॥५०१॥
चक्षुमान् होने पर भी अन्धे की भाँति हो,
श्रोतवान् होने पर भी बधिर की भाँति हो,

आठवाँ निपात

तेईसवाँ वर्ग

२२९ महाकच्चायन

उज्जैन के राजा चण्डप्रद्योत के राजपुरोहित। राजा ने उन्हें और सात जनों के साथ भगवान् को निमन्त्रित करने के लिए भेजा। भगवान् से उपदेश सुन कर सातों जने प्रव्रजित होकर अर्हत् पद को प्राप्त हुए। बाद में कच्चायन ने राजा का संदेश सुनाया। भगवान् ने यह कह कर कच्चायन को भेज दिया कि तुम से राजा की अभिलाषा पूरी होगी।

कच्चायन स्थविर ने उज्जैन जाकर राजा को उपदेश देकर उसे भगवान् का उपासक बनाया।

एक दिन कच्चायन ने बाहर के कामों में व्यस्त कुछ भिक्षुओं को देख कर यह उपदेश दिया :

(बाहरी) कामों में अधिक व्यस्त न रहे।
लोगों को त्याग दे और
(सांसारिक सुख के लिए) प्रयत्न न करे।
जो (सांसारिक सुख के लिए) उत्सुक है (उसमें) लिप्त है,
वह (यथार्थ) सुख देने वाले अर्थ से वंचित रहता है।४९४
कुलों में जो वन्दना और पूजा होती है
(ज्ञानियों ने) उसे पङ्क कहा है। सत्कार रूपी सूक्ष्म तीर

नीच पुरुष द्वारा मुश्किल से निकाला जा सकता है,
छोड़ा जा सकता है ॥४९६॥

कच्चायन ने एक दिन चण्डप्रद्योत को इस प्रकार उपदेश दिया

मनुष्य को न तो दूसरों से पाप कर्म कराना चाहिए
और न स्वयं ही उसका आचरण करना चाहिए,
क्योंकि मनुष्य (अपने) कर्म का उत्तराधिकारी होता है॥४९७॥
दूसरों के कहने से कोई चोर नहीं होता,
दूसरों के कहने से कोई मुनि (भी) नहीं होता।
हम स्वयं अपने को जानते हैं,
और देवता भी उसी प्रकार हमें जानते हैं ॥४९८॥
अनाड़ी लोग इसका ख्याल नहीं करते
कि हम इस संसार में नहीं रहेंगे,
जो इसका ख्याल करते हैं
उनके सारे कलह शान्त हो जाते हैं ॥४९९॥
धनहीन होने पर भी प्राज्ञ (यथार्थ में) जीता है।
धनवान् होने पर भी अज्ञानी (यथार्थ में) नहीं जीता॥५००॥

फिर एक दिन स्वप्न के विषय में पूछने पर कच्चायन ने राजा से इस प्रकार कहा

(मनुष्य) सब कुछ कान से सुनता है,
और सब कुछ आँख से देखता है।
धीर देखी हुई और सुनी हुई
सभी बातों की उपेक्षा न करे ॥५०१॥
चक्षुमान् होने पर भी अन्धे की भाँति हो,
श्रोतवान् होने पर भी बधिर की भाँति हो,

प्रज्ञावान् होने पर भी मूक की भाँति हो,
जब अर्थ की बात आती है तब उस पर मनन कर ॥५०२॥

२३० सिरिमित्र

राजगृह के धनी परिवार में उत्पन्न। प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त। एक दिन कुछ भिक्षुओं को उपदेश देते हुए सिरिमित्र स्थविर ने यह उदान गाथा।

जो क्रोध रहित है वैमनस्य रहित है
शठता रहित है और चुगली रहित है
ऐसा भिक्षु कभी परलोक में शोक नहीं करता ॥५०३॥
जो भिक्षु क्रोध रहित है वैमनस्य रहित है,
शठता रहित है चुगली रहित है
और सदा संयत इन्द्रियवाला है,
वह परलोक में शोक नहीं करता ॥५०४॥
जो भिक्षु क्रोध रहित है वैमनस्य रहित है,
शठता रहित है चुगली रहित है
और कल्याण स्वभाव का है
वह परलोक में शोक नहीं करता ॥५०५॥
जो भिक्षु क्रोध रहित है वैमनस्य रहित है
शठता रहित है, चुगली रहित है
और कल्याण मित्र है
वह परलोक में शोक नहीं करता ॥५०६॥
जो भिक्षु क्रोध रहित है वैमनस्य रहित है, शठता रहित है,
चुगली रहित है और कल्याण प्राज्ञ है,
वह परलोक में शोक नहीं करता ॥५०७॥

तथागत में जिसकी श्रद्धा अचल है, सुप्रतिष्ठित है,
जिसका शील कल्याण है, जो आर्यों को प्रिय है,
(और उनके द्वारा) प्रशंसित है ॥५०८॥
जो संघ में प्रसन्न है, जिसका दर्शन ऋजु है,
वह दरिद्र नहीं कहा जाता,
और उसका जीवन रिक्त नहीं ॥५०९॥

इसलिए बुद्ध के शासन का स्मरण करता हुआ
मेधावी, श्रद्धा, शील, प्रसन्नता और
धर्म के दर्शन में तत्पर हो जाय ॥५१०॥

२३१. महापन्थक

राजगृह के एक सेठ की लड़की को उसी के दास से उत्पन्न पुत्र। भगवान् के पास प्रव्रजित हो परमपद पाने के बाद आयुष्मान् महापन्थक ने यह उदान गाया

पहले पहल (मैंने) अकुतोभय शास्ता को देखा।
पुरुषोत्तम को देखकर
मुझे संवेग उत्पन्न हुआ ॥५११॥
कोई साष्टाङ्ग प्रणाम भी करे तो
शास्ता की ऐसी उपासना से वह
अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकता ॥५१२॥
तब मैं पुत्र और स्त्री, धन और धान्य त्यागकर,
सर और मुँह का बाल बनाकर
बेघर हो प्रव्रजित हुआ ॥५१३॥
शिक्षा और (शुद्ध) आजीविका से युक्त हो,

इन्द्रियों से संयत हो सम्बुद्ध को नमस्कार करता हुआ,
अपराजित हो, मैं विहरने लगा ॥५१४॥
तब मुझे यह संकल्प, यह अभिलाषा उत्पन्न हुई
कि तृष्णा रूपी तीर को बिना निकाले
मुहूर्त भर भी नहीं बैठूँगा ॥५१५॥
इस प्रकार विहरनेवाले मेरे दृढ़ पराक्रम को देखो।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया
और बुद्ध-शासन को पूरा किया ॥५१६॥
(मैं) पूर्व जन्म को जानता हूँ दिव्य चक्षु विशुद्ध है,
अर्हन्त हूँ, दक्षिणार्ह हूँ, पूर्ण रूप से मुक्त हूँ
और वासना रहित हूँ ॥ १७॥
तब रात्रि के अन्त होते ही और सूर्य के उगते ही,
सारी तृष्णा को पूर्ण रूप से शोषित कर
पालथी मारकर बैठ गया ॥५१८॥

आठवाँ निपात समाप्त

नवाँ निपात

चौबीसवाँ वर्ग

भूत

साकेत के एक सेठ के पुत्र। भगवान् से उपदेश सुनकर, प्रव्रजित हो अजकर्णी के तट पर ध्यान-भावना करते थे। अर्हत् पद पाने के बाद अपने बन्धुओं को उपदेश देने के लिए वे साकेत गये। वहाँ बन्धुओं ने उनसे साकेत में रहने का अनुरोध किया। तिस पर आयुष्मान् भूत ने एकान्तवास पर यह उदान गाया :

जब पण्डित जरा और मृत्यु को दुःख समझ लेता है,
जहाँ कि अज्ञ, सामान्य जन आसक्त हो जाते हैं,
और दुःख को जानकर स्मृतिमान् हो ध्यान करता है,
(तब) उससे बढ़कर परमानन्द का
अनुभव वह नहीं कर सकता ॥ ५१९ ॥
जब कि (भिक्षु) दु:ख पहुँचाने वाले विष रूपी तृष्णा का,
दु:ख देने वाले प्रपंच रूपी तृष्णा का त्याग कर,
स्मृतिमान् हो ध्यान करता है,
(तब) वह उससे बढ़कर
परमानन्दका अनुभव नहीं कर सकता ॥५२०॥
जब कि (भिक्षु) सभी वासनाओंको शुद्ध करने वाले,
शिव और उत्तम आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग को

प्रज्ञा से देखकर, स्मृतिमान् हो ध्यान करता है,
(तब) वह उससे बढ़कर परमानन्द का
अनुभव नहीं कर सकता ॥५२१॥

जब कि (भिक्षु) शोक रहित रज रहित,
असंस्कृत और सभी वासनाओं को शुद्ध करने वाले
शान्त पद का अभ्यास करता है,
और संयोजन रूपी बन्धनों का विच्छेद करता है,
(तब) वह उससे बढ़कर परमानन्द का
अनुभव नहीं कर सकता ॥५२२॥

जब कि आकाश में मेघ रूपी दुंदुभी बजती है
और पक्षियों का सारा पथ जलधाराओं से आकुल है
और भिक्षु पर्वत गुफा में ध्यान करता है
(तब) वह उससे बढ़कर आनन्द का
अनुभव नहीं कर सकता ॥५२३॥

जब कि नदी तट के वृक्ष सुन्दर वन पुष्पों से भरे रहते हैं
और (भिक्षु) उसी तट पर ही ध्यान करता है
(तब) वह उससे बढ़कर परमानन्द का
अनुभव नहीं कर सकता ॥५२४॥

जब रात में निर्जन वन में वर्षा के होते समय
और हाथियों के गर्जन करते समय
भिक्षु पर्वत गुफा में ध्यान करता है,
(तब) वह उससे बढ़कर परमानन्द का
अनुभव नहीं कर सकता ॥५२५॥

जब अपने वितर्कों को शान्त कर,
पर्वत के बीच गुफा में बैठकर

भय रहित हो, बाधा रहित हो
(भिक्षु) ध्यान करता है,
(तब) वह उससे बढ़कर परमानन्द का
अनुभव नहीं करता ॥५२६॥
जब (भिक्षु) सुखपूर्वक सब शोक का नाश कर,
शान्ति के लिए मन का कपाट खोलकर,
तृष्णारहित हो, (राग रूपी) तीर रहित हो,
सभी आस्रवों को शान्तकर ध्यान करता है,
(तब) वह उससे बढ़कर परमानन्द का
अनुभव नहीं कर सकता ॥५२७॥

नवाँ निपात समाप्त ।

वे दीप-शिखा की भाँति सुशोभित है।
भगीरथों[1] पर अनुग्रह करने का समय है ॥५२८॥
वृक्ष प्रफुल्लित है, मनोरम है
और चारों दिशाएँ सुवासित है।
(वृक्षों ने) फल की खोज में पत्तों को त्याग दिया है।
वीर ! यहाँ से प्रस्थान का यह समय है ॥५२९॥
भन्ते ! (अब) न तो अधिक शीत है
और न अधिक उष्ण है।
ऋतु सुखदायी है और लम्बी यात्रा के अनुकूल है।
पश्चिमाभिमुख हो रोहिनी को पार करते हुए (आपको)
शाक्य और कोलिय देखें ॥५३०॥
किसान आशा से खेत जोतता है और
आशा से बीज बोता है।
वणिक धन प्राप्त करने की आशा से समुद्र के पार जाते हैं।
जिस आशा को लेकर मैं हूँ
मेरी उस आशा की पूर्ति हो ॥५३१॥
(किसान) बारम्बार बीज बोते है।
देवराज बारम्बार वर्षा करता है।
किसान बारम्बार खेत को जोतते हैं।
बारम्बार राष्ट्र को धान मिलता है ॥५३२॥
याचक बारम्बार (भिक्षा के लिए) विचरते है।
दानपति बारम्बार दान देते है।
दानपति बारम्बार दान देकर
बारम्बार स्वर्गस्थान को प्राप्त होते है ॥५३३॥

---

१ शाक्यों

जिस कुल में महा प्राज्ञ का जन्म होता है,
और उस कुल को सात पुश्तों के लिए पवित्र कर देते हैं।
शाक्य ! आपको मैं देवातिदेव मानता हूँ।
आप यथार्थ मुनि के रूप में जन्मे हैं ॥५२४॥

महर्षि के पिता का नाम शुद्धोदन है।
बुद्ध की माता का नाम माया है।
जो बोधिसत्व को गर्भ में धारण कर मृत्यु के बाद
देवलोक में प्रमोद करती है ॥५२५॥

वह गौतमी यहाँ से गुजर कर
(अब) दिव्य कामों से परिपूर्ण है।
वह देवताओं की मण्डली के साथ
पाँच काम गुणों से प्रमोद करती है ॥५२६॥

असह्य को सहने वाले, अङ्गीरस
अनुपम, अचल बुद्ध का मैं पुत्र हूँ।
शाक्य ! आप मेरे पिता के पिता हैं।
आप मेरे धर्मानुकूल पितामह हैं ॥५२७॥

२१४ एकविहारिय

सम्राट् अशोक के अनुज—तिस्स। वे युवराज के पद पर थे। एक दिन मृगया के लिए वन में गये तिस्स कुमार को ध्यान मग्न महाधम्मरक्खित थेर के दर्शन हो गये। उनसे प्रसन्न हो कुमार ने प्रव्रजित होने का निश्चय कर लिया। फिर बड़ी कठिनाई के साथ अशोक की अनुमति लेकर वे प्रव्रजित हुए। एकान्तवास की अभिलाषा को प्रकट करते हुए उन्होंने यह उदान गाया।

यदि आगे या पीछे कोई न रहे और अकेला वन में रहे
तो उसे बहुत सुख प्राप्त होता है ॥५३८॥
बुद्ध द्वारा वर्णित अरण्य में अवश्य अकेला जाऊँगा।
अकेले विहरनेवाले निर्वाणरत भिक्षु को
सुख प्राप्त होता है ॥५३९॥
योगियों को प्रिय, रम्य, मस्त हाथियों से सेवित कानन में
शान्ति प्राप्ति के लिए शीघ्र ही अकेला प्रवेश करूँगा ॥५४०॥
शीत पर्वत कन्दरा में शरीर को धोकर
प्रफुल्लित शीतवन में अकेला टहलूँगा ॥५४१॥
एकाकी हो, बिना दूसरे के, रमणीय महावन में,
कृतकृत्य हो, आस्रव रहित हो मैं कब विहरूँगा ॥५४२॥
ऐसी अभिलाषा वाले मेरा उद्देश्य सफल हो,
उसे मैं ही पूरा करूँगा।
(उसमें) एक दूसरे का काम नहीं कर सकता ॥५४३॥

प्रव्रज्या के बाद अपने संकल्प को लक्ष्य कर के एकविहारिय ने यह उदान गाया

मैं इस कवच को पहन कर कानन में प्रवेश करूँगा
और आस्रवों के क्षय को प्राप्त किये बिना
वहाँ से नहीं निकलूँगा ॥५४४॥
शीत सुगन्ध वायु के चलते पर्वत पर बैठकर
मै अविद्या को विदीर्ण करूँगा ॥५४५॥
पुष्प भरे वन में और शीत गिरिव्रज गुफा में
विमुक्ति सुख से सुखी हो रमन करूँगा ॥५४६॥
अर्हत् पद पाने के बाद एकविहारिय ने यह उदान गाया
अब मैं अभिलाषा परिपूर्ण हो पूर्ण चन्द्र की भाँति हूँ।

सभी आस्रव क्षीण हैं
(अब) मेरे लिए पुनर्जन्म नहीं ॥५४७॥

२३५ महाकप्पिन

कुक्कुट नगर के राजा के पुत्र। पिता की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठ गये। वे बड़े ही विद्याव्यसनी थे। जो विद्वान् आते-जाते थे सभी से वे कुछ न कुछ सीखते थे। एक दिन श्रावस्ती से कुक्कुट नगर में पधारे कुछ व्यापारियों से भगवान् के विषय में सुन कर, राजपाट त्याग कर, भगवान् के पास जाकर प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। वे भिक्षुओं को उपदेश देने वाले भगवान् के शिष्यों में सर्व श्रेष्ठ हुए। एक दिन कुछ भिक्षुओं को उपदेश देते हुए महाकप्पिन ने यह उदान गाया।

जो पहले ही अनागत हित और अहित
इन दोनों बातों को देख लेता है,
विरोधी और हितैषी खोजने पर भी
उसका छिद्र नहीं देख सकते ॥५४८॥

जिसकी आनापानस्मृति परिपूर्ण है
अच्छी तरह अभ्यस्त है
बुद्ध के उपदेश के अनुसार क्रमशः सेवित है
वह इस संसार को वैसे ही प्रकाशमान् करता है,
जैसे कि बादलों से मुक्त चन्द्रमा ॥५४९॥

मेरा चित्त परिशुद्ध है, अमित है
अच्छी तरह अभ्यस्त है सुविदित है दृढ़ है
और सभी दिशाओं को प्रकाशमान करता है ॥५५०॥

निर्धन होने पर भी प्राज्ञ जीवित रहता है।
प्रज्ञाहीन धनवान् (मानो)
जीवित नहीं रहता ॥५५१॥

प्रज्ञा ज्ञान का निर्णायक है,
प्रज्ञा कीर्ति और प्रशंसा वर्धक है।
जो मनुष्य प्रज्ञा सहित है वह
दुःख में भी सुख का अनुभव करता है ॥५५२॥

यह कोई आज की बात नहीं है।
इसमें आश्चर्यजनक या अद्भुत बात नहीं है।
जहाँ (लोग) जन्मते हैं वहाँ मरते भी हैं,
इसमें आश्चर्य की बात कौन सी है ? ॥५५३॥

प्राणि के जन्म के बाद मृत्यु ध्रुव है।
यहाँ जो जो जन्मते हैं वे मरते भी हैं,
यह प्राणियों का स्वभाव है ॥५५४॥

(वह) मृत प्राणी को लाभदायक नहीं है,
जो कि जीवित लोगों को लाभदायक है।
मृत्यु पर रोने से न तो यश बढ़ता है और न
शुद्धि ही होती है।
यह श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा प्रशंसित भी नहीं ॥५५५॥

रोने से चक्षु और शरीर पीड़ित होते हैं,
वर्ण, बल और बुद्धि हीन हो जाती है।
उसके शत्रु आनन्दित होते है
और उसके हितैषी सुखी नहीं होते ॥५५६॥

इसलिए घर में रहने वाले लोग
मेधावियों और बहुश्रुतों की इच्छा करें,

जिनके प्रज्ञा-बल से वे कार्य को वैसा ही पूरा कर सकते हैं,
जैसा कि (लोग) नाव से पूर्ण नदी को पार करते हैं ॥५१७॥

२३६ चूलपन्थक

महापन्थक के अनुज। वे भी बड़े भाई का अनुसरण कर प्रव्रजित हुए थे। लेकिन प्रतिभाहीन थे। इसलिए साधना में उन्नति नहीं कर पाते थे। एक दिन महापन्थक ने उन्हें संघ से निकल जाने को कहा। इससे निराश हो वे एक कोने में पड़े थे। भगवान् की कृपादृष्टि उन पर पड़ी। भगवान् ने उन्हें कर्मस्थान (= ध्यान का विषय) दिया। उसके अनुसार अभ्यास शीघ्र ही अर्हत् पद को प्राप्त हो चूलपन्थक स्थविर ने यह उदान गाया।

पहले मेरी गति मन्द थी
और मैं अपमानित रहता था।
भाई ने भी (यह कह कर) मुझे निकाल दिया कि
अब तुम घर जाओ ॥५१८॥
सो मैं निकाले जाने पर संघाराम के द्वार पर,
शासन की अपेक्षा से दुःखित हो खड़ा था ॥५१९॥
वहाँ आकर भगवान् ने मेरे सिर पर हाथ रखा
और मुझे हाथ से पकड़ कर संघाराममें प्रवेश किया॥५२०॥
अनुकम्पापूर्वक शास्ता ने मुझे पाद-पोंछनी दे दी
(और कहा कि) एक तरफ बैठकर
इस शुद्ध (वस्त्र) पर मनन करो ॥५२१॥
उनके वचन सुनकर मैं शासन में रत रहा
और उत्तम अर्थ[1] की प्राप्ति के लिए
समाधि का प्रतिपादन किया ॥५२२॥

---

१ निर्वाण।

(अब मैं) पूर्व जन्म को जानता हूँ,
दिव्य चक्षु विशुद्ध है।
(मैंने) तीन विद्याओं को प्राप्त किया है
और बुद्ध शासन को पूरा किया है ॥५६३॥

पन्थक सहस्र बार अपना (आत्मभाव) निर्माण कर
तब तक आम्रवन में बैठा रहा
जबतक समय की सूचना नहीं मिली ॥५६४॥

तब शास्ता ने समय सूचित करने के लिए
मेरे पास एक दूत भेजा।
समय की सूचना मिलने पर
मैं आकाश से पहुँच गया ॥५६५॥

शास्ता के पादों की वन्दना कर
मैं एक ओर बैठ गया।
बैठे हुए मुझे देखकर
शास्ता ने मुझे स्वीकार किया ॥५६६॥

(भगवान्) सारे संसार के पूज्य हैं,
और आहुतियों को ग्रहण करनेवाले हैं।
(वे) मनुष्यों का पुण्यक्षेत्र है और उन्होंने
(मेरी वन्दना रूपी) दक्षिणा को ग्रहण किया है ॥५६७॥

२३७ कप्प

मगध के एक सामंत के पुत्र। पिता की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठे और बहुत विलासी बन गये। एक दिन भगवान् ने उन्हें शरीर की गन्दगी पर उपदेश दिया। संवेग पाकर प्रव्रजित हो वे अर्हत् पद को

मास हुए। तब कण्ह स्थविर ने भगवान् के उक्त उपदेश को ही उदान के रूप में गाया :

यह शरीर अनेक मलों से परिपूर्ण है,
बड़े गूथ-कूप में उत्पन्न है
सड़े पानी का गड्ढा जैसा है,
बड़ा फोड़ा है, बड़ी चोट है ॥५६८॥

(यह शरीर) पीव और मूत्र से भरा है
गन्दगी का गूथ कूप है।
बहते हुए इस शरीर से
सदा गन्दगी निकलती है ॥५६९॥

(यह) गन्दा शरीर साठ कण्डरों से जुड़ा है
मांस रूपी लेप से लेपित है
चर्म रूपी कञ्चुक पहना है
और निरर्थक है ॥५७०॥

(यह) हड्डी के ढाँचे से घटित है
नस रूपी सूत्रों से बँधा है।
अनेक (भावों) के मिलन से यह चालू रहता है ॥५७१॥

(यह) मृत्यु की ओर, मृत्युराज के पास
नित्य गतिशील है।
मनुष्य इसे यहीं छोड़कर जहाँ चाह वहाँ
जा सकता है ॥५७२॥

शरीर अविद्या से आवृत है
चार ग्रन्थियों से ग्रथित है।
शरीर प्रवाह में डूबा हुआ है
और अनुशय रूपी जाल में फँसा है ॥५७३॥

(यह) पाँच नीवरणों के वश में है, वितर्क से भरा है,
तृष्णा-मूल से अनुगत है और
मोह रूपी आवरण से आच्छादित है ॥५७४॥

इस प्रकार यह शरीर कर्म-यन्त्र से चालू रहता है।
सम्पत्ति का अन्त (भी) विपित्ती में होता है;
(इसलिए) यह अनेक परिस्थितियों में पड़ता है ॥५७५॥

जो अन्धे और मूर्ख सामान्य जन
इस शरीर को अपनाते हैं,
वे घोर संसार की वृद्धि करते हैं
और पुनर्जन्मको प्राप्त होते हैं ॥५७६॥

जो इस शरीर को वैसा ही छोड़ता है
जैसा कि गूथ लिप्त सर्प को,
वह भव के मूल का वमन कर[1]
आस्रव रहित हो परिनिर्वाण को प्राप्त होता है ॥५७७॥

२३८. उपसेन

सारिपुत्र के अनुज। बड़े भाई का अनुसरण कर वे भी प्रव्रजित हुए और अर्हत् पद को प्राप्त हो जनप्रिय भिक्षुओं मे सर्वश्रेष्ठ हुए। एक दिन कुछ सब्रह्मचारियों को उपदेश देते हुए आयुष्मान् उपसेन ने यह उदान गाया

ध्यान-मग्न होने के लिए भिक्षु विविक्त, कम आवाजवाले,
जंगली जानवरोंसे सेवित निवासस्थानका सेवन करे ॥५७८॥

---

१ बाहर कर।

(कुशल का) आचरण करना, (अकुशल से) निवृत्त होना,
प्रसन्न चित्त का होना और समाधि में तत्पर रहना—
यह श्रमण के अनुरूप है ॥५९२॥
जो दूर और एकान्त अरण्य निवासस्थान हैं,
मुनिको उनका सेवन करना चाहिए—
यह श्रमण के अनुरूप है ॥५९३॥
शील का पालन करना सत्य बहुश्रुत होना
यथारूप धर्मों पर मनन करना
और सत्यों का बोध करना—
यह श्रमण के अनुरूप है ॥५९४॥
अनित्य का अनात्म संज्ञा का, अशुभ संज्ञा का
और संसार में अनासक्ति का अभ्यास करना—
यह श्रमण के अनुरूप है ॥५९५॥
(सात) बोध्यांगों का, (चार) ऋद्धिपादों का,
(पाँच) इन्द्रियों का (पाँच) बलों का और
आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करना—
यह श्रमण के अनुरूप है ॥५९६॥
मुनि तृष्णा को त्याग दे समूल आस्रवों को विदीर्ण करे
और पूर्ण रूप से मुक्त हो विहार करे—
यह श्रमण के अनुरूप है ॥५९७॥

दसवाँ निपात समाप्त ।

ग्यारहवाँ निपात

छब्बीसवाँ वर्ग

२४० संकिच्च

राजगृह के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त। संकिच्च की सेवा करने वाले उपासक ने उनसे गाँव के निटक रहने का अनुरोध करते हुए इस प्रकार कहा.

तात! क्या उज्जुहान पक्षी की तरह
वन में रहने से तुम्हें भी कोई अर्थ है?
क्या तुम्हें झंझावात प्रिय है?
योगियों को एकान्त न चाहिए? ॥५९८॥

तब वनवास का गुण गाते हुए संकिच्च ने इस प्रकार कहा

जब वर्षा ऋतु में झंझावात
मेघों को उड़ा ले जाता है,
तब मेरे मन में निष्कामता से युक्त
विचार उठते हैं ॥५९९॥
अण्डे से उत्पन्न और श्मशान में
घर बना कर रहने वाले कौवे ने
मुझ में शरीर सम्बन्धी
वैराग्य युक्त स्मृति उत्पन्न कर दी ॥६००॥
जिसकी रक्षा दूसरे लोग नहीं करते
और जो दूसरे लोगों की रक्षा नहीं करता,
कामवासना की अपेक्षा न कर
वह भिक्षु सुख पूर्वक सोता है ॥६०१॥

कूड़े के ढेर से, श्मशान से और गलियों से चिथड़े लाकर
उनसे संघाटि¹ बनाकर रूक्ष चीवर धारण करे ॥५७९॥
भिक्षु नम्र-आचार² हो, सुसंयत हो,
नम्र भाव से एक सिर से छेकर
घर घर भिक्षा के लिए विचरण करे ॥५८०॥
रूक्ष भोजन से सन्तोष कर ले
और बहुत रस की इच्छा न करे।
जो रस के फेर में पड़ता है
उसका मन ध्यान में नहीं रमता ॥५८१॥
मुनि अल्पेच्छुक हो, सन्तुष्ट हो, एकान्तवासी हो,
गृहस्थ और प्रव्रजित दोनों से अलग हो विहरे ॥५८२॥
जड़ और मूक जैसा है अपने को वैसा दिखावे।
पण्डित संघ के बीच अधिक समय तक भाषण न करे ॥५८३॥
वह किसी को दोष न दे और हिंसा को त्याग दे।
प्रातिमोक्ष³ के नियमों से संयत होवे
और भोजन में उचित मात्रा को जाने ॥५८४॥
समाधि-निमित्त को अच्छी तरह ग्रहण कर,
चित्तोत्पाद में कुशल हो शमथ भावनाओं में तत्पर होवे
और उचित समय पर विदर्शना⁴ में भी ॥५८५॥
वीर्य और तत्परता से युक्त हो
सदा योगाभ्यास में लगा रहे।
पण्डित दुःख के अन्त को प्राप्त किये बिना
(अपनी प्राप्ति पर) विश्वास न करे ॥५८६॥

---

१ ऊपर का चीवर चौकर।

२ इन्द्रिय।

इस प्रकार विहरनेवाले, शुद्धि की कामना करनेवाले
भिक्षु के सभी आस्रव क्षीण हो जाते हैं
और वह शान्ति को प्राप्त होता है ॥५८७॥

२३९. गोतम

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। त्रिवेद पारंगत हो महावादी बने। बाद में भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। एक दिन श्रमण जीवन को लक्ष्य करके गोतम स्थविर ने यह उदान गाया

अपने अर्थ की बात को जाने
और प्रवचन का अवलोकन करे।
जो श्रमणभाव को प्राप्त है,
उसके अनुरूप शिक्षा ले ॥५८८॥
यहाँ कल्याण मित्र का होना,
शिक्षा को अच्छी तरह ग्रहण करना
और गुरुजनों को सुनना—
यह श्रमण के अनुरूप है ॥५८९॥
बुद्धों का गौरव करना,
धर्म का सम्मान करना
और संघ का आदर करना-
यह श्रमण के अनुरूप है ॥५९०॥
आचारवान् होना, उपयुक्त स्थान में भिक्षा करना
आजीविका शुद्ध होना, अपमानित न होना
और चित्त को स्थिर बनाना—
यह श्रमण के अनुरूप है ॥५९१॥

(कुशल का) आचरण करना (अकुशल से) निवृत्त होना,
प्रसन्न चाल का होना और समाधि में तत्पर रहना—
यह श्रमण के अनुरूप है ॥५९२॥
जो दूर और एकान्त अरण्य निवासस्थान हैं,
मुनिको उनका सेवन करना चाहिए—
यह श्रमण के अनुरूप है ॥५९३॥
शील का पालन करना बहुश्रुत होना
यथारूप धर्मों पर मनन करना
और सत्यों का बोध करना—
यह श्रमण के अनुरूप है ॥५९४॥
अनित्य का अनात्म संज्ञा का, अशुभ संज्ञा का
और संसार में अनासक्ति का अभ्यास करना—
यह श्रमण के अनुरूप है ॥५९५॥
(सात) बोध्यांगों का (चार) ऋद्धिपादों+ का,
(पाँच) इन्द्रियों का (पाँच) बलों का और
आर्य अष्टांगिक मार्गका अभ्यास करना—
यह श्रमण के अनुरूप है ॥५९६॥
मुनि तृष्णा को त्याग दे, समूल आस्रवों को विदीर्ण करे
और पूर्ण रूप से मुक्त हो विहार करे—
यह श्रमण के अनुरूप है ॥५९७॥

दसवाँ निपात समाप्त।

———

ग्यारहवाँ निपात

छब्बीसवाँ वर्ग

२४० संकिच्च

राजगृह के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त। संकिच्च की सेवा करने वाले उपासक ने उनसे गाँव के निटक रहने का अनुरोध करते हुए इस प्रकार कहा

तात ! क्या उज्जुहान पक्षी की तरह
वन में रहने से तुम्हें भी कोई अर्थ है ?
क्या तुम्हें झंझावात प्रिय है ?
योगियों को एकान्त न चाहिए ? ॥५९८॥

तब वनवास का गुण गाते हुए सकिच्च ने इस प्रकार कहा

जब वर्षा ऋतु में झंझावात
मेघों को उड़ा ले जाता है,
तब मेरे मन में निष्कामता से युक्त
विचार उठते हैं ॥५९९॥

अण्डे से उत्पन्न और श्मशान में
घर बना कर रहने वाले कौवे ने
मुझ में शरीर सम्बन्धी
वैराग्य युक्त स्मृति उत्पन्न कर दी ॥६००॥

जिसकी रक्षा दूसरे लोग नहीं करते
और जो दूसरे लोगों की रक्षा नहीं करता,
कामवासना की अपेक्षा न कर
वह भिक्षु सुख पूर्वक सोता है ॥६०१॥

जहाँ स्वच्छ जल है, बड़े शिलापट्ट हैं, लंगूर और मृग हैं,
और जहाँ शैवाल से आच्छादित जलाशय हैं
ऐसे पर्वत मुझे प्रिय हैं ॥१०२॥
अरण्यों में कन्दराओं में गुफाओं में
और जंगली जानवरों से सेवित निवासस्थानों में
मैंने वास किया ॥१०३॥
इन प्राणियों का हनन हो
वध हो या वे दुःख को प्राप्त हों,
ऐसा अनार्य और दोषयुक्त विचार मुझे नहीं हुआ ॥१०४॥
मैंने शास्ता की सेवा की
और बुद्ध शासन को पूरा किया।
भारी बोझ को उतार दिया और
भव नेत्र (तृष्णा) को नाश किया ॥१०५॥
जिस अर्थ के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ
मैंने उस अर्थ को सभी बन्धनों के क्षय को प्राप्त किया॥१०६॥
मैं न तो मृत्यु का अभिनन्दन करता हूँ
और न जीवन का ही अभिनन्दन करता हूँ।
मुक्त भृत्य की तरह मैं
अपने समय की प्रतीक्षा करता हूँ ॥१०७॥
मैं न तो मृत्यु का अभिनन्दन करता हूँ
और न जीवन का ही अभिनन्दन करता हूँ।
ज्ञानपूर्वक स्मृतिमान् हो मैं
अपने समय की प्रतीक्षा करता हूँ ॥१०८॥

ग्यारहवाँ निपात समाप्त

बारहवाँ निपात

सत्ताईसवाँ वर्ग

२४१. सीलव

बिम्बिसार राजा के एक पुत्र और अजातशत्रु के अनुज। अजातशत्रु ने उनकी हत्या करने का प्रयत्न किया। लेकिन भगवान् की महाकरुणा के कारण वह वैसा न कर सका। वे भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पदको प्राप्त हुए। एक दिन कुछ लोगों को उपदेश देते हुए आयुष्मान शीलव ने इस प्रकार शील का गुण गाया

इस संसार में अच्छी तरह
शील की शिक्षा ही ग्रहण करनी चाहिए।
सेवित शील सभी सम्पत्ति दे देता है ॥६०९॥

मेधावी तीन प्रकार के सुखों की कामना करता हुआ
शील की रक्षा करे : प्रशंसा, धन लाभ और
इस जीवन के बाद स्वर्ग में आनन्द ॥६१०॥

शीलवान् संयम से बहुतसे मित्रों को प्राप्त करता है।
दुश्शील पापी आचरण के कारण मित्रों से
वंचित होता है ॥६११॥

दुश्शील मनुष्य निन्दा और अकीर्ति पाता है।
शीलवान् सदा यश, कीर्ति और प्रशंसा पाता है ॥६१२॥

शील कल्याण गुणों की आदि है, प्रतिष्ठा है, माता है
और सभी धर्मों का प्रमुख है।
इसलिए शील को विशुद्ध करे ॥६१३॥

शील सीमा है, रक्षा है, चित्त को प्रसन्न करने वाला है
और सभी बुद्धों का तीर्थ है।
इसलिए शील को विशुद्ध करे ॥६१४॥

शील अनुपम बल है, शील उत्तम शस्त्र है,
शील श्रेष्ठ आभरण है और
शील अद्भुत कवच है ॥६१५॥

शील मजबूत पुल है
शील अनुत्तर गन्ध है
शील श्रेष्ठ विलेपन है
जो कि चारों दिशाओं में फैलता है ॥६१६॥

शील अग्र शंबल है,
शील उत्तम पाथेय है
और शील श्रेष्ठ यान है
जिससे दिशाओं में जा सकते हैं ॥६१७॥

शीलों में असमाहित मूर्ख यहाँ निन्दा पाता है
इसके बाद नरक में दुःखित होता है।
(इस प्रकार) वह सर्वत्र दुःखित होता है ॥६१८॥

शीलों में सुसमाहित धीर यहीं कीर्ति पाता है,
इसके बाद स्वर्ग में सुखी होता है।
इस प्रकार वह सर्वत्र सुखी है ॥६१९॥

यहाँ शील ही श्रेष्ठ है, प्रज्ञा उत्तम है।
मनुष्यों और देवताओं में
शील और प्रज्ञा से ही
विजय होती है ॥६२०॥

२४२. सुनीत

राजगृह के भंगी कुल में उत्पन्न। वे भंगी का काम कर अपनी जीविका चलाते थे। एक दिन भगवान् भिक्षु मण्डली के साथ भिक्षा के लिए राजगृह में गये। उस समय सुनीत सड़क साफ़ कर रहे थे। भगवान् को देख कर झाड़ू छोड़, अञ्जलिबद्ध हो वे एक ओर खड़े हो गये। पूर्व सञ्चित उनके पुण्य को देख कर भगवान् ने उन्हें उपदेश दिया। सुनीत प्रसन्न हो भगवान् के पास प्रव्रजित हुए और एक अरण्य में ध्यान-भावना करने लगे। शीघ्र ही वे अर्हत् पद को प्राप्त हुए। एक दिन कुछ भिक्षुओं को अपना पूर्व परिचय देते हुए आयुष्मान् सुनीत ने यह उदान गाया

मैं दरिद्र, भोजन हीन, नीच कुल में पैदा हुआ।
मेरा कर्म हीन था, मैं पुष्प फेंकने वाला हुआ।
मैं मनुष्यों द्वारा घृणित हुआ ॥६२१॥

अपमानित हुआ और तिरस्कृत हुआ।
नम्र मन से मैंने बहुत से लोगों की वन्दना की ॥६२२॥

तब मैंने भिक्षु मण्डली के साथ सम्बुद्ध को, महावीर को
मागधों के उत्तम नगर में प्रवेश करते देखा ॥६२३॥

झौवे को छोड़ वन्दना के लिए मैं (उनके पास) पहुँचा।
पुरुषोत्तम मेरे ऊपर ही अनुकम्पा करके खड़े हो गये ॥६२४॥

तब शास्ता के पादों की वन्दना कर
मैं एक ओर खड़ा हो गया।
सभी प्राणियों में श्रेष्ठ (बुद्ध) से
मैंने प्रव्रज्या के लिए याचना की ॥६२५॥

तब सर्वलोकानुकम्पक कारुणिक शास्ता ने
मुझे कहा कि भिक्षु आओ और यही
मेरी उपसम्पदा हुई ॥१२६॥
मैंने अपेक्षा तन्द्रा रहित हो अरण्य में रहकर,
जैसा कि जिन ने मुझे उपदेश दिया वैसा ही
शास्ता का वचन पूरा किया ॥१२७॥
रात्रि के प्रथम याम में
पूर्व जन्म का स्मरण किया।
रात्रि के मध्यम याम में
दिव्य चक्षु विशुद्ध हुआ ॥१२८॥
रात्रि के अन्तिम याम में
(अविद्या रूपी) अन्धकार राशि को विदीर्ण किया।
तब रात्रि के समाप्त होते ही और सूर्य के उगते ही
इन्द्र और ब्रह्मा ने आकर अञ्जलिबद्ध हो
(इस प्रकार) मेरी वन्दना की—
श्रेष्ठ पुरुष ! तुम्हें नमस्कार है !
उत्तम पुरुष ! तुम्हें नमस्कार है ! ॥१२९-१३०॥
तुम्हारे आस्रव क्षीण हैं श्रेष्ठ ! तुम दक्षिणार्ह हो।
तब शास्ता ने देवमण्डली से घिरे हुए मुझे देखकर,
जरा हँसकर इस प्रकार कहा। ॥१३१॥
तप ब्रह्मचर्य संयम और दम
इससे ब्राह्मण होता है।
यही उत्तम ब्राह्मण है ॥१३२॥

बारहवाँ निपात समाप्त

तेरहवाँ निपात

अट्ठाईसवाँ वर्ग

२४३. सोण

चम्पा के सेठ के पुत्र। वे बड़े सुख-विलास में पले थे। एक दिन वे बिम्बिसार राजा से मिलने राजगृह गये। वहाँ पर भगवान् से उपदेश सुनकर प्रव्रजित हुए और शीतवन में ध्यान-भावना करने लगे। टहलते-टहलते उनके पैरों में छाले पड़ गये। लेकिन सत्य का आभास मात्र भी नहीं मिला। वे निराश हो भिक्षु जीवन छोड़कर घर लौटने को सोच रहे थे। उनकी मनोवृत्ति को देखकर भगवान् ने वीणा की उपमा देकर उन्हें मध्यम मार्ग का उपदेश दिया। भगवान् की शिक्षा के अनुसार योगाभ्यास कर सोण शीघ्र ही अर्हत् पद को प्राप्त हुए। उसके बाद आयुष्मान् सोण ने यह उदान गाया

जो मैं (पहले) अङ्ग देश का उत्कृष्ट नागरिक
और राजा का सरदार था,
सो मैं आज धर्म में उत्कृष्ठ हूँ ;
सोण दुःख से परे हो गया है ॥६३३॥
पाँच (बन्धनों) का छेदन कर दे,
पाँच (बन्धनों) का त्याग कर दे और
पाँच (इन्द्रियों) का आगे अभ्यास करे।
जो भिक्षु पाँच आसक्तियों के परे हो गया है,
वह प्रवाह-उत्तीर्ण कहलाता है ॥६३४॥

अभिमानी प्रमत्त और बाहरी आशाएँ रखने वाले
भिक्षु के शील समाधि और प्रज्ञा
पूर्णता को प्राप्त नहीं होतीं ॥६३५॥
जो कृत्य को छोड़ता है और अकृत्य को करता है,
अभिमानी और प्रमत्त उनके आस्रव बढ़ते हैं ॥६३६॥
जो कायगतास्मृति में सतत उद्योगी रहते हैं,
जो अकृत्य का सेवन नहीं करते और
कृत्य में तत्पर रहते हैं
स्मृतिमान् और ज्ञानपूर्वक रहने वाले
उनके आस्रव अस्त को प्राप्त होते हैं ॥ ६३७॥
(बुद्ध के) बताये ऋजु मार्ग पर चले और लौटे नहीं,
अपने को समझाते हुए निर्वाण को प्राप्त करे ॥६३८॥
संसार में अनुत्तर चक्षुमान् शास्ता ने
अत्यधिक उद्योग करनेवाले मुझे
वीणा की उपमा देकर धर्म का उपदेश किया ॥६३९॥
उनका वचन सुनकर मैं शासन में रत रहा ।
उत्तमार्थ[1] की प्राप्ति के लिए मैंने समाधि का
प्रतिपादन किया ॥६४० ॥
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया
और बुद्ध-शासन को पूरा किया।
मैं निष्कामता में और चित्त की शान्ति में रत रहा ॥६४१॥
जो मैत्री में और उपादान के क्षय में रत है
जो तृष्णा के क्षय में और
चित्त के मोह को दूर करने में रत है

---

१ निर्वाण

आयतनों* की उत्पत्ति को देखकर
उसका चित्त सम्यक् रूप से मुक्त हो जाता है ॥६४२॥
सम्यक् रूप से मुक्त, शान्त-चित्त भिक्षु को
कर्म संचय करना नहीं है,
उसे कुछ करना शेष नहीं रहता ॥६४३॥
जिस प्रकार ठोस पहाड़ हवा से नहीं डिगता,
उसी प्रकार सभी रूप, शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श
और इष्ट तथा अनिष्ट धर्म
स्थिर (अर्हन्त) को डिगा नहीं सकते।
(उनका) चित्त संस्कार रहित हो स्थिर हो गया है।
वह विनाश को देखता है ॥६४४-५॥

तेरहवाँ निपात समाप्त

चौदहवाँ निपात

उनतीसवाँ वर्ग

२४४ रेवत

सारिपुत्र के अनुज जिनकी कथा प्रथम निपात में आती है। रेवत श्रावस्ती के पास एक वन में ध्यानमग्न बैठे थे। कुछ सिपाही चोरों के पीछे पड़े थे। चोर वन में प्रवेश कर भिक्षु के पास सामान छोड़कर भाग गये। भिक्षु को चोर समझ कर सिपाही उन्हें राजा के पास ले गये। राजा ने बात को समझ कर भिक्षु को छोड़ दिया। उसी अवसर पर रेवत स्थविर ने यह उदान गाया :

जब से मैं घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ
(तब से) अनार्य दोषयुक्त विचार हुआ हो—
ऐसा मैं नहीं जानता ॥६४५॥
इन प्राणियों का हनन हो, वध हो और
ये दुःख को प्राप्त हों
ऐसा विचार इस दीर्घ काल में हुआ हो—
ऐसा मैं नहीं जानता ॥६४७॥
अपरिमित और अच्छी तरह
अभ्यस्त मैत्री को मैं जानता हूँ।
बुद्ध के उपदेश के अनुसार क्रमशः मैंने
(उसका) अभ्यास किया है ॥६४८॥

मैं सबका मित्र हूँ, सबका सखा हूँ
और सभी प्राणियों का अनुकम्पक हूँ।
वैमनस्य रहित हो मैं सदा
मैत्री चित्त का अभ्यास करता हूँ ॥६४९॥
राग से विचलित न हो और द्वेष से कुपित न हो
मैं चित्त को प्रमुदित करता हूँ।
नीच पुरुषों द्वारा असेवित ब्रह्मविहार का
अभ्यास करता हूँ ॥६५०॥
सम्यक् सम्बुद्ध का श्रावक अवितर्क को प्राप्त हो
आर्य मौनभाव से युक्त हो जाता है ॥६५१॥
जिस प्रकार शैल पर्वत अचल और सुप्रतिष्ठित है,
उसी प्रकार जिस भिक्षु का मोह क्षय है,
वह पर्वत की तरह
विचलित नहीं होता ॥६५२॥
आसक्ति रहित, नित्य पवित्रता की
खोज में रहने वाले पुरुष को
बाल का सिरा जितना पाप भी
बादल की तरह प्रतीत होता है ॥६५३॥
जैसे सीमान्त का नगर भीतर-बाहर
खूब रक्षित रहता है,
उसी प्रकार अपने को सुरक्षित रखे,
अपने अवसर को खो न दे ॥६५४॥
मैं न तो मृत्यु का अभिनन्दन करता हूँ
और न जीवन का ही अभिनन्दन करता हूँ।
मुक्त भृत्य की तरह अपने
समय की प्रतीक्षा करता हूँ ॥६५५॥

मैं न तो मृत्यु का अभिनन्दन करता हूँ
और न जीवन का ही अभिनन्दन करता हूँ।
ज्ञान पूर्वक और स्मृतिमान् हो
अपने समय की प्रतीक्षा करता हूँ ॥१५६॥

मैंने शास्ता की सेवा की है
और बुद्ध-शासन को पूरा किया है।
(मैंने) भारी बोझ को उतार दिया है
और भव नेत्र (तृष्णा) का नाश किया है ॥१५७॥

जिस अर्थ के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ
मैंने उस अर्थ को सभी बन्धनों के क्षय को प्राप्त किया॥१५८॥

अप्रमाद के साथ (लक्ष्य का) सम्पादन करो
—यही मेरा अनुशासन है।
अब मैं परिनिर्वाण को प्राप्त हूँगा।
मैं सभी वासनाओं से मुक्त हूँ ॥१५९॥

२४५ गोदत्त

श्रावस्ती के एक सेठ के पुत्र। प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त।
एक दिन कुछ भिक्षुओं को उपदेश देते हुए गोदत्त ने यह उदान गाया :

जिस प्रकार उत्तम जाति का बैल गाड़ी में जोते जाने पर,
अधिक भार से पीड़ित होने पर भी
जूए को छोड़कर नहीं भागता ॥१६०॥
इसी प्रकार, समुद्र के पानी की भाँति जिनकी प्रज्ञा पूर्ण है,
वे दूसरे प्राणियों की अपेक्षा नहीं करते
यह आर्य धर्म की रीति है ॥१६१॥

जो काल (चक्र) में आकर
भव के वश में हो जाते हैं,
वे मनुष्य दुःख को प्राप्त होते हैं,
वे मनुष्य यहाँ शोक करते हैं ॥६६२॥
जो सुख पाकर प्रमुदित होते हैं
और दुःख पाकर उदास होते हैं,
सत्य को न देखने वाले मूर्ख
दोनों से पीड़ित रहते हैं ॥६६३॥
जो तृष्णा के परे हो
सुख और दुःख के बीच (उपेक्षा) में रहते हैं,
वे इन्द्रखील की तरह स्थित हैं,
और वे प्रमुदित या उदास नहीं होते ॥६६४॥
लाभ-अलाभ अयश-कीर्ति,
निन्दा-प्रशंसा, दुःख-सुख
सर्वत्र, वे वैसा ही नित्य नहीं होते
जैसा कि जलबिन्दु कमल में।
धीर सर्वत्र सुखी हैं,
सर्वत्र अपराजित हैं ॥६६५-६६॥
धर्म से जो अलाभ होता है
और अधर्म से जो लाभ होता है,
इनमें अधार्मिक लाभ की अपेक्षा
धार्मिक अलाभ ही श्रेष्ठ है ॥६६७॥
अल्प बुद्धियों का जो यश है
और विज्ञों का जो अयश है,
इनमें अल्प-बुद्धियों के यश की अपेक्षा
विज्ञों का अयश ही श्रेष्ठ है ॥६६८॥

मूर्खों की जो प्रशंसा है
और विज्ञों की जो निन्दा है,
इन में मूर्खों की प्रशंसा की अपेक्षा
विज्ञों की निन्दा ही श्रेष्ठ है ॥१६९॥
जो विषय-वासना से उत्पन्न सुख है
और जो निष्कामता से उत्पन्न दुःख है
इन में विषय-वासना से उत्पन्न सुख की अपेक्षा
निष्कामता से उत्पन्न दुःख ही श्रेष्ठ है ॥१७०॥
अधर्म से जो जीना है
और धर्म से जो मरना है
इनमें अधर्म से जीने की अपेक्षा
धर्म से मरना ही श्रेष्ठ है ॥१७१॥
जिनके काम और क्रोध नष्ट हैं,
और सांसारिक विषयों में जिनका चित्त शान्त है
वे संसार में अनासक्त हो विचरण करते हैं
और उनके लिए कोई प्रिय या अप्रिय नहीं ॥१७२॥
वे (सात) बोध्यांगों का (पाँच) इन्द्रियों का
और (पाँच) बलों का अभ्यास कर
परम शान्ति को प्राप्त हो आस्रव रहित हो
परिनिर्वाण को प्राप्त करते हैं ॥१७३॥

चौदहवाँ निपात समाप्त

पन्द्रहवाँ निपात

तीसवाँ वर्ग

२४६. अञ्ञाकोण्डञ्ञ

कपिलवस्तु के पास दोनवस्तु के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। वे त्रिवेद और अन्य ब्राह्मण-शास्त्रों में पारंगत थे। सिद्धार्थ कुमार के जीवन के विषय में भविष्यवाणी करनेवाले आठ ब्राह्मणों में सबसे छोटे। गृह त्यागकर और चार साथियों के साथ उरुवेला में रहते थे। जब सिद्धार्थ गौतम वहाँ तपस्या करते थे तो ये पाँच साथी उनकी सेवा करते थे। जब गौतम निरर्थक तपस्या को छोड़कर मध्यम मार्ग पर चलने लगे तो वे पाँचों जने उन्हें छोड़कर ऋषिपतन (=सारनाथ) में जाकर रहने लगे। भगवान् बुद्ध के प्रथम उपदेश को सुननेवाले पचवर्गीय भिक्षु ये पाँच जने ही थे। पाँच भिक्षुओं में अञ्ञाकोण्डञ्ञ को ही सर्व प्रथम सत्य का बोध हुआ था। अञ्ञाकोण्डञ्ञ भगवान् के शिष्यों मे सब से ज्येष्ठ थे।

एक दिन शक्र ने कोण्डञ्ञ स्थविर का उपदेश सुनकर इस प्रकार अपनी प्रसन्नता प्रकट की :

रस पूर्ण धर्म को सुनकर मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ।
वैराग्य पूर्ण धर्म का उपदेश दिया गया है
जो कि पूर्ण रूप से आसक्ति रहित है ॥ ६७४॥

एक अवसर पर कामासक्त कुछ लोगों को कोण्डञ्ञ ने यह उपदेश दिया :

संसार में इस पृथ्वी मण्डल पर
अनेक चित्र उपस्थित हैं।
ये मानो मनमोहक राग युक्त
विचार का मंथन करते हैं ।।६७५।।
जिस प्रकार वायु से उठी धूल
मेघ से शान्त हो जाती है
उसी प्रकार प्रज्ञा से देखने पर
मन के विकार शान्त हो जाते हैं ।।६७६।।
'सभी संस्कार अनित्य हैं'
ऐसा जब प्रज्ञा से देखता है,
तब सभी दुःखों से निर्वेद को प्राप्त होता है,
यही विशुद्धि का मार्ग है ।।६७७।।
'सभी संस्कार दुःख हैं'
ऐसा जब प्रज्ञा से देखता है
तब सभी दुःखों से निर्वेद को प्राप्त होता है,
यही विशुद्धि का मार्ग है ।।६७८।।
'सभी धर्म[1] अनात्म हैं
ऐसा जब प्रज्ञा से देखता है,
तब सभी दुःखों से निर्वेद को प्राप्त होता है
यही विशुद्धि का मार्ग है ।।६७९।।

तब अपनी ज्ञान-प्राप्ति को सूचित करते हुए कौण्डञ्ञ ने यह उदान गाया :

बुद्ध द्वारा प्रबुद्ध थेर कौण्डञ्ञ
दृढ़ संकल्प के साथ निकला था।

---

१ पञ्चस्कन्ध

उसका जन्म मृत्यु क्षीण है
और ब्रह्मचर्य परिपूर्ण है ॥६८०॥
चाहे प्रवाह हो, पाश हो,
दृढ़ कील हो या दुर्भेद्य पर्वत हो,
कील और पाश का छेदन कर,
दुर्भेद्य पर्वत का भेदन कर
ध्यानी (कोण्डञ्ञ) उत्तीर्ण हुआ है,
पार पहुँच गया है,
वह मार के बन्धन से मुक्त है ॥६८१॥
एक पथभ्रष्ट भिक्षु को कोण्डञ्ञ ने यह उपदेश दिया .
विक्षिप्त और अस्थिर भिक्षु पापी मित्रों की
संगति में आकर (संसार रूपी) महाप्रवाह में
डूब कर तरङ्गों के नीचे पड़ जाता है ॥६८२॥
जो विक्षेप रहित है, अस्थिरता रहित है, कुशल है,
संयमी है, कल्याण मित्र है और मेधावी है
वह दुःख का अन्त करनेवाला है ॥६८३॥
दन्तिलता के पोर जैसे जिसके अंग हैं,
जो पतला है, जिसका शरीर धमनियों से मढ़ा है,
जो अन्न पान में उचित मात्रा को जानता है,
उसका मन अदीन है ॥६८४॥
(वह) अरण्य में, महावन में
मक्खियों और मच्छड़ों का स्पर्श पाकर,
संग्राम भूमि में आगे रहने वाले हाथी की तरह,
स्मृतिमान् हो उसका सहन करे ॥६८५॥
मैं मृत्यु का अभिनन्दन नहीं करता,
मैं जीवन का भी अभिनन्दन नहीं करता ।

मुक्त भृत्य की भाँति मैं अपने
समय की प्रतीक्षा करता हूँ ॥६८६॥
मैंने शास्ता की सेवा की है
और बुद्ध शासन को पूरा किया है।
मैंने भारी भार का उतार दिया है
और भवनेत्र (तृष्णा) को समूल नष्ट किया है ॥६८७॥
जिस अर्थ के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ
मैंने उस अर्थ को प्राप्त किया।
मुझे साथियों की क्या आवश्यकता है ॥६८८॥

२४७ उदायि

कपिलवस्तु के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त। एक दिन कुछ लोगों को कोसल नरेश के श्वेत नाग (= हाथी) का वर्णन करते देखकर उदायि ने बुद्ध नाग (= श्रेष्ठ) का वर्णन इस प्रकार किया :

मनुष्यों में उत्पन्न आत्म दमन से युक्त
समाहित चित्तशान्ति में रत
श्रेष्ठ मार्ग पर चलनेवाले सम्बुद्ध को
(मैंने देखा) ॥६८९॥
सभी धर्मों में पारङ्गत
जिन्हें मनुष्य नमस्कार करते हैं
उन्हें देवता भी नमस्कार करते हैं—
इस प्रकार मैंने अर्हन्त (बुद्ध) के विषय में सुना है ॥६९०॥
जो सभी बन्धनों के परे हैं,
वन (= तृष्णा) से निकल कर निर्वाण पहुँचते हैं

कामों से निकल कर निष्कामता में रत हैं,
वे पर्वत से निकला हुआ शुद्ध काञ्चन की तरह हैं ॥६९१॥
वे (सभी प्राणियों में) वैसे ही सर्वश्रेष्ठ हैं
जैसे कि हिमालय सभी पर्वतों में।
सभी श्रेष्ठ नामों में यही सत्य और उत्तम नाम है ॥६९२॥
मैं तुम्हें नाग का वर्णन करूँगा।
वह पाप नहीं करता।
शील और अहिंसा नाग के दो पाद हैं ॥६९३॥
स्मृति और जागरूकता नाग के दूसरे पाद हैं।
श्रद्धा सूँड़ है और उपेक्षा नाग के श्वेत दाँत हैं ॥६९४॥
स्मृति ग्रीवा है, प्रज्ञा सर है
धर्म-चिन्तन सूँड़ से जाँचना है,
धर्म-निवास कुक्षि है और
विवेक उसकी वालधी है ॥६९५॥
वे ध्यानी निर्वाण में रत हैं,
अध्यात्म में सुसमाहित हैं।
नाग चलते समय समाहित हैं
और खड़े रहते समय समाहित हैं ॥६९६॥
नाग सोते समय समाहित हैं
और बैठते समय समाहित हैं।
नाग सर्वत्र संयत है,
यही नाग की महिमा है ॥६९७।
नाग अनवद्य भोजन लेते हैं
और सावद्य भोजन नहीं लेते।
भोजन और वस्त्र पाने पर
वे (उन्हें संग्रह करना छोड़ देते हैं ॥६९८॥

सभी सूक्ष्म और स्थूल बन्धनों का
छेदन कर (वे) जहाँ जहाँ जाते हैं
अपेक्षा के बिना ही जाते हैं ॥६९९॥
सुगन्धयुक्त और सुन्दर कमल जल में उत्पन्न हो,
जल में बढ़कर जल से लिप्त नहीं रहता ॥७००॥
इसी प्रकार बुद्ध संसार में उत्पन्न हो
संसार में रहते हुए संसार में
वैसे ही लिप्त नहीं होते
जैसे, कि कमल पानी में ॥७०१॥
प्रज्वलित महा अग्नि
इन्धन के बिना शान्त हो जाती है।
अंगारों के रह जाने पर
(अग्नि) शान्त कहलाती है।७०२॥
अर्थ को समझाने के लिए विज्ञों ने उपमायें दे दी हैं।
नाग द्वारा नाग के विषय में देशित बात को
महानाग समझ जायेंगे ॥७०३॥
राग रहित, द्वेष रहित मोह रहित
और आस्रव रहित नाग आस्रव रहित हो
शरीर को त्याग कर परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे ॥७०४॥

पन्द्रहवाँ निपात समाप्त

सोलहवाँ निपात

एकतीसवाँ वर्ग

२४८. अधिमुत्त

सकिच्च स्थविर के भानजे। वे अपने मामा के पास श्रामणेर हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। एक दिन उपसम्पदा पाने के लिए अपनी माता से अनुमति लेने गये। जिस जगल से श्रामणेर को जाना था उसमें कुछ डाकू बलि का विधान कर उसके लिए एक आदमी के ताक में थे। जब श्रामणेर वहाँ से गुजरे तो लोगों ने उन्हें पकड लिया। वे कुछ कहे बिना शान्त खडे रहे। उन्हे देखकर सब डाकू आश्चर्य चकित हो गये। डाकुओं के सरदार ने उनकी निर्भयता का कारण पूछा। उत्तर में श्रामणेर ने अपने धार्मिक जीवन की सारी बातें सुनायीं। उससे प्रभावित हो सब डाकू लोग जीवन भर के लिए डकैती से विरत हो गये और कुछ लोग बाद मे प्रव्रजित भी हुए। उस समय डाकुओं के सरदार और श्रामणेर के बीच जो बातचीत हुई थी उसे उदान के रूप मे दिया गया है

सरदार :

यज्ञ के लिए या धन के लिए
जिनका हम पहले हनन करते थे
असहाय होकर वे भयभीत होते थे,
काँपते थे और विलाप करते थे ॥७०५॥

तुम्हें कोई भय नहीं ; तुम तो बहुत प्रसन्न हो।
ऐसे महान् भय में (पड़कर) तुम रोते क्यों नहीं ॥७०६॥

अभिभूत :

सरदार ! जिनको किसी की अपेक्षा
नहीं है उन्हें भय भी नहीं।
(मेरे) सभी भय बीत चुके हैं और बन्धन क्षीण हैं ॥७०७॥
संसार को यथार्थ रूप से देखने पर
मेरी भव नेत्र (तृष्णा) क्षीण हो गयी।
(मुझे) मृत्यु में भय वैसा ही नहीं होता
जैसा कि बोझ को उतारने में ॥७०८॥
मैंने ब्रह्मचर्य का अच्छी तरह पालन किया
और मार्ग का अच्छी तरह अभ्यास किया।
मुझे मृत्यु में वैसा ही भय नहीं है
जैसा कि रोगों के अन्त होने में ॥७०९॥
मैंने ब्रह्मचर्य का अच्छी तरह आचरण किया
और मार्ग का अच्छी तरह अभ्यास किया।
मैंने जन्मों को वैसा ही आस्वाद रहित देखा
जैसा कि पी कर छोड़ा हुआ विष ॥७१०॥
(मैं) संसार के पार गया हूँ आस्रव रहित हूँ,
कृतकृत्य हूँ और आश्रय रहित हूँ।
आयु के अन्त होने से मैं वैसा ही सन्तुष्ट हूँ
जैसा कि वध से मुक्त होने से ॥७११॥
(मैं) उत्तम धर्मता को प्राप्त हूँ।
सारे संसार में किसी से मुझे मतलब नहीं।
जलते हुए घर से मुक्त (मनुष्य) की तरह
मैं मृत्यु में शोक नहीं करता ॥७१२॥

जो कुछ संस्कृत है और जहाँ जन्म उपलब्ध है,
ये सब वश में नहीं रहते—
इस प्रकार महर्षि ने कहा है ॥७१३॥
जो बुद्ध के उपदेश के अनुसार ही इसे जान जाता है
वह संसार की किसी वस्तु को वैसा ही
(तृष्णा से) ग्रहण नहीं करता
जैसा कि बहुत गरम लोहे के गोले को ॥७१४॥
(मैं) पहले था या (मैं) भविष्य में हूँगा—
ऐसा मुझे नहीं होता।
संस्कार नाश को प्राप्त होंगे,
इसमें क्या रोना है ? ॥७१५॥
केवल प्रतीत्यसमुत्पन्न धर्मों ' की उत्पत्ति होती है,
केवल संस्कारों की सन्तति रहती है।
सरदार ! इसे जो यथार्थ रूपसे देखता है,
उसे भय नहीं होता ॥७१६॥
जब संसार को तृण और काष्ठ के समान देख लेता है,
वह अहंकार का अनुभव न कर, 'यह मेरा नहीं है'
इस प्रकार जानकर शोक नहीं करता ॥७१७॥
मैं शरीर से विरक्त हूँ और भव से मुझे कोई अर्थ नहीं।
यह शरीर फूटेगा और दूसरा नहीं होगा ॥७१८॥
तुम इस शरीर से जो काम करना चाहते हो सो करो।
उसके कारण मुझे द्वेष या प्रेम नहीं होगा ॥७१९॥
इसके अद्भुत और लोमहर्षक इस वचन को सुनकर
लोगों ने शस्त्रों को फेंककर इस प्रकार कहा : ॥७२०॥
भन्ते ! आप किस मार्ग पर चलते हैं,
आपके आचार्य कौन हैं ?

जिनके शासन में आकर
आप शोकमुक्त हो गये हैं ! ॥७२१॥
सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिन मेरे आचार्य हैं।
शास्ता महाकारुणिक हैं और
सारे संसार के वैद्य हैं ॥७२२॥
उन्होंने इस धर्मका उपदेश किया है
जो कि (दुःख के) अन्त का पहुँचानेवाला है
और अनुत्तर है।
उनके शासन में आकर शोक से मुक्त होगे ॥७२३॥
चोरों ने ऋषि के सुभाषित को सुनकर
शस्त्रों और अस्त्रों को फेंक दिया है।
कुछ लोग उस काम से विरत हुए
और कुछ लोगों ने प्रव्रज्या की कामना की ॥७२४॥
सुगत के शासन में प्रव्रजित हो
(सात) बोध्यङ्गों और (पाँच) बलों का
अभ्यास कर, प्रमुदित हो प्रसन्न हो
(पाँच) इन्द्रियों का अभ्यास कर
उन पंडितों ने असंस्कृत
निर्वाण पद का अनुभव प्राप्त किया ॥७२५॥

२४९ पारापरिय

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। इन्द्रिय-भावना पर दिये गये भगवान् के उपदेश पर मनन कर अर्हत् पद को प्राप्त हो पारापरिय स्थविर ने यह उदान गाया :

अकेले एकान्त में बैठे हुए, ध्यानरत श्रमण को
पारापरिय भिक्षु को यह विचार उत्पन्न हुआ। ॥७२६॥

ऐसा कौन क्रम है, कौन व्रत है, कौन आचरण है
जिससे कि मनुष्य का अपना काम भी हो
और दूसरों की हिंसा भी न हो ॥७२७॥
मनुष्यों की इन्द्रियाँ हित और अहित के लिए होती हैं।
अरक्षित इन्द्रियाँ अहितकारी हैं
और रक्षित इन्द्रियाँ हितकारी हैं ॥७२८॥
इन्द्रियों की ही रक्षा करे,
इन्द्रियों का ही गोपन करे।
(इससे) अपना काम भी होगा
और दूसरे की हिंसा भी नहीं होगी ॥७२९॥
यदि (कोई) चक्षु इन्द्रिय को रूपों के प्रति
आकर्षित होने से न रोकता हो तो,
दुष्परिणाम को न देखने वाला वह
दुःख से मुक्त नहीं होता ॥७३०॥
यदि (कोई) श्रोत्र इन्द्रिय को शब्दों के प्रति
आकर्षित होने से न रोकता हो तो,
दुष्परिणाम को न देखने वाला वह
दुःख से मुक्त नहीं होता ॥७३१॥
निकलने के मार्ग को बिना देखे
यदि कोई गन्धों का सेवन करता हो तो,
गन्धों में आसक्त वह दुःख से मुक्त नहीं होता ॥७३२॥
आम्ल, मधुर, तिक्त, इन रसों का
स्मरण करता हुआ जो इनमें आसक्त रहता है,
उसका हृदय विकसित नहीं होता ॥७३३॥
आकर्षक और प्रिय स्पर्शों का
(जो) स्मरण करता रहता है,

किसके शासन में आकर
आप शोकमुक्त हो गए हैं ? ॥७२१॥
सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिन मेरे आचार्य हैं।
शास्ता महाकारुणिक हैं और
सारे संसार के वैद्य हैं ॥७२२॥
उन्होंने इस धर्मका उपदेश किया है
जो कि (दुःख के) अन्त को पहुँचानेवाला है
और अनुत्तर है।
उनके शासन में आकर शोक से मुक्त होंगे ॥७२३॥
चारों ने ऋषि के सुभाषित का सुनकर
शस्त्रों और अस्त्रों को फेंक दिया है।
कुछ लोग उस काम से विरत हुए
और कुछ लोगों ने प्रव्रज्या की याचना की ॥७२४॥
सुगत के शासन में प्रव्रजित हो
(सात) बोध्यङ्गों और (पाँच) बलों का
अभ्यास कर प्रमुदित हो प्रसन्न हो
(पाँच) इन्द्रियों का अभ्यास कर
उन पंडितों ने असंस्कृत
निर्वाण पद का अनुभव प्राप्त किया ॥७२५॥

२४९ पारापरिय

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। इन्द्रिय-भावना पर दिये गये भगवान् के उपदेश पर मनन कर अर्हत् पद को प्राप्त हो पारापरिय स्थविर ने यह उदान गाया।

अकेले एकान्त में बैठे हुए, ध्यानरत श्रमण को,
पारापरिय भिक्षु को यह विचार उत्पन्न हुआ : ॥७२६॥

तो उसे अनुचित समझकर
अप्रमत्त और विचक्षण बन जाता है ॥७४१॥
जो अर्थयुक्त है और
जहाँ धर्मानुगत आनन्द है,
उसी का आचरण करे
वहीं उत्तम आनन्द है ॥७४२॥
बड़े और छोटे उपायों से
मनुष्य दूसरों की हिंसा करता है—
हनन कर, वध कर और दुःख पहुँचा कर;
वह क्रूरता के साथ दूसरों को लूट लेता है ॥७४३॥
जिस प्रकार बलवान् पुरुष
कील से पीटकर कील को निकालता है
उसी प्रकार कुशल पुरुष
इन्द्रियों के द्वारा इन्द्रियों का दमन करता है ॥७४४॥
श्रद्धा, वीर्य, समाधि, स्मृति और प्रज्ञा का अभ्यास कर,
(इन) पाँचों से (चक्षुरादि) पाँचों का दमन कर
साधक पापमुक्त हो जाता है ॥७४५॥
वह अर्थवान है, वह धर्म में स्थित है।
उसने पूर्ण रूप से बुद्ध के उपदेश का अनुसरण किया है,
वह मनुष्य सुख को प्राप्त होता है ॥७४६॥

२५०. तेलकानि

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। गृह त्यागकर वे शान्ति की खोज में निकले। लेकिन कहीं और किसी से शान्ति नहीं मिली। बाद में भगवान् से उपदेश सुनकर, प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए।

आसक्त मनुष्य आसक्ति के कारण
विविध दुःख पाता है ॥७३४॥
जो इन धर्मों[1] से मन की रक्षा नहीं कर पाता,
वह सभी पाँचों इन्द्रियों से दुःख को प्राप्त होता है ॥७३५॥
पीब खून और बहुत सी गन्दगियों से
परिपूर्ण इस शरीर को मनुष्य ने
अपनी चतुराई से वैसा ही सुन्दर बनाया है
जैसा कि चित्रित पिटारी को ॥७३६॥
कटुक दुःख मधुर आस्वाद से छिपकर
ऐसा प्रिय लगता है कि
मधु से लिप्त उस्तरे को चाटनेवाला
उसे नहीं समझ रहा है ॥७३७॥

जो स्त्री रूप में स्त्री रस में स्त्री स्पर्श में
और स्त्री गन्ध में आसक्त है,
वह विविध दुःख पाता है ॥७३८॥

पाँच स्त्री-स्रोत (रूपी विषय)
पाँच इन्द्रियों के प्रति प्रवाहित हैं।
जो उद्योगी है, वह उन्हें रोक सकता है ॥७३९॥
वह अर्थवान् है वह धर्म में स्थित है
वह दक्ष है वह विचक्षण है।
वह आनन्द के साथ भी
धार्मिक अर्थयुक्त काम करता है ॥७४०॥

यदि वह कहीं अनुचित और
निरर्थक काम के फेर में पड़ता है

---

१ क्रियायें।

तो उसे अनुचित समझकर
अप्रमत्त और विचक्षण बन जाता है ॥७४१॥
जो अर्थयुक्त है और
जहाँ धर्मानुगत आनन्द है,
उसी का आचरण करे
वही उत्तम आनन्द है ॥७४२॥
बड़े और छोटे उपायों से
मनुष्य दूसरों की हिंसा करता है—
हनन कर, वध कर और दुःख पहुँचा कर;
वह क्रूरता के साथ दूसरों को लूट लेता है ॥७४३॥
जिस प्रकार बलवान् पुरुष
कील से पीटकर कील को निकालता है
उसी प्रकार कुशल पुरुष
इन्द्रियों के द्वारा इन्द्रियों का दमन करता है ॥७४४॥
श्रद्धा, वीर्य, समाधि, स्मृति और प्रज्ञा का अभ्यास कर,
(इन) पाँचों से (चक्षुरादि) पाँचों का दमन कर
साधक पापमुक्त हो जाता है ॥७४५॥
वह अर्थवान् है, वह धर्म में स्थित है।
उसने पूर्ण रूप से बुद्ध के उपदेश का अनुसरण किया है,
वह मनुष्य सुख को प्राप्त होता है ॥७४६॥

२५०. तेलकानि

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। गृह त्यागकर वे शान्ति की खोज में निकले। लेकिन कहीं और किसी से शान्ति नहीं मिली। बाद में भगवान् से उपदेश सुनकर, प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए।

एक दिन सब्रह्मचारियों को अपना अनुभव सुनाते हुए तेकिच्छकानि स्थविर ने यह उद्गार गाया।

चिर काल तक धर्म के चिन्तन में लगा रहा
और (इस विषय में) श्रमणों तथा
ब्राह्मणों से पूछता भी रहा
(लेकिन) चित्त को शान्ति नहीं मिली ॥७४७॥

संसार में कौन पार गया है?
कौन अमृत को प्राप्त हुआ है?
परमार्थ के ज्ञान के लिए
किसका धर्म ग्रहण करूँ? ॥७४८॥

काँटे को निगली हुई मछली की तरह,
इन्द्र के पाश में बद्ध वेपचित्ति असुर की तरह
मेरा हृदय बंधा है ॥७४९॥
खींचने पर भी मैं इस पाश से,
शोक से मुक्त नहीं होता।
संसार में कौन मुझे बन्धन से मुक्त कर
सम्बोधि का ज्ञान करायेगा? ॥७५०॥

कौन श्रमण या ब्राह्मण उपदेश द्वारा
इस बन्धन को तोड़ देगा?
जरा और मृत्यु को बहाने के लिए
किसका धर्म ग्रहण करूँगा? ॥७५१॥

भ्रम और संशय से ग्रथित हूँ
हिंसा रूपी मल से युक्त हूँ
क्रोध से युक्त हूँ अभिमान से स्तब्ध हूँ
और लोभारोपण से विदीर्ण हूँ ॥७५२॥

तृष्णा रूपी धनुष उठा हुआ है
और तीस दृष्टियों से युक्त है।
देखो यह बोझ हृदय को तोड़ रहा है ॥७५३॥
अनुदृष्टियों के न हटने से संकल्प उत्तेजित है।
उससे विद्ध हो वैसा काँप रहा हूँ
जैसा कि हवा से हिलती हुई पत्ती ॥७५४॥
मेरे अन्दर (अहंकार रूपी आग) उठ कर
शीघ्र ही मुझे पका रही है,
जहाँ सतत छः स्पर्शों से युक्त
इस शरीर का अस्तित्व है ॥७५५॥
मैं उस वैद्य को नहीं देखता
जो कि मेरे इस तीर को निकाल दे।
संशय (रूपी इस रोग) को सूक्ष्म परीक्षा से ही
निकाला जा सकता है
और दूसरे शस्त्र से नहीं ॥७५६॥
कौन बिना शस्त्र के, बिना चोट पहुँचाये
मेरे अन्दर के तीर को देख सकता है ?
शरीर में कहीं भी चोट किये बिना
(कौन) मेरे तीर को निकाल सकेगा ? ॥ ७५७ ॥

वह श्रेष्ठ धर्मस्वामी कौन है
जो मेरे विष को बहा देगा ?
गहरे में पड़े हुए मुझे
कौन हाथ से स्थल दिखावेगा ? ॥७५८॥
रज और मिट्टी भरी हुई, पठता, ईर्षा, अहिंसा,
कायिक तथा वाचिक आलस्य बिखरे हुए
तालाब में मैं डूबा हूँ ॥७५९॥

एक दिन सब्रह्मचारियों को अपना अनुभव सुनाते हुए तेलकानि स्थविर ने यह उदान गाया।

चिर काल तक धर्म के चिन्तन में लगा रहा
और (उस विषय में) श्रमणों तथा
ब्राह्मणों से पूछता भी रहा
(लेकिन) चित्त को शान्ति नहीं मिली ।।७४७।।

संसार में कौन पार गया है ?
कौन अमृत को प्राप्त हुआ है ?
परमार्थ के ज्ञान के लिए
किसका धर्म ग्रहण करूँ ? ।।७४८।।

काँटे को निगली हुई मछली की तरह,
इन्द्र के पाश में बद्ध वेपचित्ति असुर की तरह
मेरा हृदय फँसा है ।।७४९।।
खींचने पर भी मैं इस शोक से
रोदन से मुक्त नहीं होता।
संसार में कौन मुझे बन्धन से मुक्त कर
सम्बोधि का ज्ञान करायेगा ? ।।७५०।।

कौन श्रमण या ब्राह्मण उपदेश द्वारा
इस बन्धन को तोड़ देगा ?
जरा और मृत्यु को बहाने के लिए
किसका धर्म ग्रहण करूँगा ? ।।७५१।।

भ्रम और संशय से ग्रथित हूँ
हिंसा रूपी बल से युक्त हूँ
क्रोध से युक्त हूँ, अभिमान से स्तब्ध हूँ
और लालायितपन से विदीर्ण हूँ ।।७५२।।

बुद्ध ने हटा दिया,
(उन्होंने) विष-दोष को वहा दिया ॥७६७॥

२५१. रट्ठपाल

कुरु देश के थुल्लकोट्ठित गाँव के महाधनी सेठ के पुत्र। वे सुख-विलास में पले और उचित समय पर उनका विवाह भी हुआ। कुरु देश में चारिका करते हुए भगवान् थुल्लकोट्ठित गाँव में पहुँचे। वहाँ भगवान् से उपदेश सुनकर रट्ठपाल बहुत प्रसन्न हुए। फिर बड़ी कठिनाई के साथ माता-पिता की अनुमति लेकर भगवान् के पास प्रव्रजित हुए। अर्हत् पद पाने के बाद वे अपने गाँव में गये। घरपर जाने से घर की स्त्रियों ने उन्हे प्रलोभित करने का प्रयत्न किया। उस अवसर पर रट्ठपाल स्थविर ने यह उदान गाया

इस चित्रित शरीर को देखो,
जो व्रणों से युक्त है, फूला है, पीड़ित है,
अनेक संकल्पों से युक्त है
और जिसकी स्थिति ध्रुव नहीं है ॥७६८॥

मणि और कुण्डल से सज्जित इस रूप को देखो।
चमड़े से ढकी हुई हड्डी
वस्त्रों के साथ शोभती है ॥७६९॥

पाद लाख से सजे हैं और मुँह पर चूर्ण लगा है।
यह मूर्ख को मोहने के लिए पर्याप्त है,
(लेकिन) पार (= निर्वाण) गवेषक को नहीं ॥७७०॥
गूँथे बाल हैं और अञ्जन लगे नेत्र हैं।

विक्षेप रूपी मेघ और
मानसिक बन्धन रूपी बादल ऊपर उमे हैं।
रागयुक्त विचार कुदृष्टि युक्त (मुझे)
इधर उधर ले जाते हैं ॥७६०॥
चारों ओर स्रोत बहते हैं
और लता फूट निकलती है।
कौन इन स्रोतों को रोके
और कौन इस लता का छेदन करे ॥७६१॥
भद्र ! स्रोतों के रोकने के लिए बाँध बाँधो।
मानसिक स्रोत, वृक्ष की तरह तुम्हें गिरा न दे ॥७६२॥
विशुद्ध सार धर्म का बना हुआ,
दृढ़ सोपान (भगवान् ने)
बहे जानेवाले मेरे लिए रच दिया
और कहा कि 'डरो नहीं' ॥७६३॥
स्मृतिप्रस्थान रूपी प्रासाद पर चढ़ कर
मैं उस अहंकार में आसक्त
लोगों पर विचार कर सका
जिसमें पहले मैं स्वयं आसक्त था ॥७६४॥
जब मैंने नाव पर चढ़ने का मार्ग देखा
(तब) आत्मा की धारणा से मुक्त हो मैंने
उत्तम घाट (रूपी निर्वाण) को देखा ॥७६५॥

भीतर उठे, भय तृष्णा से पोषित
तीर की निवृत्ति के लिए (भगवान् ने)
उत्तम मार्ग का उपदेश दिया है ॥७६६॥
दीर्घ काल से भीतर पड़ी हुई
चिरकाल से पड़ी हुई मेरी ग्रन्थि को

राजा और दूसरे बहुत से मनुष्य
अवीततृष्ण हो मृत्यु को प्राप्त होते हैं।
(वे) निर्धन होकर ही शरीर को छोड़ते हैं।
संसार के विषय में तृप्ति नहीं होती ॥७७७॥

बन्धु बाल बिखेर कर रोते है
कि हाय! हमारा (वह बन्धु) अमर हुआ होता!
तब उसे वस्त्र से ढँककर, ले जाकर
चिता बनाकर वहीं जला देते हैं ॥७७८॥

वह शूलों से ढकेला हुआ,
एक वस्त्र के अतिरिक्त और सम्पत्ति को छोड़कर,
जल जाता है।
मरते हुए मनुष्य के बन्धु, मित्र
या सहायक त्राण नहीं हो सकते ॥७७९॥

उत्तराधिकारी उसका धन ले जाते हैं।
(मृत) प्राणी कर्मानुसार (किसी) गति को प्राप्त होता है।
मरनेवाले के साथ कुछ भी धन नहीं जाता,
बाल-बच्चे, स्त्री, धन और राष्ट्र भी नहीं जाते ॥७८०॥

धन से (कोई) दीर्घ आयु नहीं पाता
और न धन से जरा का ही नाश होता है।
ज्ञानियों ने जीवन को अल्प, अशाश्वत
और परिवर्तनशील बताया है ॥७८१॥

धनी और दरिद्र स्पर्श पाते हैं,
मूर्ख और ज्ञानी भी स्पर्श पाते हैं।
मूर्ख मूर्खता के कारण पीड़ित हो पड़ा रहता है।
ज्ञानी (दुःख) स्पर्श पाकर काँपता नहीं ॥७८२॥

(यह) मूर्ख को मोहने के लिए पर्याप्त है,
(लेकिन) पार[1] गवेषक को नहीं ॥७७१॥

अञ्जन लगाने की नयी और चित्रित माटिका की तरह
यह गन्दा शरीर अलंकृत है।
(यह) मूर्ख को मोहने के लिए पर्याप्त है,
(लेकिन) पार गवेषक को नहीं ॥७७२॥

व्याधे ने पाश लगाया है।
(हम) मृग पाश में बिना पड़े, चारे को खाकर,
व्याधों को रोते छोड़ चले ॥७७३॥

व्याधे का पाश तोड़ दिया गया है।
मृग पाश में नहीं पड़ा। चारे को खाकर,
व्याधों को रोते छोड़ (हम) चले ॥७७४॥

एक दिन रट्ठपाल थेर कौरव्य राजा के उद्यान में बैठे थे। उस
उनसे प्रव्रजित होने का कारण पूछा। उसे बताते हुए स्थवि
ने यह उदान गाया।

मैं संसार में धनी मनुष्यों को देखता हूँ
जो धन पाकर मोह के कारण दान नहीं करते।
(वे) लोभी धन का संग्रह करते हैं
और अधिकाधिक विषयों की कामना करते हैं ॥७७५॥
राजा पृथ्वी पर, सागर पर्यन्त पृथ्वी पर
शक्ति से विजय प्राप्त कर
समुद्र के इस पार से तृप्त न हो,
समुद्र के उस पार की भी इच्छा करते हैं ॥७७६॥

१ निर्वाण

राजा और दूसरे बहुत से मनुष्य
अवीततृष्ण हो मृत्यु को प्राप्त होते हैं।
(वे) निर्धन होकर ही शरीर को छोड़ते हैं।
संसार के विषय में तृप्ति नहीं होती ॥७७७॥

बन्धु बाल बिखेर कर रोते हैं
कि हाय ! हमारा (वह बन्धु) अमर हुआ होता !
तब उसे वस्त्र से ढँककर, ले जाकर
चिता बनाकर वहीं जला देते हैं ॥७७८॥

वह शूलों से ढकेला हुआ,
एक वस्त्र के अतिरिक्त और सम्पत्ति को छोड़कर,
जल जाता है।
मरते हुए मनुष्य के बन्धु, मित्र
या सहायक त्राण नहीं हो सकते ॥७७९॥

उत्तराधिकारी उसका धन ले जाते हैं।
(मृत) प्राणी कर्मानुसार (किसी) गति को प्राप्त होता है।
मरनेवाले के साथ कुछ भी धन नहीं जाता,
बाल-बच्चे, स्त्री, धन और राष्ट्र भी नहीं जाते ॥७८०॥

धन से (कोई) दीर्घ आयु नहीं पाता
और न धन से जरा का ही नाश होता है।
ज्ञानियों ने जीवन को अल्प, अशाश्वत
और परिवर्तनशील बताया है ॥७८१॥

धनी और दरिद्र स्पर्श पाते हैं,
मूर्ख और ज्ञानी भी स्पर्श पाते हैं।
मूर्ख मूर्खता के कारण पीड़ित हो पड़ा रहता है।
ज्ञानी (दुःख) स्पर्श पाकर काँपता नहीं ॥७८२॥

इसलिए धन की अपेक्षा प्रज्ञा ही श्रेष्ठ है
जिससे (मनुष्य) यहाँ (दुःखके)
अन्त को प्राप्त कर सकता है।
(मूर्ख) संसार का अन्त न पाकर
मोह के कारण पाप कर्म करता है ॥७८३॥
(मूर्ख) बारम्बार गर्भ में और परलोक में
संसार में जन्म लेता है।
(दूसरा) अल्प प्रज्ञ भी उसका विश्वास कर
इस लोक और परलोक में
जन्म लेता है ॥ ७८४ ॥
जिस प्रकार सेंध लगाते समय पकड़ा हुआ पापी चोर
अपने कर्म के कारण दुःख पाता है
उसी प्रकार पापी लोग पाप कर्म करके
अपने कर्मसे दुःख पाते हैं ॥ ७८५ ॥
काम विचित्र हैं मधुर हैं और मनोरम हैं।
(वे) अनेक प्रकार से चित्त का मथन करते हैं।
(मैंने) काम-गुणों के दुष्परिणाम को देखा है।
महाराज ! इसलिए मैं प्रव्रजित हूँ ॥ ७८६ ॥
जिस प्रकार वृक्षों के फल गिरते हैं
उसी प्रकार तरुण और वृद्ध मनुष्य भी
शरीर के टूटने से गिर जाते हैं।
महाराज इसे भी देखकर
मैं प्रव्रजित हुआ हूँ।
यथार्थ साधुत्व ही श्रेष्ठ है ॥ ७८७ ॥
मैं श्रद्धा से जिन-शासन में आ गया हूँ।
मेरी प्रव्रज्या रिक्त नहीं।

उऋण हो मै भोजन लेता हूँ ॥७८८॥
विषयों को आग की तरह देखा,
सोना-चाँदी को शस्त्र (की तरह देखा),
गर्भ में उत्पत्ति को दुःख (देखा),
नरकों के महाभय को देखा ॥ ७८९ ॥

इस दुष्परिणाम को देखकर
मुझे तब संवेग उत्पन्न हुआ।
सो मैं (दुःख से) विद्ध हो आस्रवो के
क्षय को प्राप्त हुआ ॥ ७९० ॥

मैंने शास्ता की सेवा की है
और बुद्ध-शासन को पूरा किया है।
मैंने भारी बोझ को उतार दिया है
और भव-नेत्र (तृष्णा) का
समूल नाश किया है ॥ ७९१ ॥

जिस अर्थ के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ,
मैंने उस अर्थ को, सभी बन्धनों के
क्षय को प्राप्त किया ॥ ७९२ ॥

२५२. मालुङ्क्य पुत्त

इस स्थविर की कथा छठें निपात में आ गयी है। अर्हत् पद पाने के पहले एक दिन मालुङ्क्य पुत्त भगवान् के पास शिक्षा प्राप्त करने गये। भगवान् ने उन्हें इन्द्रियों द्वारा विषयों को जान कर उनमें आसक्त न होने की शिक्षा दी। इसी शिक्षा को लक्ष्य करके मालुङ्क्य पुत्त ने यह उदान गाया

जो रूप देखकर मन में प्रिय निमित्त का
स्मरण करता है
उसकी स्मृति विकल हो जाती है।
वह आसक्त चित्त से अनुभव पाता है
और उसी में पैठ जाता है ॥ ७९३ ॥

रूप से उत्पन्न उसकी अनेक वेदनाएँ बढ़ती हैं।
क्षोभ और परेशानी उसके मन को पीड़ित करती हैं।
जो इस प्रकार दुःख का संचय करता है,
वह निर्वाण से बहुत दूर है ॥ ७९४ ॥

शब्द सुनकर जो प्रिय निमित्त का स्मरण करता है,
उसकी स्मृति विकल हो जाती है।
वह आसक्त चित्त से अनुभव पाता है
और उसी में पैठ जाता है ॥ ७९५ ॥

शब्द से उत्पन्न उसकी अनेक वेदनाएँ बढ़ती हैं।
क्षोभ और परेशानी उसके मन को पीड़ित करती हैं।
जो इस प्रकार दुःख का संचय करता है,
वह निर्वाण से बहुत दूर है ॥ ७९६ ॥

गन्ध सूँघकर जो प्रिय निमित्त का स्मरण करता है,
उसकी स्मृति विकल हो जाती है।
वह आसक्त चित्त से अनुभव पाता है
और उसी में पैठ जाता है ॥ ७९७ ॥

गन्ध से उत्पन्न उसकी अनेक वेदनाएँ बढ़ती हैं।
क्षोभ और परेशानी उसके मन को पीड़ित करती हैं।
जो इस प्रकार दुःख का संचय करता है,
वह निर्वाण से बहुत दूर है ॥ ७९८ ॥

रस ग्रहण कर जो प्रिय निमित्त का स्मरण करता है,
उसकी स्मृति विकृत हो जाती है ।
वह आसक्त चित्त हो अनुभव पाता है
और उसी में पैठ जाता है ॥७९९॥
रस से उत्पन्न अनेक वेदनाएँ उसकी बढ़ती है ।
लोभ और परेशानी उसके मनको पीड़ित करती हैं ।
जो इस प्रकार दुःखका संचय करता है,
वह निर्वाण से बहुत दूर है ॥८००॥
जो स्पर्श पाकर प्रिय निमित्त का स्मरण करता है,
उसकी स्मृति विकृत हो जाती है ।
वह आसक्त चित्त हो अनुभव पाता है
और उसी में पैठ जाता है ॥८०१॥
स्पर्श से उत्पन्न उसकी अनेक वेदनाएँ बढ़ती है ।
लोभ और परेशानी उसके मनको पीड़ित करती है ।
जो इस प्रकार दुःख का संचय करता है,
वह निर्वाण से बहुत दूर है ॥८०२॥
जो विचार को जानकर प्रिय निमित्त का स्मरण करता है,
उसकी स्मृति विकृत हो जाती है ।
वह आसक्त चित्त हो अनुभव पाता है
और उसी में पैठ जाता है ॥८०३॥
विचार से उत्पन्न उसकी अनेक वेदनाएँ बढ़ती है ।
लोभ और परेशानी उसके मन को पीड़ित करती हैं ।
जो इस प्रकार दुःख का संचय करता है,
वह निर्वाण से बहुत दूर है ॥८०४॥
जो रूप देखकर स्मृतिमान् रहता है,
वह रूपों में आसक्त नहीं होता ।

वह अनासक्त चित्त हो अनुभव पाता है
और उसमें नहीं पैठता ॥८०५॥

जो रूप को देखता हुआ, उसका अनुभव पाता हुआ
उसे त्याग देता है और उसका संचय नहीं करता—
इस प्रकार वह स्मृतिमान् हो विचरता है।
जो इस प्रकार दुःख का संचय नहीं करता
वह निर्वाण के निकट हो आता है ॥८०६॥

जो शब्द सुनकर स्मृतिमान् रहता है,
वह शब्दों में आसक्त नहीं होता।
वह अनासक्त चित्त हो अनुभव पाता है
और उसमें नहीं पैठता ॥८०७॥

जो शब्द को सुनता हुआ उसका अनुभव पाता हुआ
उसे त्याग देता है और उसका संचय नहीं करता—
इस प्रकार वह स्मृतिमान् हो विहरता है।
जो इस प्रकार दुःख का संचय नहीं करता
वह निर्वाण के निकट हो आता है ॥८०८॥

जो गंध सूँघकर स्मृतिमान् रहता है,
वह गन्धों में आसक्त नहीं होता।
वह अनासक्त चित्त हो अनुभव पाता है
और उसमें नहीं पैठता ॥८०९॥

जो गंध को सूँघता हुआ उसका अनुभव पाता हुआ
उसे त्याग देता है और उसका संचय नहीं करता—
इस प्रकार वह स्मृतिमान् हो विचरता है।
जो इस प्रकार दुःख का संचय नहीं करता
वह निर्वाण के निकट हो आता है ॥८१०॥

जो रस ग्रहण कर स्मृतिमान् रहता है,
वह रसों में आसक्त नहीं होता।
वह अनासक्त चित्त हो अनुभव पाता है
और उसमें नहीं पैठता ॥८११॥

जो रस को ग्रहण करता हुआ, उसका अनुभव पाता हुआ,
उसे त्याग देता है और उसका संचय नहीं करता—
इस प्रकार वह स्मृतिमान् हो विहरता है।
जो इस प्रकार दुःख का संचय नहीं करता
वह निर्वाण के निकट हो जाता है ॥८१२॥

जो पदार्थ पाकर स्मृतिमान् रहता है,
वह स्पर्शों में आसक्त नहीं होता।
वह अनासक्त चित्त हो अनुभव पाता है
और उसमें नहीं पैठता ॥८१३॥

जो स्पर्श का सेवन करता हुआ, उसका अनुभव पाता हुआ
उसे त्याग देता है और उसका संचय नहीं करता—
इस प्रकार वह स्मृतिमान् हो विहरता है।
जो इस प्रकार दुःख का सचय नहीं करता
वह निर्वाण के निकट हो जाता है ॥८१४॥

जो विचार को जानकर स्मृतिमान् रहता है,
वह विचारों में आसक्त नहीं होता।
वह अनासक्त चित्त हो अनुभव पाता है
और उसमें नहीं पैठता ॥८१५॥

जो विचार को जानता हुआ उसका अनुभव पाता हुआ
उसे त्याग देता है और उसका संचय नहीं करता—
इस प्रकार वह स्मृतिमान् हो विचरता है।

जो इस प्रकार सुखका संचय नहीं करता
वह निर्वाण के निकट हो जाता है ॥८१६॥

२५३ सेल

अंगुत्तराप के आपण गाँव के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। वेदों और अन्य ब्राह्मण शास्त्रों में पारंगत हो वे तीन सौ ब्राह्मण माणवकों को पढ़ाते थे। एक समय भगवान् बड़ी भिक्षु मण्डली के साथ अंगुत्तराप में चारिका करते हुए आपण में पहुँचे। सेल अपने शिष्यों के साथ भगवान् के दर्शन के लिए गये। वे लक्षण-शास्त्र में पारंगत थे और भगवान् के महापुरुष लक्षणों की जाँच करने के विचार से उनकी प्रशंसा करने लगे। भगवान् ने उन्हें उचित जवाब दिया। अत्यन्त प्रसन्न हो सेल और उनके शिष्य भगवान् के पास प्रव्रजित हुए। अर्हत् पद पाने के बाद उन लोगों ने भगवान् के पास जाकर अपना हर्ष प्रकट किया। भगवान् और सेल के बीच जो बातचीत हुई थी और बाद में जो हर्ष प्रकट किया गया था—उनको यहाँ पर उदान के रूप में दिया गया है।

भगवान् ! आप परिपूर्ण शरीरवाले हैं
पवित्र हैं, सुजात हैं, सुन्दर हैं
आपका वर्ण सुवर्ण जैसा है
आपके दाँत अत्यन्त उज्ज्वल हैं
और आप वीर्यवान् हैं। ८१७।
जो लक्षण सुजात मनुष्य के शरीर में होते हैं,
वे सब महापुरुष लक्षण आपके शरीर में हैं। ८१८।
प्रसन्न नेत्र वाले, सुन्दर मुख वाले
महान्, ऋजु, प्रतापी (आप) सूर्य की तरह
श्रमण समूह के बीच शोभायमान हैं। ८१९।

आपका दर्शन सुन्दर है, आपकी त्वचा सुनहरी है।
इतने सुन्दर आपको श्रमण भाव से क्या लाभ ॥ ८२० ॥
आप चार दिशाओं के विजेता, जम्बुद्वीप[1] के ईश्वर,
रथपति चक्रवर्ती राजा होने योग्य हैं ॥ ८२१ ॥
क्षत्रिय और अधीश्वर-जन आपके सामंत हैं।
(आप) राजाधिराज हैं, मनुजेन्द्र हैं,
गौतम ! राज्य करें ॥ ८२२ ॥

बुद्ध

सेल ! मैं राजा हूँ, अनुत्तर धर्मराज हूँ।
मैं धर्म का चक्र चलाता हूँ,
जिसे उलटा नहीं जा सकता ॥ ८२३ ॥

सेल

आप अनुत्तर धर्मराज सम्बुद्ध होने का दावा करते हैं।
आप कहते हैं कि धर्मचक्र का प्रवर्तन करता हूँ ॥ ८२४ ॥
आपका सेनापति कौन है ?
आपका अनुयायी श्रावक कौन है ?
आपके प्रवर्तित धर्मचक्र का
कौन अनुप्रवर्तन करता है ? ॥ ८२५ ॥

बुद्ध

मेरे प्रवर्तित इस अनुत्तर धर्मचक्र का
अनुप्रवर्तन तथागत का शिष्य सारिपुत्र करता है ॥ ८२६ ॥
ब्राह्मण ! जो कुछ जानना था मैंने जान लिया,
जिसे सिद्ध करना था सिद्ध कर लिया,

---

१ भारत।

जिसे दूर करना था दूर किया।
इसलिए मैं बुद्ध हूँ ॥ ८२७ ॥

ब्राह्मण ! मेरे विषय में शंका दूर करो, श्रद्धा लाओ।
सम्यक् सम्बुद्धों का दर्शन प्रायः दुर्लभ है ॥ ८२८ ॥

ब्राह्मण ! जिनका संसार में प्रादुर्भाव प्रायः दुर्लभ है
वह सम्यक् सम्बुद्ध अनुत्तर शल्यकर्ता मैं हूँ ॥८२९॥

मैं ब्रह्मभूत हूँ अतुल्य हूँ
और मारसेना का मर्दन करनेवाला हूँ।
मैं सब शत्रुओं को वश में कर
बिना भय के प्रमोद करता हूँ ॥८३०॥

सेल:

शल्यकर्ता महावीर, वन में सिंह की तरह
गर्जन करनेवाले चक्षुष्मान् जो कह रहे हैं,
उसे आप (शिष्य मण्डली) सुनें ॥८३१॥

ब्रह्मभूत अतुल्य मारसेना को मर्दन करने वाले
इन्हें देखकर कौन नीच जातिवाला
पुरुष भी प्रसन्न नहीं होगा ॥८३२॥

जो चाहे सो मेरा अनुसरण करे,
जो न चाहे चला जाय।
मैं उत्तम प्रज्ञ (बुद्ध) के पास प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा ॥८३३॥

सेल के शिष्य:

यदि सम्यक् सम्बुद्ध का अनुशासन
आप को पसन्द है तो हम भी
महाप्रज्ञ के पास प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे ॥८३४॥

ये तीन सौ ब्राह्मण हाथ जोड़कर
(प्रव्रज्या की) याचना करते हैं।
भगवान् ! हम आपके पास ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे ॥८३५॥

बुद्ध

सेल ! अच्छी तरह उपदिष्ट, अकालिक[१]
ब्रह्मचर्य का सदुपदेश मैंने किया है।
यहाँ अप्रमत्त हो शिक्षा प्राप्त करनेवाले
की प्रव्रज्या निष्फल नहीं होती ॥८३६॥

सपरिषद् सेल

चक्षुमान् ! हम (आज से) आठ दिन पूर्व
आपकी शरणमें आये थे।
आपका धर्म पालन कर इन सात रातों मे
हमने आपको जीत लिया ॥८३७॥
आप बुद्ध हैं, आप शास्ता हैं,
आप मार-विजयी मुनि हैं।
आपने समूल वासनाओं को नष्ट कर
(भवसागर को) पार किया
और इस प्रजा को भी पार लगाया ॥८३८॥
आप बन्धनों के परे हैं।
आपने वासनाओं को नष्ट किया है।
आप आसक्ति रहित हैं,
भयभीति रहित हैं ॥८३९॥
ये तीन सौ भिक्षु हाथ जोड़ खड़े हैं।

---

१. जो इसी जन्म में देखते-देखते शीघ्र फल देनेवाला है।

वीर पावों को पसारिये।
भाग¹ शास्ता की वन्दना करें ॥८४०॥

२५४ भद्दिय

एक शाक्य राजा। प्रव्रजित हो परमपद को प्राप्त। विमुक्ति सुख का अनुभव करते हुए वे प्रायः कहा करते थे कि कितना सुखी हूँ! कितना सुखी हूँ! इस उद्गार को सुनकर कुछ भिक्षुओं ने इस विषय में भगवान् से कहा। भगवान् ने भद्दिय को बुलाकर इस उद्गार का कारण पूछा। भद्दिय ने कहा कि जिस समय वे राजा थे उस समय कई अंग-रक्षक उनकी रक्षा के लिए रहते थे। लेकिन फिर भी उन्हें भय रहता था। अब वे सर्वस्व को त्याग कर प्रव्रजित हुए तो भय दूर हो गया और वे सुख का अनुभव करने लगे। इसी बात को व्यक्त करके भद्दिय ने यह उदान गाया:

(पहले) मैं महीन वस्त्र पहन कर
हाथी की पीठ पर चढ़ता था।
और स्वादिष्ट मांस के साथ
शाली का भात खाता था ॥ ८४१ ॥

आज भद्र उत्साही, पात्र में मिली भिक्षा से
सन्तुष्ट गोधाय का पुत्र
भद्दिय आसक्ति रहित हो ध्यान करता है ॥ ८४२ ॥

चिथड़ों से बने चीवर से सन्तुष्ट हो ..
ध्यान करता है ॥ ८४३ ॥
भिक्षा से सन्तुष्ट हो .. ध्यान करता है ॥ ८४४ ॥

१ भेड़।

तीन चीवरों से सन्तुष्ट हो......ध्यान करता है ॥ ८४५ ॥
सपदानचर्या से सन्तुष्ट हो .....ध्यान करता है ॥ ८४६ ॥
एकी समय भोजन से सन्तुष्ट हो . ...
ध्यान करता है ॥ ८४७ ॥

पात्र में ही भोजन करने से सन्तुष्ट हो... ..
ध्यान करता है ॥ ८४८ ॥
एक बार भोजन करने के बाद फिर भोजन ग्रहण करने
से विरत हो.. . ध्यान करता है ॥ ८४९ ॥
अरण्य में रहने से सन्तुष्ट हो ...ध्यान करता है ॥८५०॥
वृक्ष के नीचे रहने से सन्तुष्ट हो......
ध्यान करता है ॥ ८५१ ॥
खुले मैदान में रहने से सन्तुष्ट हो . ..
ध्यान करता है ॥ ८५२ ॥
श्मशान में रहने से सन्तुष्ट हो ..ध्यान करता है ॥८५३॥
कहीं भी आसन ग्रहण करने से सन्तुष्ट हो .....
ध्यान करता है ॥ ८५४ ॥
(बिना लेटे) बैठे ही आराम करने से सन्तुष्ट हो .. .
ध्यान करता है ॥ ८५५ ॥
थोड़ी ही आवश्यकताओं से सन्तुष्ट हो ....
ध्यान करता है ॥ ८५६ ॥
सन्तुष्ट हो, स्मृतिमान् हो ··ध्यान करता है ॥ ८५७ ॥
एकान्तवासी हो ...ध्यान करता है ॥ ८५८ ॥
लोगों से अलग हो ·ध्यान करता है ॥ ८५९ ॥
उद्योगी हो, तत्पर हो, पात्र में मिली भिक्षा से सन्तुष्ट हो
गोधाय का पुत्र भद्दिय आसक्ति रहित हो
ध्यान करता है ॥ ८६० ॥

बहुमूल्य काँसे और सोने के बने
पात्रों को छोड़कर
मैंने मिट्टी का पात्र ले लिया।
यह मेरा दूसरा अभिषेक है ॥ ८९१ ॥
दृढ़ अट्टालिकाओं और कोठों से युक्त
ऊँचे चार गोल प्राकारों से घिरे नगर में
खड्गहस्त (रक्षकों से) रक्षित होने पर भी
मैं भयभीत रहता था ॥ ८९२ ॥
आज भद्र, त्रास रहित, भय भीति रहित
गोधाय का पुत्र भद्दिय वन में प्रवेश कर,
ध्यान करता है ॥८९३॥
शील के नियमों में प्रतिष्ठित हो,
स्मृति और प्रज्ञा का अभ्यास कर
क्रमशः मैं सभी बन्धनों के क्षय को प्राप्त हुआ ॥८९४॥

२५५ अंगुलिमाल

कोसल नरेश के अमात्य भार्गव पुरोहित के पुत्र जिसका नाम अहिंसक था। जन्म के दिन उनके आततायी होने के पूर्व लक्षण दिखाई दिये थे। बड़े हो जाने पर शिक्षा के लिए उन्हें तक्षशिला भेज दिया गया। आचार्य के सबसे प्रिय शिष्य बन गये। इसके कारण सब सहपाठी उनसे जलने लगे और उनके विरुद्ध शिकायत करने लगे। कई बार आचार्य ने उन शिकायतों की ओर ध्यान नहीं दिया। अन्त में उसने विश्वास किया। लेकिन अहिंसक बहुत बलवान् थे, इसलिए आचार्य ने उन्हें मारने का उपाय सोचा। एक दिन आचार्य ने अहिंसक को बुलाकर कहा कि अब तुम्हारी शिक्षा समाप्त है और गुरु दक्षिणा के रूप में एक हजार अंगुली ला दो। आचार्य ने सोचा कि एक हजार

अँगुलियों को काटने में यह एक न एक आदमीसे मार खायेगा ही। अहिंसक आचार्य की बात को सादर मानकर कोशल के जालिन नामक जङ्गल में जाकर राहगिरों की अँगुली काटने लगे। अब अहिंसक अँगुलिमाल के नाम से प्रसिद्ध हुए। बहुत से लोग अतकित होकर, गाँवों को छोड़ भाग गये। राजा ने अगुलिमाल को पकड़ने के लिए सिपाही भेज दिये। जब अंगुलिमाल की माता को यह खबर मिली तो उसने अपने पति से पुत्र की खोज करने को कहा। उसने उसकी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। तब माता स्वयं पुत्र की खोज में निकली। अगुलिमाल को अब एक ही अगुली की कमी थी। उन्होंने माँ को दूर पर आते देखकर सोचा कि आज मैं माँ की अँगुली काटकर इसे पूरा करूँगा। इधर अँगुलिमाल के पूर्व सचित पुण्य के प्रताप से भगवान् की कृपादृष्टि उनपर पड़ी। उन पर अनुग्रह करने के लिए भगवान् उसी समय वहाँ पर प्रकट हुए। भगवान् को देखकर अँगुलिमाल ने सोचा कि मैं माँ को छोड़कर इस श्रमण की अँगुलि काट लूँगा। ऐसा सोचकर भगवान् के पीछे चलने लगे। भगवान् ने ऋद्धि बल से ऐसा किया कि वे उनके पास पहुँच नहीं सके। अन्त में अँगुलिमाल ने पुकार कर कहा कि श्रमण! ठहरो। भगवान् ने उत्तर दिया कि अँगुलिमाल! मैं तो ठहरा हूँ और तुम चल रहे हो। अँगुलिमाल ने सोचा कि श्रमण चलता हुआ कहता है कि ठहरा हूँ। श्रमण तो झूठ नहीं बोलता। इसलिए उसके शब्दों में अवश्य कुछ गूढ़ार्थ होना चाहिए। तब नम्र होकर अँगुलिमाल ने भगवान् से उसका अर्थ पूछा। भगवान् ने उसे उपदेश द्वारा समझाया। अँगुलिमाल अस्त्र-शस्त्र छोड़कर भगवान् की शरण में आये और प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। अँगुलिमाल भिक्षु जब भिक्षा के लिए गये तो कुछ लोग उनपर पत्थर फेंकने लगे। उनसे आहत हो अँगुलिमाल भगवान् के पास गये। भगवान् ने उन्हें कहा कि अँगुलिमाल तुम जन्म-

जन्मान्तरों के दुःख से मुक्त हो गये, अब तुम्हें दुःख ही सहना है, दुःखे सहते।

भगवान् और अंगुलिमाल के बीच जो बातचीत हुई थी और प्रव्रजित होने पर अंगुलिमाल के मन में जो विचार उठे थे उनको यहाँ पर उदान के रूप में दिया गया है।

अंगुलिमाल।

श्रमण चलते हुए कहते हो कि 'मैं ठहरा हूँ'
और ठहरे हुए मुझे कहते हो कि 'तुम चलते हो'।
श्रमण! तुमसे मैं यह बात पूछता हूँ कि
तुम ठहरे कैसे हो और मैं ठहरा कैसे नहीं हूँ? ॥८९५॥

बुद्ध।

अंगुलिमाल! सभी प्राणियों के प्रति दण्ड त्याग कर
मैं सदा स्थिर रहता हूँ।
तुम प्राणियों के विषय में असंयत हो।
इसलिए मैं स्थिर हूँ
और तुम अस्थिर हो ॥८९६॥

अंगुलिमाल।

चिरकाल के बाद मैंने महर्षि की वन्दना की।
श्रमण ने महावन में प्रवेश किया।
आपके धर्मयुक्त एक गाथा को सुनकर
मैं सहस्र पापों को छोड़ दूँगा ॥८९७॥
इस प्रकार चोर ने तलवार और अस्त्र को हाथ में,
प्रपात में और गर्त में फेंक दिया।
तब चोर ने सुगत के पादों की वन्दना करके
वहीं प्रव्रज्या के लिए बुद्ध से याचना की ॥८९८॥

देवता सहित सारे संसार के शास्ता,
महाकारुणिक, महर्षि बुद्ध ने तब उसे कहा कि
'भिक्षु आओ' और वही उसका भिक्षु बनना हुआ ॥८६९॥

जो पहले प्रमाद करके पीछे प्रमाद नहीं करता,
वह इस लोक को मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति
प्रकाशित करता है ॥ ८७० ॥

जिसका किया पाप-कर्म उसके पुण्य से ढँक जाता है,
वह इस लोक को मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति
प्रकाशित करता है ॥ ८७१ ॥

जो तरुण भिक्षु बुद्ध-शासन में संलग्न होता है,
वह मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति
इस लोक को प्रकाशित करता है ॥ ८७२ ॥

आहत होने के बाद अगुलिमाल ने सबके प्रति मैत्री फैलाते हुए कहा :

मेरे शत्रु भी इस धर्म-कथा को सुनें ।
मेरे शत्रु भी बुद्ध शासन का आचरण करें ।
मेरे शत्रु भी उन सत्पुरुष मनुष्यों की संगति करें
जिन्होंने हृदय से धर्म को ग्रहण किया है ॥ ८७३ ॥

मेरे शत्रु भी शान्ति के उपदेशकों
और मैत्री के प्रशंसकों से
समय समय पर धर्म सुनें और
उसका अनुसरण करें ॥ ८७४ ॥

वह कभी भी न तो मेरी हिंसा करेगा
और न किसी दूसरे की हिंसा करेगा ।

यह परम शान्ति को प्राप्त हो
दुर्बल और सबल की रक्षा करेगा ॥ ८७५ ॥
नहर वाले पानी को ले जाते हैं
बाण बनाने वाले बाण को ठीक करते हैं,
बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं
और पण्डित जन अपना दमन करते हैं ॥ ८७६ ॥
(कुछ प्राणी) दण्ड से अंकुश से
या चाबुक से दमन किये जाते हैं ।
लेकिन मैं बिना दण्ड के बिना शस्त्र के
अचल (बुद्ध) द्वारा दान्त हूँ ॥ ८७७ ॥
हिंसा करने वाले मेरा नाम पहले अहिंसक था ।
आज मेरा नाम सत्य (सिद्ध) हुआ है
(अब) मैं किसी की भी हिंसा नहीं करता ॥ ८७८ ॥
पहले मैं अंगुलिमाल (नामक) विख्यात चोर था ।
महा प्रवाह से बह जाते समय
मैं बुद्ध की शरण में गया ॥ ८७९ ॥
मैं पहले रुधिर-हस्त नामी अंगुलिमाल था ।
(इस) शरणागमन को देखो,
मैंने भवनेत्र (तृष्णा) का
समूल नाश किया है ॥ ८८० ॥
वैसा कर्म करके महान् दुर्गति को प्राप्त होने वाला मैं
कर्म-फल का स्पर्श पाकर
उऋण हो भोजन ग्रहण करता हूँ ॥ ८८१ ॥
बुद्धिहीन मूर्ख लोग प्रमाद में लगते हैं ।
बुद्धिमान् श्रेष्ठ धन की भाँति
अप्रमाद की रक्षा करता है ॥ ८८२ ॥

प्रमाद में न फँसो, कामों में रत न होओ,
काम रति में लिप्त न होओ।
प्रमाद रहित पुरुष ध्यान करते
परम सुख को प्राप्त होता है ॥ ८८३ ॥
मेरा आना शुभ हुआ, अशुभ नहीं हुआ।
मुझे अच्छा परामर्श मिला।
भिन्न धर्मों में मैंने श्रेष्ठ धर्म को पाया ॥ ८८४ ॥
मेरा आना शुभ हुआ, अशुभ नहीं हुआ।
मुझे अच्छा परामर्श मिला।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया है
और बुद्ध शासन को पूरा किया है ॥ ८८५ ॥
उस समय मैं अरण्य में, पेड़ के नीचे,
पर्वतों में या गुफाओं में
जहाँ तहाँ चिन्तित रहता था ॥ ८८६ ॥
(अब) सुख से सोता हूँ, सुख से उठता हूँ
सुख से जीता हूँ, मार के पाश से मुक्त हूँ
अहा! मैं शास्ता से अनुकम्पित हुआ ॥ ८८७ ॥
मैं पहले दोनों ओर से परिशुद्ध,
उदिच्च ब्राह्मण जाति का था।
आज मैं सुगत, धर्मराज, शास्ता का पुत्र हूँ ॥ ८८८ ॥
मैं वीततृष्ण हूँ, आसक्ति रहित हूँ,
रक्षित इन्द्रियवाला हूँ और संयत हूँ।
पाप के मूल का नाशकर मैं
आस्रवों के क्षय को प्राप्त हूँ ॥ ८८९ ॥
मैंने शास्ता की सेवा की है
और बुद्ध-शासन को पूरा किया है।

मैंने भारी बोझ को उतार दिया है
और भव-तृष्णा को समूल नष्ट किया है ॥ ८९० ॥

२५६ अनुरुद्ध

अमितोदन शाक्य के पुत्र। वे कपिलवस्तु में पले थे। बाद में भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए और दिव्य चक्षु प्राप्त भगवान् के शिष्यों में सर्व श्रेष्ठ हुए। कई अवसरों पर प्रकट किये गये अनुरुद्ध के विचारों को यहाँ उदान के रूप में दिया गया है।

माता-पिता, बहनों बन्धुओं भाइयों
और पाँच काम-गुणों को त्याग कर
अनुरुद्ध ध्यान कर रहा है ॥ ८९१ ॥
नृत्य-गीत के साथ
झाल के शब्द को सुनकर
मैं (पहले) उठता था।
उससे शुद्धि को प्राप्त नहीं हुआ
मार-विषय में रत रहा ॥ ८९२ ॥
(अब) उसे छोड़ कर बुद्ध-शासन में रत हूँ।
सब प्रवाह से परे हो अनुरुद्ध ध्यान करता है ॥ ८९३ ॥
जो मनोरम रूप शब्द, रस गन्ध और स्पर्श हैं
उनको भी छोड़कर अनुरुद्ध ध्यान करता है ॥ ८९४ ॥
भिक्षा के बाद अकेला और बिना दूसरे के
मुनि अनुरुद्ध आस्रव रहित हो चिथड़ों को
खोजता है ॥ ८९५ ॥
मतिमान् मुनि अनुरुद्ध, आस्रव रहित हो,
चिथड़ों को छेकर,
उन्हें धोकर और रँगाकर पहनता है ८९६ ॥

जिसकी बड़ी बड़ी इच्छाएँ हैं, जो सन्तोषी नहीं,
जो लोगों के साथ ही रहता है
और जिसका चित्त विक्षिप्त रहता है,
उसमें ये पापी, अशुद्ध विचार उत्पन्न होते हैं ॥ ८९७ ॥

जो स्मृतिमान् है, जिसकी थोड़ी इच्छाएँ हैं,
जो सन्तोषी है, जिसका चित्त विक्षिप्त नहीं रहता,
जो एकान्त में रत है, जो प्रमुदित है
और जो सदा उद्योगी है,
उसे ये कुशल, बोधिपाक्षिक धर्म होते हैं।
वह आस्रव रहित भी हो जाता है।
इस प्रकार महर्षि ने कहा है ॥ ८९८-९ ॥
मेरे संकल्प को जानकर ससार के अनुत्तर शास्ता
मनोमय शरीर से ऋद्धिबल द्वारा
मेरे पास आये ॥ ९०० ॥

जब मुझे संकल्प हुआ
तब आगे भगवान् ने उपदेश दिया।
निष्प्रपञ्च[1] में रत बुद्ध ने
निष्प्रपञ्च का उपदेश किया ॥ ९०१ ॥

उनके धर्म को जानकर मैं शासन में रत रहा।
मैंने तीन विद्याओं को प्राप्त किया है
और बुद्ध के शासन को पूरा किया है ॥ ९०२ ॥

पचपन वर्ष मैं कभी लेटा ही नहीं।
पैंतीस वर्ष तक मैंने
निद्रा को समूल नष्ट किया ॥ ९०३ ॥

---

१. निर्वाण

भगवान् के महापरिनिर्वाण पर स्थविर ने इस उदान को गाया :

स्थिर-चित्त, अचल (बुद्ध) का
श्वासोच्छ्वास बन्द हुआ ।
तृष्णा-रहित चक्षुमान्
शान्त निर्वाण को प्राप्त हुए ॥ १०४ ॥

अचल मन से (उन्होंने) वेदना का सहन किया ।
शान्त प्रदीप की तरह उनका मन मुक्त हुआ ॥ १०५ ॥
स्पर्श आदि मुनि के विषयों की यही अन्तिम प्रवृत्ति है ।
सम्बुद्ध के निर्वाण प्राप्त होने पर
और (संस्कार) धर्म नहीं होंगे ॥ १०६ ॥

अब अनुरुद्ध वृद्ध हो चले थे । एक पूर्वपरिचित देवता ने उन्हें दूसरा जन्म ग्रहण करने को कहा । उसका जवाब देते हुए उन्होंने इस प्रकार कहा ।

जालिनि ! अब फिर देव लोक में वास करना नहीं है ।
जन्म रूपी संसार क्षीण हो गया है,
अब (मेरे लिए) पुनर्जन्म नहीं है ॥ १०७ ॥

फिर सब्रह्मचारियों को इस विषय में स्थविर ने कहा :

जो मुहूर्त भर में सहस्र प्रकार से
ब्रह्मलोक सहित अन्य लोकों को देखता है
जो ऋद्धिबल में निपुण है और (प्राणियों की) मृत्यु
और जन्म के समय को जानता है
देवता उस भिक्षु को देखता है ॥ १०८ ॥

अपने पूर्व जन्मों की कथा को सुनाते हुए आयुष्मान् अनुरुद्ध ने इस प्रकार कहा :

मैं पहले अपने भोजन के लिए
परिश्रम करने वाला अन्नहार नामक दरिद्र था
(उस समय) मैंने उपरिट्ठ नामक
यशस्वी श्रमण को दान दिया ॥ ९०९ ॥
सो मैं शाक्य कुल में उत्पन्न हो
अनुरुद्ध नाम से प्रसिद्ध हुआ।
मैं नृत्य-गीत सहित आलके शब्द को
सुनकर उठता था ॥ ९१० ॥
तब मैंने अकुतोभय शास्ता सम्बुद्ध के दर्शन पाये।
उनमें प्रसन्न-चित्त हो मैं
बेघर हो प्रव्रजित हुआ ॥ ९११ ॥
मैं पूर्व जन्मों को जानता हूँ जहाँ
मैं पहले रहता था।
तावतिंस देवताओं के बीच
सात बार मेरा जन्म हुआ था ॥ ९१२ ॥
सात बार मनुष्यों के बीच जन्म लेकर
मैंने राज्य किया।
चारों दिशाओं में विजयी हो,
जम्बुद्वीप का ईश्वर बन कर,
बिना खड्ग के बिना शस्त्र के मैंने शासन किया ॥ ९१३ ॥
यहाँ सात जन्म और वहाँ सात जन्म—
इस प्रकार चौदह जन्मों को
मैंने देवलोक में रहते ही जान लिया ॥ ९१४ ॥
पाँच अंगों से युक्त समाधि का अभ्यास कर,
शान्त हो, एकाग्र हो चित्त-प्रश्रब्धि को (मैंने) पाया।
मेरा दिव्य-चक्षु विशुद्ध हुआ ॥ ९१५ ॥

पाँच अंगों से युक्त ध्यान में स्थित हो
मैं प्राणियों की मृत्यु और जन्म को,
आगमन और गमनको
मनुष्य जन्म और इतर जन्मों को देखता हूँ ॥ ९१६ ॥
मैंने शास्ता की सेवा की है
और बुद्ध-शासन को पूरा किया है।
मैंने भारी बोझ को उतार दिया
और भव-तृष्णा का समूल नष्ट किया ॥ ९१७ ॥
जीवन के अन्त में वज्जियों के वेलुव गाँव में,
बाँस की झाड़ी के नीचे, आस्रव रहित हो
मैं निर्वाण को प्राप्त हूँगा ॥ ९१८ ॥

२५७ पारापरिय

पारापरिय की कथा प्रथम निपात में आयी है। वहाँ पर भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के पहले पारापरिय से की उदान गाथा का उसमें उल्लेख है। भगवान् के महापरिनिर्वाण के बाद पारापरिय स्थविर ने भविष्य के भिक्षुओं की दशा को लक्ष्य करके इन विचारों को प्रकट किया था :—

पुष्पित महावन में एकाग्रचित हो
एकान्त में बैठे ध्यानी श्रमण को
यह विचार उत्पन्न हुआ ॥ ९१९ ॥
पुरुषोत्तम लोकनाथ के रहते
भिक्षुओं की चर्या दूसरी थी
अब दूसरी दिखाई देती है ॥ ९२० ॥
ठंडी हवा से बचने के लिए
और लज्जा को ढँकने के लिए

काम भर कपड़े पहनते थे
और जो कुछ मिलता था
उससे सन्तुष्ट रहते थे ॥ ९२१ ॥

प्रणीत या रूक्ष, अल्प या बहुत
(भोजन पाकर) केवल जीवन यापन के लिए
भोजन करते थे, वे लालायित
और आसक्त नहीं रहते थे ॥ ९२२ ॥

जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं
और औषधि के सेवन में
वे उतने अधिक उत्सुक नहीं थे
जितने कि आस्रवों के क्षय में ॥ ९२३ ॥

अरण्य में, पेड़ों के नीचे, कन्दराओं
और गुफाओं में एकान्त का अभ्यास करते हुए,
उसी में रत हो वे रहते थे ॥ ९२४ ॥

वे नम्र थे, तत्पर थे, सुभर थे,
मृदु थे, अभिमान रहित थे, विनीत थे,
वाचाल नहीं थे और अर्थ-चिन्तन में रत थे ॥ ९२५ ॥

उनकी बात-चीत, भोजन-छादन
और रहन-सहन प्रसन्न थे।
तेल की धारा की भाँति
उनकी चाल स्निग्ध थी ॥ ९२६ ॥

सभी आस्रवक्षीण, महान् ध्यानी
और महान् हितैषी वे थेर
अब निर्वाण को प्राप्त हैं,
वैसे (लोग) अब अल्प हैं ॥ ९२७ ॥

कुशल धर्मों और प्रज्ञा के क्षीण होने से
सभी प्रकार से उत्तम जिन-शासन
विनाश को प्राप्त होने वाला है ॥ ९२८ ॥

पाप धर्मों और वासनाओं का यह समय है।
जो शान्ति पाने के लिए आये हैं
वे सद्धर्म में (उदासीनता के कारण)
अपूर्ण रह जाते हैं ॥ ९२९ ॥

ये वासनायें बढ़ती हुई
बहुत से लोगों के अन्दर प्रवेश करती हैं।
वे मूर्खों के साथ यों खेलती हैं
मानो राक्षस उन्मत्तों के साथ खेलते हैं ॥ ९३० ॥

वासनाओं के वश में होकर
वे सांसारिक वस्तुओं के लिए
इधर-उधर यों दौड़ते हैं
मानो संग्राम की घोषणा हुई है ॥ ९३१ ॥

वे सद्धर्म को छोड़ कर
एक दूसरे से झगड़ते हैं।
दृष्टियों के फेर में पड़ कर
वे मानते हैं कि यही श्रेष्ठ है ॥ ९३२ ॥

धन पुत्र और स्त्री का त्याग निकलने के बाद
कलछी भर भिक्षा के लिए भी
दुष्कृत्य का आचरण करते हैं ॥ ९३३ ॥

वे पेट भर भोजन कर ऊर्ध्वमुख हो जाते हैं।
जागने पर वही बातचीत करने लगते हैं
जो कि शास्ता द्वारा गर्हित है ॥ ९३४ ॥

कारीगरों के सब शिल्पों को
बड़े सम्मान के साथ सीखते हैं।
अध्यात्म को शान्त किये बिना
उसे श्रमण धर्म समझ बैठता है ॥ ९३५ ॥

मिट्टी, तेल, चूर्ण, जल, आसन
और भोजन गृहस्थों को देते हैं
और उससे अधिक की आकांक्षा करते हैं ॥ ९३६ ॥

दतुवन, कैथा, पुष्प, खाद्य,
स्वादिष्ठ भिक्षा, आम और आम्लकी (देते हैं) ॥ ९३७ ॥

वे औषध के विषय में वैद्यों की तरह हैं,
काम धाम में गृहस्थों की तरह हैं,
विभूषण में गणिकाओं की तरह हैं
और प्रताप में क्षत्रियों की तरह हैं ॥ ९३८ ॥

वे धूर्त हैं, वञ्चनिक हैं, ठग हैं और असंयमी हैं।
वे अनेक प्रकार से आमिष का उपभोग करते हैं ॥ ९३९ ॥

लोभ के फेर में पड़कर
वे अनुचित ढंग से, उपाय से
जीविका के लिए बहुत धन बटोरते हैं ॥ ९४० ॥

लोगों की सेवा काय से करते हैं, धर्म से नहीं।
दूसरों को धर्म का उपदेश देते हैं
(अपने) लाभ के लिए न कि (उनके) अर्थ के लिए ॥९४१॥

संघ के बाहर रहकर संघ के लाभ के लिए झगड़ते हैं।
पर-लाभ से जीविका करते हुए
वे निर्लज्ज लज्जा नहीं मानते ॥ ९४२ ॥

इस प्रकार अनुचित में लगे हुए कुछ मुंडे
चीवर धारण कर सम्मान की इच्छा करते हैं
वे लाभ-सत्कार में मूर्छित हैं ॥ ९४३ ॥
इस प्रकार अनेक संकटों से युक्त इस समय
पहले की तरह अप्राप्ति की प्राप्ति
या प्राप्ति की रक्षा सुकर नहीं ॥ ९४४ ॥
जो कौवों सहित स्थान में
उपादान के बिना चलना चाहता है,
उसे स्मृतिमान् होना चाहिए।
इस प्रकार मुनि गाँव में विचरण करे ॥ ९४५ ॥
पूर्व के योगियों की चर्या का स्मरण कर
इस आखीरी समय में भी
अमृत पद का अनुभव करे ॥ ९४६ ॥
यह कह कर शालवन में
संयत इन्द्रिय श्रेष्ठ श्रमण,
पुनर्जन्म-क्षीण ऋषि परिनिर्वाण को प्राप्त हुआ ॥ ९४७ ॥

चौसठवाँ निपात समाप्त

सतरहवाँ निपात

बत्तीसवाँ वर्ग

२५८. फुस्स

एक मण्डलेश्वर के पुत्र। भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त। एक दिन कुछ भिक्षुओं को उपदेश देते समय पण्डरगोत्त नामक ऋषि ने फुस्स से भविष्य के भिक्षुओं के विषय में पूछा। उसके जवाब में स्थविर ने अपने ये विचार प्रकट किये :

प्रसन्न, जितेन्द्रिय और संयमी
बहुत से भिक्षुओं को देख कर
पण्डरगोत्त ऋषि ने फुस्स से प्रश्न किया ॥ ९४८ ॥
भविष्यत काल में भिक्षु
किस प्रकार की आकांक्षा वाले,
किस प्रकार के उद्देश्य वाले
और किस प्रकार के आचार वाले होंगे ?
मेरे इस प्रश्न का उत्तर दें ॥ ९४९ ॥
पण्डर नामक ऋषि ! मेरी बात सुनो
और अच्छी तरह मन में धारण करो।
मैं भविष्य को बताऊँगा ॥ ९५० ॥
भविष्यत काल में बहुत से भिक्षु क्रोधी, वैरी,
मक्षी[1] धृष्ट, कपट, ईर्ष्यालु और झगड़ालू होंगे ॥ ९५१ ॥

---

१ दूसरों के गुणों को छिपाने वाले।

तीर पर खड़े होकर धर्म की
गहराई को जानने का दंभ भरेंगे ।
धर्म को हल्का लेकर उसका गौरव नहीं करेंगे,
और एक दूसरे का आदर नहीं करेंगे ॥ ९५२ ॥

भविष्यत काल में संसार में
बहुत प्रकार के दुष्परिणाम होंगे ।
दुर्बुद्धि इस सुदेशित धर्म को
अपवित्र करेंगे ॥ ९५३ ॥

गुणहीन मुखर और अभिमान् (भिक्षु)
संघ में (अपनेको) विशारदों की तरह
दिखाकर बलवान् होंगे ॥ ९५४ ॥

गुणवान् विनीत निस्स्वार्थी और धर्मानुसार
चलने वाले भिक्षु संघ में दुर्बल होंगे ॥ ९५५ ॥
भविष्य में दुर्बुद्धि चाँदी सोना खेत बगीचे
बकरे, मवेशी दासि और दास ग्रहण करेंगे ॥ ९५६ ॥
बिगड़ने वाले शील के नियमों में
असंयत, पशु की तरह कलहकारी
वे मूर्ख अभिमान के साथ विचरण करेंगे ॥ ९५७ ॥
वे नील वर्ण के चीवर पहन कर, विक्षिप्त हो
कपट हो धूर्त हो बकवादी हो
और चतुर बन विचरण करेंगे ॥ ९५८ ॥
वे चपल बालों में तेल लगाकर,
आँखों में अंजन लगा कर,
शहर की सड़क पर चलेंगे ॥ ९५९ ॥

अर्हन्तों की रक्त वर्ण जिस ध्वजा की विमुक्तों ने
घृणा नहीं की, श्वेत वस्त्र में आसक्त वे
उस काषाय वस्त्र को घृणा करेंगे ॥ ९६० ॥

आलसी और अनुद्योगी वे
लाभ की इच्छा करेंगे ।
वन प्रदेशों को कष्टकर समझ
वे गाँवों के निकट रहेंगे ॥ ९६१ ॥

जो जो सदा मिथ्या आजीविका मे रत हो लाभ प्राप्त करेंगे
उनका अनुसरण कर असंयमी हो वे विचरण करेंगे॥९६२॥

जो जो लाभ नहीं पायेंगे वे पूज्य नहीं होंगे ।
वे उस समय प्रियशील,
ज्ञानियों की संगति नहीं करेंगे ॥ ९६३ ॥

वे अपनी ध्वजा की अवहेलना करते हुए
काले रंग के चीवर पहनेंगे ।
कुछ लोग तीर्थकों की श्वेत वर्दी को पहनेंगे ॥ ९६४ ॥

उस समय काषाय वस्त्र के प्रति उनका अगौरव होगा ।
काषाय वस्त्र पर भिक्षुओं का मनन नहीं होगा ॥ ९६५ ॥

स्थविर ने छद्दन्त जातक का उदाहरण देते हुए आगे कहा '

दु:ख के वश में होने पर भी,
तीर के लगनेसे पीड़ित होने पर भी,
(छद्दन्त) हाथी को महान्
और विवेकपूर्ण विचार उत्पन्न हुए ॥ ९६६ ॥

उस समय छद्दन्त ने
अर्हन्तों की सुरक्त ध्वजा को देखा ।

उसी समय हाथी ने
अर्थान्वित इन गाथाओं को कहा ॥ ९६७ ॥
जो चित्तमलों को हटाये बिना
काषाय वस्त्र धारण करता है,
संयम और सत्य से हीन वह
काषाय वस्त्र का अधिकारी नहीं है ॥९६८॥
जिसने चित्तमलों को त्याग दिया है,
शील पर प्रतिष्ठित है, संयम और सत्य से युक्त है,
वही काषाय वस्त्र का अधिकारी है ॥९६९॥
जो दुर्बुद्धि शील से गिरा है असंयत है,
मनमानी करता है भ्रान्त-चित्त है और अनुद्योगी है,
वह काषाय वस्त्र का अधिकारी नहीं ॥९७०॥
जो शील से युक्त है, वीतराग है
समाहित है और जिसके विचार विशुद्ध हैं,
वह काषाय वस्त्र का अधिकारी है ॥९७१॥
जो मूर्ख विक्षिप्त है अभिमानी है
और जिसमें शील नहीं है उसे श्वेत वस्त्र ही ठीक है।
वह काषाय वस्त्र क्या करेगा ? ॥९७२॥
भविष्य में दुष्ट चित्त और आदर रहित भिक्षु तथा भिक्षुणी
स्थिर और मैत्री चित्त वाले (भिक्षुओं) को सतायेंगी॥९७३॥
थेरों द्वारा चीवर धारण सिखाये जाने पर भी
असंयत और मनमानी करने वाले
वे मूर्ख धर्म नहीं सुनेंगे ॥९७४॥
इस प्रकार शिक्षित एक दूसरे का गौरव न करने वाले
वे मूर्ख सारथी की बातों को न सुनने वाले
दुष्ट घोड़े की तरह, उपाध्याय को नहीं सुनेंगे ॥९७५॥

भविष्यत काल में, अन्तिम समय में
भिक्षुओं और भिक्षुणियों की
ऐसी चर्या होगी ॥९७६॥

आनेवाले समय में इस प्रकार महान् विपत्ति होगी।
उससे पहले नम्र हों, विनीत हों
और एक दूसरे का गौरव करें ॥९७७॥

मैत्री चित्त युक्त हों, कारुणिक हो,
शील के नियमों में संयत हों, उद्योगी हों,
निर्वाण मे रत हों और नित्य दृढ़ पराक्रमी हों ॥९७८॥

प्रमाद में भय देख कर, अप्रमाद में क्षेम देख कर,
अष्टाङ्गिक मार्ग का अभ्यास कर
अमृत पद (=निर्वाण) का
अनुभव प्राप्त करें ॥९७९॥

२५९. सारिपुत्त

भगवान् बुद्ध के दो प्रधान शिष्य—सारिपुत्त और मोग्गल्लान की कथा एक साथ आयी है। सारिपुत्त का जन्म उपतिस्स गाँव के ब्राह्मण कुल में और मोग्गल्लान का जन्म कोलित गाँव के ब्राह्मण कुल में हुआ था। छोटेपन से दोनों मित्र थे। एक दिन दोनों मित्र राज-गृह में उत्सव देखने गये। वहाँ दोनों को विरक्ति उत्पन्न हुई। वे दोनों सजय नामक परिव्राजक के शिष्य बन गये। लेकिन सजय की शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। इसलिए उससे विदा लेकर वे आगे सत्य की खोज में गये। एक दिन भिक्षु अस्सजी से, जो कि भगवान् के पाँच प्रथम शिष्यों में से एक थे, भगवान् का उपदेश सुन कर प्रसन्न हुए। तब वे भगवान् के पास जा कर प्रव्रजित हुए। प्रव्रज्या

से एक सप्ताह बाद सोतापत्तिक्रम अर्हत् पद को प्राप्त हुए। प्रव्रज्या के दो सप्ताह बाद दीघनख नामक सारिपुत्त के भानजे को भगवान् द्वारा दिये गये उपदेश सुन कर सारिपुत्त स्वयं परमपद को प्राप्त हुए। वे भगवान् के शिष्यों में प्रज्ञा में सर्वश्रेष्ठ हुए। इसलिए वे धर्म सेनापति भी कहलाते थे। कई अवसरों पर सारिपुत्त द्वारा प्रकट किये गये विचारों को यहाँ पर उदान के रूप में दिया जाता है :

जो शीलवान् है शान्त है,स्मृतिमान् है, शुद्ध विचारवाला है
अप्रमादी है अध्यात्म चिन्तन में रत है, समाहितात्म है,
अकेला है और सन्तोषी है—वह भिक्षु कहलाता है॥९८०॥

गीला या सूखा भोजन करते समय पेट भर न ले।
हल्का पेट हो, भोजन में उचित मात्रा हो
और स्मृतिमान् हो भिक्षु विचरण करे॥९८१॥

चार पाँच ग्रासों के लिए
स्थान रहने पर पानी पी ले।
निर्वाण प्राप्ति में रत भिक्षु के
सुख विहार के लिए यह पर्याप्त है॥९८२॥

अनुकूल चीवर और या भी काम भर पहने।
निर्वाण प्राप्ति में रत भिक्षु के लिए यह पर्याप्त है॥९८३॥

पालथी मार कर बैठने से
घुटन वर्षा के पानी से न भिगे तो
वह निर्वाण-प्राप्ति में रत
भिक्षु के लिए पर्याप्त है॥९८४॥

जिसने सुख को दुःख के रूप में
और दुःख को तीर के रूप में देखा है,

और उन दोनों के बीच कहीं
स्थायी अस्तित्व को नहीं पाया है,
उसे संसार में कहीं आसक्ति हो सकती है ? ॥९८५॥

पापी इच्छावाला, आलसी, अनुद्योगी, अज्ञानी
और आदर रहित व्यक्ति कभी मेरे पास न आवे,
ससार में कहीं भी उसे
उपदेश से क्या लाभ होगा ? ९८६॥

जो बहुश्रुत है, मेधावी है,
शील के नियमों में सुसमाहित है
और चित्त को शान्त करने में तत्पर है,
वह मुख्य स्थान पर रहे ॥ ९८७ ॥

जो प्रपञ्च में लगा है,
मृग की तरह प्रपञ्च में आसक्त है,
वह अनुत्तर योग-क्षेम रूपी
निर्वाण से बहुत दूर है ॥ ९८८ ॥

जो प्रपञ्च को त्याग कर
निष्प्रपञ्च में रत है,
वह अनुत्तर योग-क्षेम रूपी
निर्वाण को प्राप्त करता है ॥ ९८९ ॥

एक दिन अपने छोटे भाई रेवत को अरण्य में योगाभ्यास करते देख कर सारिपुत्त ने इस प्रकार प्रसन्नता प्रकट की :

गाँव में या जंगल में, नीचे या ऊँचे,
जहाँ कहीं अर्हत् विहार करते हैं,
वह भूमि रमणीय है ॥ ९९० ॥

यह रमणीय वन जहाँ साधारण लोग रमण नहीं करते,
वहाँ काम (भोगों) को न खोजने वाले
वीतराग रमण करेंगे ॥ ९९१ ॥

राध नामक वृद्ध शिष्य की चर्या से प्रसन्न हो स्थविर ने यह
उदान गाया :

निधियों को बतलाने वाले की भाँति
दोष दिखाने वाले, संयमवादी
मेधावी पण्डित का साथ करे,
क्योंकि वैसे का साथ करने से
कल्याण ही होता है, बुरा नहीं ॥ ९९२ ॥

कीटागिरि के भिक्षुओं में जब विवाद उत्पन्न हुआ था तो सारिपुत्र
उन्हें शान्त करने गये। उस अवसर पर उन्होंने यह विचार
प्रकट किया :

जो उपदेश दे, सुमार्ग दिखाये
और कुमार्ग से निवारण करे,
वह सज्जनों को प्रिय होता है
किन्तु दुर्जनों को अप्रिय ॥ ९९३ ॥

दीघनख को दिये गये उपदेश को सुन कर अर्हत् पद को प्राप्त हो
सारिपुत्र ने यह उदान गाया :

चक्षुमान् भगवान् बुद्ध
दूसरे को उपदेश दे रहे थे।
उनके उपदेश देते समय
मैंने ध्यानपूर्वक उसे सुना ॥ ९९४ ॥
मेरा (श्रम) श्रवण रिक्त नहीं हुआ।
मैं आस्रव रहित हो मुक्त हुआ।

न तो पूर्व जन्मों के ज्ञान के लिए,
न दिव्य चक्षु के लिए,
न दूसरों के विचारों को जानने की ऋद्धि के लिए,
न मृत्यु-जन्म के ज्ञान के लिए
और न दिव्य श्रोत की विशुद्धि के लिए ही
मैंने विशेष प्रयत्न किया ॥ ९९५-६ ॥

कपोत गुफा में रहते समय एक यक्ष के प्रहार से अविचलित रहने पर एक सब्रह्मचारी ने यह उदान सारिपुत्त के विषय में गाया

सर मुंडा हुआ, चीवर पहना हुआ,
प्रज्ञा में उत्तम उपतिस्स[1] स्थविर
वृक्ष के पास ध्यान करता है ॥ ९९७ ॥
सम्यक् सम्बुद्ध का श्रावक,
अवितर्क समाधि को प्राप्त हो,
आर्य मौन से विहरता है ॥ ९९८ ॥
जिस प्रकार शैल पर्वत अचल और सुप्रतिष्ठित है,
उसी प्रकार मोह क्षय को प्राप्त भिक्षु
पर्वत की भाँति अविचलित रहता है ॥ ९९९ ॥

एक दिन सारिपुत्त का चीवर शरीर से कुछ हट गया था। एक श्रामणेर ने उसे दिखाया। उससे प्रसन्न हो उस अवसर पर सारिपुत्त ने यह विचार प्रकट किया

आसक्ति रहित, नित्य पवित्रता की खोज में
रहनेवाले पुरुष को बाल का सिरा जितना पाप भी
बादल की तरह विशाल मालूम देता है ॥ १००० ॥

---

[1] सारिपुत्र।

जीवन और मृत्यु पर विचार प्रकट करते हुए सारिपुत्र ने यह उदान गाया :

मैं न तो मृत्यु का अभिनन्दन करता हूँ,
और न जीवन का ही अभिनन्दन करता हूँ।
ज्ञान पूर्वक, स्मृतिमान् हो मैं
इस शरीर को छोड़ दूँगा ॥ १००१ ॥

मैं न तो मृत्यु का अभिनन्दन करता हूँ,
और न जीवन का ही अभिनन्दन करता हूँ।
भृत्य मनुष्य की भाँति मैं
अपने समय की प्रतीक्षा करता हूँ ॥ १००२ ॥

कुछ लोगों को उपदेश देते हुए स्थविर ने ये विचार प्रकट किये :

पहले या बाद में दोनों दशाओं में मरना ही है,
मरे बिना नहीं रह सकता।
(इसलिए) अपने लक्ष्य को प्राप्त करे, उससे वञ्चित न होवे
अवसर को न खोवे ॥ १००३ ॥

जैसे सीमान्त का नगर भीतर बाहर खूब रक्षित होता है,
उसी प्रकार अपने को रक्षित रखे।
क्षण भर भी न चूके, क्योंकि क्षण को चूके हुए लोग
नरक में पड़कर शोक करते हैं ॥ १००४ ॥

एक दिन महामौद्गल्यायन की प्रशंसा करते यह उदान गाया :

जो उपशान्त है ध्यान में रत है
उचित मात्रा को जानकर बोलता है
और जिसका चित्त विक्षिप्त नहीं है

वह पाप धर्मों को उसी प्रकार हिला देता है
जिस प्रकार कि वायु वृक्ष के पत्ते को ॥१००५॥
जो उपशान्त है, ध्यान में रत है,
उचित मात्रा को जानकर बोलता है
और जिसका चित्त विक्षिप्त नहीं है,
वह पाप धर्मों को उसी प्रकार वहा देता है,
जिस प्रकार कि वायु वृक्ष के पत्ते को ॥१००६॥
जो उपशान्त है, परेशानी रहित है,
वहुत प्रसन्न है, व्याकुलता रहित है,
कल्याण स्वभाव का है और मेधावी है,
वह दुःख का अन्त करेगा ॥१००७॥

देवदत्त के पक्षपाती वज्जिपुत्तक भिक्षुओं को लक्ष्य करके सारिपुत्त ने ये विचार प्रकट किये थे :

कुछ गृहस्थों और प्रव्रजितों में
एकाएक विश्वास नहीं करना चाहिये ।
वे साधु होकर फिर असाधु हो जाते हैं
और असाधु होकर फिर साधु भी हो जाते हैं ॥१००८॥
कामेच्छा, क्रोध, शरीर और मन का आलस्य,
चित्त विक्षेप और शंशय,
ये पाँच भिक्षु के चित्तमल हैं ॥१००९॥
सत्कार और असत्कार दोनों के मिलने पर भी
अप्रमादविहारी की समाधि विचलित नहीं होती ॥१०१०॥
ध्यानी, सतत उद्योगी, सूक्ष्मदर्शी,
आसक्ति के क्षय में रत उसे
सत्पुरुष कहना चाहिये ॥१०११॥

शास्ता और अपने बीच की अन्तर का उसे संकेत करते हुए स्थविर ने यह कहा।

शास्ता की विमुक्ति के वर्णन में महासमुद्र पृथ्वी
पर्वत और आकाश भी पर्याप्त नहीं है ॥१०१२॥
(धर्म) चक्र के अनुप्रवर्तक
महाज्ञानी समाहित स्थविर
पृथ्वी तथा अग्नि की भाँति
न तो किसी से प्रेम करता है
और न किसी से द्वेष करता है ॥१०१३॥
प्रज्ञा की पूर्णता को प्राप्त
महान् बुद्धिमान् और महान् मतिमान्
अजड़ हो जड़ के समान
सदा शान्त हो विचरण करता है ॥१०१४॥
मैंने शास्ता की सेवा की है,
बुद्ध शासन को पूरा किया है।
भारी बोझ को उतार दिया है
और मेरे लिए पुनर्जन्म नहीं है ॥१०१५॥
अपने परिनिर्वाण के अवसर पर स्थविर ने यह उदान गाया।
अप्रमाद के साथ अपने
लक्ष्य का प्रतिपादन करो
यही मेरा अनुशासन है।
मैं सभी वासनाओं से मुक्त हूँ,
अब मैं निर्वाण को प्राप्त हूँगा ॥१०१६॥

२६० आनन्द

अमितोदन शाक्य के पुत्र। कई शाक्य कुमारों के साथ भगवान् के

आदित्य बन्धु बुद्ध के धर्म जिस (मार्ग) पर प्रतिष्ठित हैं,
वह गौतम निर्वाणगामी (उस)
मार्ग पर प्रतिष्ठित है ॥ १०२८ ॥

एक दिन गणक मोग्गल्लान नामक ब्राह्मण ने आनन्द से कहा कि आप बहुश्रुत हैं, आप भगवान् के उपदेशों को कहाँ तक जानते हैं। आनन्द ने ब्राह्मण को यह उत्तर दिया :

मैंने बयासी हजार उपदेश भगवान् से सीखे हैं
और दो हजार उपदेश संघ से सीखे हैं।
(इस प्रकार) चौरासी हजार उपदेशों का
ज्ञान मुझे है ॥ १०२९ ॥

एक निकम्मे पुरुष पर

यह अल्पश्रुत बैल की तरह बढ़ता है।
इसके माँस तो बढ़ते हैं, किन्तु
इसकी प्रज्ञा नहीं बढ़ती है ॥ १०३० ॥

अल्पश्रुत की अवज्ञा करनेवाले एक बहुश्रुत भिक्षु पर :

जो विद्वान् अपनी विद्या के कारण
अविद्वान् की अवज्ञा करता है,
वह प्रदीप धारण करनेवाले अन्धे की तरह
मुझे प्रतीत होता है ॥ १०३१ ॥
विद्वान् की सेवा करे और विद्या की उपेक्षा न करे।
वह ब्रह्मचर्य का मूल है।
इसलिए धर्मधर होवे ॥ १०३२ ॥
जो पूर्वापर को जानता है, अर्थ को जानता है,
निरुक्ति तथा व्याख्या में कुशल है,
वह ग्राह्य को ग्रहण करता है
और अर्थ को समझ लेता है ॥ १०३३ ॥

पाद् लाख से रंगे हैं और मुँह पर चूर्ण लगा है।
यह मूर्ख को मोहने के लिए पर्याप्त है,
पार-गवेषक को नहीं ॥१०२१॥

गूँथे बाल हैं और अंजन लगे नेत्र हैं।
(यह) मूर्ख को मोहने के लिए पर्याप्त है
पार-गवेषक को नहीं ॥१०२२॥

अंजन रखने की नयी और चित्रित नालिका की तरह
यह गन्दा शरीर अलंकृत है।
(यह) मूर्ख को मोहने के लिए पर्याप्त है,
पार-गवेषक को नहीं ॥ १०२३ ॥

व्याधे ने पाश लगाया है।
(हम) मृग पाश में बिना पड़े,
चारे को खाकर, व्याधों को रोते छोड़ चले ॥ १०२४ ॥

व्याधे का पाश तोड़ दिया गया है।
मृग पाश में नहीं पड़ा। चारे को खाकर,
व्याधों को रोते छोड़ (हम) चले ॥ १०२५ ॥

परमपद की प्राप्ति पर :

बहुश्रुत, कुशलवक्ता बुद्ध का सेवक गौतम[1]
भारमुक्त हो, आसक्ति-रहित हो सोता है ॥ १०२६ ॥

आस्रव क्षीण हो, आसक्ति रहित हो
आसक्ति से परे हो पूर्ण रूप से शान्त हो
जन्म और मृत्यु से परे हो (वह)
अन्तिम शरीर धारण करता है ॥ १०२७ ॥

---

१ आनन्द।

आदित्य बन्धु बुद्ध के धर्म जिस (मार्ग) पर प्रतिष्ठित हैं,
वह गौतम निर्वाणगामी (उस)
मार्ग पर प्रतिष्ठित है ॥ १०२८ ॥

एक दिन गणक मोग्गल्लान नामक ब्राह्मण ने आनन्द से कहा कि आप बहुश्रुत हैं, आप भगवान् के उपदेशों को कहाँ तक जानते हैं। आनन्द ने ब्राह्मण को यह उत्तर दिया :

मैंने बयासी हजार उपदेश भगवान् से सीखे है
और दो हजार उपदेश संघ से सीखे हैं।
(इस प्रकार) चौरासी हजार उपदेशों का
ज्ञान मुझे है ॥ १०२९ ॥

एक निकम्मे पुरुष पर :

यह अल्पश्रुत बैल की तरह बढ़ता है।
इसके माँस तो बढ़ते हैं, किन्तु
इसकी प्रज्ञा नहीं बढ़ती है ॥ १०३० ॥

अल्पश्रुत की अवज्ञा करनेवाले एक बहुश्रुत भिक्षु पर :

जो विद्वान् अपनी विद्या के कारण
अविद्वान् की अवज्ञा करता है,
वह प्रदीप धारण करनेवाले अन्धे की तरह
मुझे प्रतीत होता है ॥ १०३१ ॥
विद्वान् की सेवा करे और विद्या की उपेक्षा न करे।
वह ब्रह्मचर्य का मूल है।
इसलिए धर्मधर होवे ॥ १०३२ ॥
जो पूर्वापर को जानता है, अर्थ को जानता है,
निरुक्ति तथा व्याख्या में कुशल है,
वह ग्राह्य को ग्रहण करता है
और अर्थ को समझ लेता है ॥ १०३३ ॥

वह सहिष्णुता के साथ उद्देश्य को प्राप्त करता है
और उत्साह के साथ निश्चय पर पहुँचता है।
वह समय-समय पर उद्योग करता है
और अध्यात्म को शान्त बना देता है॥ १०२४॥

जो बहुश्रुत है धर्मधर है प्रज्ञायुक्त है
और धर्म का समझना की आकांक्षा रखता है
वैसे बुद्ध श्रावक की संगति करे॥ १०२५॥

(आनन्द) बहुश्रुत है, धर्मधर है, महर्षि का कोष-रक्षक है,
सारे संसार का चक्षु है, पूजनीय है और बहुश्रुत है १०२६।

जो धर्म में रमता है, धर्म में रत है
धर्म के अनुसार चिन्तन करता है।
इस प्रकार धर्म का अनुस्मरण करनेवाला भिक्षु
सद्धर्म से नहीं गिरता॥ १०२७॥

एक अनुयोगी भिक्षु पर :

जो शरीर पर अधिक ध्यान देता है,
जीवन का क्षय होनेपर भी उद्योग नहीं करता,
शरीर सुख में आसक्त उसे श्रमण सुख कहाँ?॥ १०२८॥

धर्मसेनापति सारिपुत्र के परिनिर्वाण पर :

मुझे दिशायें दिखाई नहीं देतीं,
सभी धर्म भी मुझे नहीं सूझते।
कल्याण मित्र के चले जाने पर
(मुझे सब कुछ) अन्धकार मालूम देता है॥ १ २९॥
सहायक के चले जाने पर, और शास्ता के चले जाने पर
कायगतस्मृति भावना जैसा कोई मित्र नहीं है॥ १०३०॥

जो पुराने लोग थे वे चले गये
और नये लोगों से पटरी नहीं बैठती।
सो मैं आज अकेला ध्यान करता हूँ,
वर्षा ऋतु में घोंसले में बैठे पक्षी की भाँति ॥ १०४१ ॥

अपने दर्शन के लिए आये हुए कुछ लोगों को अवकाश देते हुए भगवान् ने कहा

मेरे दर्शन के लिए अनेक देशों से बहुत से लोग आये हैं।
(धर्म) सुनने के इच्छुक उन्हें न रोके,
मेरे दर्शन का यह समय है ॥ १०४२ ॥

भगवान् की आज्ञा का पालन करते हुए आनन्द ने यह घोषणा की .

अनेक देशों से जो बहुत से लोग
भगवान् के दर्शन के लिए आये हैं,
भगवान् उनके लिए अवकाश देते हैं,
चक्षुमान् उनको रोकते नहीं ॥ १०४३ ॥

भगवान् के उपस्थापक के रूप में आनन्द ने इन उदानों को गाया

पचीस वर्ष शैक्ष* के रूप में रहने पर भी
मुझे काम युक्त विचार उत्पन्न नहीं हुआ,
धर्म की महिमा को देखो ॥१०४४॥

पचीस वर्ष शैक्ष के रूप में रहने पर भी
मुझे द्वेष युक्त विचार उत्पन्न नहीं हुआ;
धर्म की महिमा को देखो ॥१०४५॥

पचीस वर्ष तक साथ न छोड़नेवाली छाया की तरह
मैत्री पूर्ण काय कर्म से मैंने
भगवान् की सेवा की ॥१०४६॥

पचीस वर्ष तक, साथ न छोड़नेवाली छाया की तरह,
मैत्री पूर्ण वाक् कर्म से मैंने
भगवान् की सेवा की ॥१०४७॥

पचीस वर्ष तक, साथ न छोड़नेवाली छाया की तरह,
मैत्री पूर्ण मनोकर्म से मैंने
भगवान् की सेवा की ॥१०४८॥

जब बुद्ध टहलते थे तो
मैं भी उनके पीछे-पीछे टहलता था।
उनके उपदेश देते समय
मुझे ज्ञान उत्पन्न हुआ ॥१०४९॥

भगवान् के महापरिनिर्वाण पर :

मैं सकरणीय हूँ, शैक्ष हूँ और परमपद को प्राप्त नहीं हूँ।
मेरे अनुकम्पक शास्ता भी
परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये ॥१०५०॥

उस समय भीति उत्पन्न हुई,
उस समय रोमांच उत्पन्न हुआ
जिस समय कि सब प्रकार से उत्तम
सम्बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुए ॥१०५१॥

आनन्द की प्रशंसा में संगीतिकारक भिक्षुओं द्वारा रचित गाथा

बहुश्रुत, धर्मधर, महर्षि के कोष रक्षक,
सारे संसार के चक्षु (समान) आनन्द
परिनिर्वाण को प्राप्त हुए ॥१०५२॥

बहुश्रुत, धर्मधर, महर्षि के कोषरक्षक,
सारे संसार के चक्षु (समान) आनन्द
अन्धकार को दूर करनेवाले थे ॥१०५३॥
गतिमान् , स्मृतिमान् , धृतिमान् ,
और सद्धर्म को धारण करनेवाले
आनन्द थेर रत्नाकर थे ॥१०५४॥

अपने परिनिर्वाण के पहले आनन्द ने यह उदान गाया·

मैंने शास्ता की सेवा की है,
और बुद्ध शासन को पूरा किया है।
मैंने भारी बोझ को उतार दिया है,
अब मेरे लिए पुनर्जन्म नहीं ॥ १०५५ ॥

सतरहवाँ निपात समाप्त

चालीसवाँ निपात

२६१ महाकस्सप

मगध के महातित्थ गाँव के वैभवशाली ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। पिप्पली माणवक नाम था। जन्म से ही उनमें वैराग्य प्रवृत्ति प्रबल थी। एक दिन उन्होंने अपने माता-पिता से कहा कि जब तक आप लोग जीवित रहेंगे तब तक मैं अविवाहित रहकर आप लोगों की सेवा करूँगा और उसके बाद प्रव्रजित हो जाऊँगा। लेकिन माता उनसे विवाह के लिए नित्यप्रति कहती थी। एक दिन उन्होंने विवाह को टालने का उपाय सोचा। एक बहुत सुन्दर स्त्री की सोने की मूर्ति बनवायी। उसे माता को दिखाकर कहा कि ऐसी सुन्दर कन्या मिल जाय तो मैं विवाह करूँगा अन्यथा नहीं। माता ने मूर्ति देकर कुछ लोगों को कन्या की खोज में भेज दिया। वे मद्र देश में सागल नामक गाँव में पहुँचे। वहाँ नदी में एक सुन्दर कन्या को अपनी धाई के साथ स्नान करते देखा। उसका सौन्दर्य मूर्ति के सौन्दर्य से हूबहू मिलता था। भद्रा कपिलानी नामक वह कन्या उस गाँव के धनी ब्राह्मण कुल की थी। लोगोंने धाई से पिप्पली माणवक के विषय में सुनाया। उसने कन्या के माता-पिता को सन्देश दिया। वे दोनों के विवाह के लिए सहमत हो गये। भद्रा कपिलानी भी पिप्पली माणवक के स्वभाव की ही थी। जब विवाह ठीक हुआ तो वर और वधू के बीच विवाह न करने के लिए पत्र-व्यवहार होने लगा। लेकिन उनके दूत उन पत्रों को गुम कर दूसरे पत्र लिख कर दे जाते थे। अन्त में दोनों का विवाह हो गया। लेकिन वैवाहिक जीवन व्यतीत न कर दोनों

ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। माता-पिता के देहान्त के बाद गृहत्याग कर भद्रा कपिलानी भिक्षुणी संघ में शामिल हुईं और पिप्पली माणवक भिक्षु बने। पिप्पली माणवक का नाम महाकस्सप पड़ा। प्रव्रज्या के आठ दिन के बाद अर्हत पद को प्राप्त हुए और तेरह धुताङ्ग व्रतधारी भगवान् के शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ हुए।

कई अवसरों पर प्रकट किये गये महाकस्सप के विचारों को यहाँ पर उद्धत के रूप में दिया गया है। समूह में रहने के इच्छुक कुछ भिक्षुओं पर :

समूह के साथ विचरण न करे,
उससे मन अप्रसन्न हो जाता है
और समाधि दुर्लभ हो जाती है।
अनेक प्रकार के लोगों की संगति दुःखदायी है।
इसे देखकर समूह की इच्छा न करे ॥१०५६॥
मुनि (प्रायः) कुलों के पास न पहुँचे,
उससे मन अप्रसन्न हो जाता है
और समाधि दुर्लभ हो जाती है।
जो (इसमें) उत्सुक है और रस में आसक्त है,
वह उस सुखदायी अर्थ से वञ्चित हो जाता है ॥१०५७॥
कुलों में प्राप्त वन्दना और पूजा को ज्ञानियों ने पङ्क कहा है।
सत्कार रूपी तीक्ष्ण तीर नीच पुरुष
द्वारा निकलना कठिन है ॥१०५८॥

अपने किसी अनुभव को लक्ष्य करके अल्पेच्छता पर भिक्षुओं को दिया गया उपदेश

वासस्थान से उतर कर भिक्षा के लिए
मैंने नगर में प्रवेश किया।

(यहाँ) भोजन करते हुए कोढ़ी को देखकर
सत्कारपूर्वक उसके पास पहुँचा ॥१०५९॥

उसने पके हाथ से एक पिण्ड दे दिया।
पिण्ड के डालते ही एक अंगुली भी
अलग होकर पात्र में गिरी ॥१०६०॥

दीवार के पास बैठकर
मैंने उस पिण्ड को खा लिया।
खाते समय या खाने के बाद
मुझे घृणा नहीं हुई ॥१०६१॥

खड़े-खड़े प्राप्त भिक्षा जिसका भोजन है,
पुति-मूत्र[1] जिसकी औषधि है
वृक्षमूल जिसका वासस्थान है
और जिसका चीवर चिथड़ों का बना है
वह मनुष्य (= भिक्षु) चारों दिशाओं में
(कहीं भी) रह सकता है ॥१०६२॥

अपने पर्वत वास पर।

जिस पर्वत पर चढ़ने से कुछ लोग परेशान हो जाते हैं,
वहाँ बुद्ध का उत्तराधिकारी ज्ञानी स्मृतिमान्
और ऋद्धिबल से युक्त कस्सप चढ़ जाता है ॥१०६३॥

कस्सप भिक्षा से लौटकर
पर्वत पर चढ़कर,
आसक्ति रहित हो भय भीति रहित हो
ध्यान करता है ॥१०६४॥

---

१ हरीतकी आदि को गो-मूत्र में देकर बनी दवा

कस्सप भिक्षा से लौटकर पर्वत पर चढ़कर
जलते हुए लोगों के बीच
शान्त हो ध्यान करता है ॥१०६५॥

कस्सप भिक्षा से लौटकर पर्वत पर चढ़कर,
आसक्ति रहित हो, कृतकृत्य हो,
आस्रव रहित हो ध्यान करता है ॥ १०६६ ॥

जहाँ करेरि पुष्पों की मालाएँ बिछी हुई मनोरम भू-खंड हैं,
जो हाथियों के चिंघाड़ से रम्य है—
ऐसे पर्वत मुझे प्रिय हैं ॥ १०६७ ॥

जहाँ नील बादलों की तरह
सुन्दर, शीत और स्वच्छ जलाशय हैं,
जो इन्द्रगोपों से आच्छादित हैं—
ऐसे पर्वत मुझे प्रिय हैं ॥ १०६८ ॥

नील बादलों की चोटियों के समान,
उत्तम महलों के शिखरों के समान
और हाथियों के चिंघाड़ से रम्य
जो पर्वत हैं, वे मुझे प्रिय हैं ॥ १०६९ ॥

वर्षा के पानी से प्रफुल्लित, रम्य, ऋषियों से सेवित,
और मोरों के नाद से प्रतिध्वनित जो पर्वत हैं,
वे मुझे प्रिय हैं ॥ १०७० ॥

ध्यान की कामना करने वाले, निर्वाण में रत,
स्मृतिमान् मुझे यह पर्याप्त है।
हित की कामना करनेवाले निर्वाण में रत
मुझ भिक्षु को यह पर्याप्त है ॥ १०७१ ॥

और रस में आसक्त रहता है,
वह सुखद अर्थ से वञ्चित हो जाता है ॥१०७७॥

(बाहरी) काम अधिक न करे।
अहितकर समझ कर उसे त्याग दे।
उससे शरीर कष्ट पाता है और थक जाता है।
जो दुःखित है सो शान्ति का
अनुभव नहीं कर सकता ॥१०७८॥

केवल गुनगुनाने से कोई अपने हित को नहीं देख सकता।
वह (अभिमान से) गले को सीधा कर चलता है
और अपने आपको श्रेष्ठ समझता है ॥१०७९॥

जो मूर्ख श्रेष्ठ न होते हुए
अपने को श्रेष्ठ समझता है,
विज्ञ लोग उस अभिमानी
मनुष्य की प्रशंसा नहीं करते ॥१०८०॥

जो इस प्रकार नहीं सोचता कि
'मैं श्रेष्ठ हूँ' या 'मैं श्रेष्ठ नहीं हूँ'
या 'मैं हीन हूँ' या 'मैं समान हूँ'
प्रज्ञावान्, स्थिर, शील के नियमों में
सुसमाहित और चित्त-शान्ति में रत
उसकी विज्ञ लोग प्रशंसा करते है ॥१०८१-२॥

जिसमें सब्रह्मचारियों के प्रति
गौरव उपलब्ध नहीं है,
वह सद्धर्म से उतना ही दूर है
जितना कि पृथ्वी आकाश से ॥१०८३॥

जिनमें (पाप के प्रति) सतत
लज्जा और भय उपस्थित रहते हैं,
उनका ब्रह्मचर्य वृद्धि को प्राप्त है
और उनके लिए पुनर्जन्म क्षीण है ॥१०८४॥

जिस भिक्षु का चित्त विक्षिप्त है,
जो चपल है और चिथड़ों का बना
चीवर पहनता है, वह सिंह-चर्म पहने हुए
बन्दर की तरह उससे शोभित नहीं होता ॥१०८५॥

जिसका चित्त विक्षिप्त नहीं है,
जो चपल नहीं है, जो कुशल है
और जिसकी इन्द्रियाँ संयत हैं
वह चिथड़ों के बने चीवर से वैसा ही सुशोभित है
जैसा कि सिंह गिरि गुफा में ॥१०८६॥

ब्रह्मकायिक देवताओं द्वारा सारिपुत्र की वन्दना करते देख और उसपर महाकप्पिन को हँसते देख थेर ने ये विचार प्रकट किये।

ये बहुत से देवता ऋद्धिमान् और यशस्वी हैं।
ये दस सहस्र सभी देवता ब्रह्मकायिक हैं ॥१०८७॥

धर्मसेनापति वीर महाध्यानी
और समाहित सारिपुत्र को उन्होंने
खड़े होकर प्राञ्जलिबद्ध हो
इस प्रकार नमस्कार किया— ॥१०८८॥

श्रेष्ठ पुरुष ! आपको नमस्कार !
उत्तम पुरुष ! आपको नमस्कार !
ध्यान में रत आपके विचारों का
हम नहीं जान सकते ॥१०८९॥

बुद्धों का अपना विषय
आश्चर्यजनक है, गम्भीर है।
यद्यपि हम बाल के भेदन में निपुण हैं
तथापि हम उनको नहीं जान सकते ॥१०९०॥
उस प्रकार देव समूहों द्वारा पूजित
पूजार्ह सारिपुत्र को देखकर
उस समय कप्पिन को हँसी आयी ॥१०९१॥

महाकस्सप का सिंहनाद

बुद्ध-शासन में महामुनि को छोड़कर
मैं ही धुतगुणों में विशिष्ट हूँ,
मेरे समान कोई नहीं है ॥१०९२॥
मैंने शास्ता की सेवा की है
और बुद्ध शासन को पूरा किया है।
भारी बोझ को उतार दिया है,
अब मेरे लिए पुनर्जन्म नहीं है ॥१०९३॥

भगवान् पर

वासना-रहित, निष्कामता की ओर झुके हुए
और भव में निर्लिप्त गौतम
चीवर, शयन और भोजन में
वैसे ही लिप्त नहीं होते,
जैसे कि कमलका फूल पानी में ॥१०९४॥
जिन महामुनि का स्मृतिप्रस्थान ग्रीव है,
श्रद्धा हस्त है और प्रज्ञा शीश है—
वे महाज्ञानी सदा शान्त हो विचरते हैं ॥१०९५॥

चालीसवाँ निपात समाप्त

पचासवाँ निपात

२६२ तालपुट

राजगृह में उत्पन्न। नाट्यकला में निपुण हो पाँच सौ नर्तकियों के साथ देशमें भ्रमण कर नाटकों का प्रदर्शन कर सारे देश में विख्यात हो गये थे। बादमें भगवान् के पास प्रव्रजित हो अर्हत् पद को प्राप्त हुए। अपने मन का दमन करने में आयुष्मान् तालपुट ने जो महान् उद्योग किया था उसका सुन्दर वर्णन इस उदान में आया है।

मैं कब पर्वत गुफाओं में अकेला बिना दूसरे के विहरूँगा
और सारे भव को अनित्य के रूप में देखूँगा!
मेरी यह अभिलाषा कब पूरी होगी? ॥१०९६॥

मैं कब पैवन्द लगा चीवरधारी हो
काषायवस्त्रधारी मुनि हो,
अहंकार रहित हो तृष्णा रहित हो
राग, द्वेष तथा मोह का नाशकर
सुखपूर्वक वनमें विहरूँगा? ॥१०९७॥

मैं कब अनित्य वध और रोग का नीड़
मृत्यु और जरासे पीड़ित इस शरीरको
सम्यक् रूप से देखता हुआ निर्भय हो
अकेला वन में विहरूँगा?
मेरी यह अभिलाषा कब पूरी होगी? ॥१०९८॥

मैं कब भयजनक, दुःखदाई,
अनेक दिशाओं में जानेवाली
तृष्णा लता को प्रज्ञामय तीक्ष्ण
खड्ग लेकर छेदन कर विहरूँगा ?
यह अभिलाषा कब पूरी होगी ? ॥१०९९॥
मैं कब सिंहासन पर बैठकर,
ऋषियों के बहुत तेज प्रज्ञामय शस्त्र को
शीघ्र निकालकर, सेनासहित मारका
शीघ्र ही नाश कर डालूँगा ?
यह अभिलाषा कब पूरी होगी ? ॥११००॥
मैं कब सत्पुरुषों की सभाओं में
धर्म का गौरव करने वाले, स्थिर,
यथार्थता के दर्शी जितेन्द्रियों के साथ दिखाई दूँ ?
इसके लिए कब उद्योग होगा ? ॥११०१॥
पर्वत गुफा में परमार्थ के लिए
प्रयत्न करनेवाले मुझे कब तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा,
वायु, आतप, कीड़े और साँप बाधा नहीं पहुँचायेंगे ?
यह (अभिलाषा) कब पूरी होगी ? ॥११०२॥
महर्षि द्वारा विदित, दुर्दर्शनीय,
चार आर्यसत्यों को, समाहित हो,
स्मृतिमान् हो, प्रज्ञा से कब प्राप्त करूँ ?
यह अभिलाषा कब पूरी होगी ? ॥११०३॥
मैं कब समाधि से युक्त हो
असीम रूपों, शब्दों, गन्धों, रसों, स्पर्शों
और विचारों को दहकती वस्तुओं की तरह प्रज्ञा से देखूँ ?
मेरी यह अभिलाषा कब पूरी होगी ? ॥११०४॥

मैं कब काय रूप, दशा, इन (पाँच) स्कन्धों को
और भीतर तथा बाहर की
सभी असीम वस्तुओं को समदृष्टि से देखूँ !
मेरी यह अभिलाषा कब पूरी होगी ! ॥११०५॥

वन में ऋषियों के गये (आर्य) मार्ग पर
चलनेवाले मेरे चीवर को
वर्षा ऋतु का नया पानी कब भिगायेगा !
मेरी यह अभिलाषा कब पूरी होगी ! ॥११०६॥

वन में रहनेवाले शिखावाले
मोर पक्षी के नाद से पर्वत गुफा में उठकर,
परमार्थ की प्राप्ति के लिए मैं कब चिन्तन करूँ !
यह अभिलाषा कब पूरी होगी ॥११०७॥

गङ्गा यमुना सरस्वती और पातालमें गिरनेवाले
भीषण समुद्र मुख का बिना स्पर्श किये
ऋद्धि से मैं कब पार करूँ !
यह अभिलाषा कब पूरी होगी ! ॥ ११०८ ॥

बिना साथी के विचरनेवाले हाथी की तरह
काम वासनाओं की इच्छा को विदीर्ण कर,
मनमोहक सभी निमित्त का त्याग कर
मैं कब ध्यान-मग्न होऊँ !
यह अभिलाषा कब पूरी होगी ! ॥ ११०९ ॥

ऋणपाशों से पीड़ित ऋणी दरिद्र
निधिको पाकर जैसा प्रसन्न होता है
महर्षि के शासन को पाकर
मैं वैसा प्रसन्न कब हूँगा !
यह अभिलाषा कब पूरी होगी ! ॥ १११० ॥

उपरोक्त गाथाओं में प्रव्रज्या के पहले मन में उत्पन्न अभिलाषा को दिखाया है। निम्न गाथाओं में यह दिखाया गया है कि प्रव्रज्या के बाद मन में उत्पन्न उदासीनता को तालपुट ने किस प्रकार दूर किया है ·

चित्त ! बहुत वर्षों तक विनय पूर्वक
तुम कहते थे कि 'यह गृहवास पर्याप्त है'।
अब मेरे प्रव्रजित हो जाने पर
तुम किस लिए (श्रमण धर्म में) नहीं लगते ? ॥ ११११ ॥
चित्त ! विनय पूर्वक तुम मुझे कहते न थे कि
'पर्वत गुफा में ध्यान करनेवाले को
मेघ गर्जन से प्रसन्न सुन्दर पंख वाले पक्षी
अपने गीतोंसे प्रमुदित करेंगे ?' ॥ १११२ ॥
परिवार, मित्र, प्रिय, बन्धु, क्रीड़ा की रति
और सांसारिक कामगुण,
इन सबको त्याग कर मैं इसमें आ गया।
फिर भी, चित्त ! तुम मुझ से प्रसन्न नहीं हो ? ॥ १११३ ॥
चित्त ! तुम मेरा ही हो, दूसरे का नहीं।
संग्राम के समय रोने से क्या लाभ ?
यह सब नाशवान देख कर
मैं अमृत पद की गवेषणा में निकला ॥ १११४ ॥
उचित को बतानेवाले, मनुष्यों में उत्तम, महावैद्य ने,
मनुष्यों का दमन करनेवाले सारथी ने कहा है कि
बन्दर की तरह चित्त चंचल है
और अवीतराग द्वारा उसे वश में लाना दुष्कर है ॥१११५॥
काम विचित्र हैं, मधुर हैं और मनोरम हैं,
जहाँ अज्ञ, सामान्य जन आसक्त हो जाते हैं।

जो पुनर्जन्म के फेर में हैं
वे दुःख की कामना करते हैं,
वे चित्त के अनुसार चल कर
नरक में नाश को प्राप्त होते हैं ॥ १११६ ॥

'मोर और क्रौञ्च पक्षी के गीतों से प्रतिध्वनित कानन में
चीतों और बाघों के साथ रहते हुए
शरीर की अपेक्षा छोड़ दो
और अपने अवसर को न खोओ'—
इस प्रकार चित्त ! तुम पहले मुझसे आग्रह करते थे ॥१११

'बुद्ध-शासन में ध्यानों इन्द्रियों, बलों
और बोध्यङ्गों का अभ्यास करो
और समाधि भावना द्वारा
तीन विद्याओं का अनुभव प्राप्त करो'—
इस प्रकार, चित्त !
तुम पहले मुझसे आग्रह करते थे ॥१११८॥

'अमृत की प्राप्ति के लिए सभी दुःखों के क्षय के लिए
और सभी वासनाओं के नाश के लिए
नैर्याणिक, अष्टाङ्गिक मार्ग का अभ्यास करो'—
इस प्रकार, चित्त !
तुम पहले मुझसे आग्रह करते थे ॥१११९॥

'ज्ञान से (पाँच) स्कन्धों को दुःख के रूप में देखकर
जिस (हेतु) से दुःख की उत्पत्ति होती है
उसे त्याग दो और यहीं दुःख का अन्त करो —
इस प्रकार, चित्त !
तुम पहले मुझसे आग्रह करते थे ॥११२०॥

'(पञ्चस्कन्ध को) ज्ञान से अनित्य,
दुःख, शून्य, अनात्म, अघ और
वध के रूप में देखकर मन के वितर्कों को रोक दो'—
इस प्रकार, चित्त !
तुम पहले मुझसे आग्रह करते थे ॥११२१॥
'मुंडा हो, विरूप हो, 'अभिशाप' में आकर,
कपाल जैसे पात्र को हाथ में लेकर
कुलों में भिक्षा करो और
महर्षि शास्ता के वचन का अनुसरण करो'—
इस प्रकार, चित्त !
तुम पहले मुझसे आग्रह करते थे ॥११२२॥
'सयतात्मा हो गलियों में विचरे,
कुलों और कामों में आसक्त न होवे
और बादलों से मुक्त पूर्ण चन्द्र की तरह होवे'—
इस प्रकार, चित्त !
तुम पहले मुझसे आग्रह करते थे ॥११२३॥
'अरण्य में रहे, भिक्षा से जिये, श्मशान में ध्यान करे,
चिथड़ों का बना चीवर पहने, बिना लेटे आराम करे
और सदा शुद्धि में रत रहे'—
इस प्रकार, चित्त !
तुम पहले मुझसे आग्रह करते थे ॥११२४॥
जैसा कि फल की इच्छा रखनेवाला मनुष्य
पेड़ को लगाकर फिर उसी को जड़ से काटे,
चित्त ! जो तुम अनित्य और नाशवान संसार में
मुझे लगाना चाहते हो
सो तुम वैसा ही कर रहे हो ॥११२५॥

रूप रहित, दूरगामी, एकचारी (चित्त !)
अब मैं तुम्हारी बात नहीं करूँगा।
काम दुःखदायी हैं कटुक हैं और बहुत भयानक हैं।
मैं निर्वाण की ओर ही चलूँगा ॥११२६॥
मैं न तो विपत्ति के कारण
न मज़ाक के लिए न विनोद के लिए,
न भय से और न जीविका के लिए ही (घर से) निकला हूँ।
चित्त ! मैंने (अपने वश में)
रहने की प्रतिज्ञा तुमसे की है ॥११२७॥
'सत्पुरुषों ने अल्पेच्छता की मन को त्यागने की
और दुःख को शान्त करने की प्रशंसा की है'—
इस प्रकार कहकर, चित्त !
तुम पहले मुझसे आग्रह करते थे,
अब तुम पुरानी आदत की ओर जा रहे हो ॥११२८॥
तृष्णा अविद्या, प्रिय अप्रिय (वस्तु),
सुन्दर रूपों, सुखी वेदनाओं और
मन को प्रिय लगनेवाले काम गुणों को ॥११२९॥
मैं उगल गया हूँ। जो उगला है मैं उसे निगल नहीं सकता,
चित्त ! सर्वत्र, अनेक जन्मों में
मैंने तुम्हारे वचन का पालन किया था,
मैंने तुम्हें अप्रसन्न नहीं किया।
इस आत्मीयता का तुम्हारी कृतघ्नता का
यही परिणाम हुआ
कि मैं चिरकाल तक दुःख भोगता रहा ॥११३०॥
चित्त ! तुमही हमें कभी ब्राह्मण बनाते हो
कभी क्षत्रिय बनाते हो और कभी राजा बनाते हो।

(तुम्हारे कारण) हम कभी वैश्य
बन जाते हैं तो कभी शूद्र ।
तुम्हारे कारण हम देवता भी बन जाते हैं ॥११३१॥

तुम्हारे कारण हम असुर बन जाते हैं,
तुम्हारे कारण नारकीय बन जाते हैं
और कभी जानवर भी हो जाते हैं ।
फिर तुम्हारे कारण भूत भी हो जाते हैं ॥११३२॥

चित्त ! तुम बारम्बार मेरे साथ
विश्वासघात न कर रहे हो ?
तुम बारम्बार नाटक कर रहे हो ?
पागल की तरह मुझे प्रलोभन दे रहे हो ?
चित्त ! बताओ कि मैंने तुम्हें
किस बात में बिगाड़ा है ॥११३३॥

पहले यह चित्त मनमाना जिधर चाहा
उधर स्वच्छन्द जाता रहा,
उसे आज मैं अच्छी तरह अपने वश में वैसा ही लाऊँगा
जैसा कि अंकुश ग्रहण करनेवाला मदके हाथी को ॥११३४॥

मेरे शास्ता ने निश्चित रूप से दिखाया है कि
यह ससार अनित्य है, अध्रुव है और असार है ।
चित्त ! जिन के शासन में आगे बढ़ो और
महान् तथा दुस्तर प्रवाह से मुझे पार लगा दो ॥११३५॥

चित्त ! यह जन्म तुम्हारे लिए पहला जैसा नहीं है ।
मैं लौटकर तुम्हारे वश में रहने योग्य नहीं हूँ ।
मैं महर्षि के शासन में प्रव्रजित हुआ हूँ ।
मेरे जैसे लोग विनाश को स्वीकार नहीं करेंगे ॥११३६॥

पर्वत समुद्र सरितायें, वसुन्धरा चार दिशायें,
चार विदिशायें और नीचे की दिशा—
ये सब अनित्य हैं, तीनों भव पीड़ादायक हैं।
चित्त ! कहाँ जाकर सुख से रहोगे ? ॥११५७॥
मैं अडिग पर दृढ़ हूँ,
चित्त ! तुम मुझे क्या करोगे ?
चित्त ! मैं तुम्हारे वश में रहने योग्य नहीं हूँ।
दोनों ओर से खुली हुई और गन्दगी से भरी हुई
इस थैली को कौन छूये ?
बहनेवाले नौ स्रोत वाले
इस शरीर को धिक्कार है ! ॥११५८॥
सूकरों और मृगों से सेवित प्राकृतिक
सौन्दर्य से युक्त पर्वत शिखर पर
या वर्षा के नये जल से सिक्त कानन में
गुफा रूपी घर में प्रवेश कर रमोगे ॥११५९॥
वन में ध्यान करनेवाले तुम्हें
सुन्दर नील ग्रीवा वाले सुन्दर शिखा वाले
सुन्दर पंखवाले और सुन्दर पत्रवाले पक्षी
मधुर नाद की प्रतिध्वनि से प्रमुदित करेंगे ॥११६०॥
चार अंगुल तृण पर पानी बरसने पर,
पर्वत के बीच वृक्ष की तरह,
मेघ जैसे प्रफुल्लित कानन में निश्चिन्त हो बैठूँगा
और उस समय (तृण का आसन)
रूई की भाँति मुलायम मालूम होगा ॥११६१॥
मैं स्वामी की तरह तुम्हें ठीक कर दूँगा।
जो भी मुझे मिल जाय वही पर्याप्त है।

मैं तन्द्रा रहित हो तुम्हें वैसा ही ठीक कर दूँगा
जैसा कि परिमार्जित बिलाल का चमड़ा हो ॥११४२॥

मैं स्वामी की तरह तुम्हें ठीक कर दूँगा।
जो भी मुझे मिल जाय वही पर्याप्त है।
प्रयत्न से मैं तुम्हें वैसा ही अपने वश में कर लूँगा
जैसा कि अंकुश ग्रहण करनेवाला मस्त हाथी को ॥११४३॥

तुम्हारे दान्त और स्थिर हो जाने पर,
सीधे घोड़े को रखनेवाले लायक घुड़सवार की तरह,
मैं उस शिव मार्ग पर चल सकूँगा,
जो कि रक्षित मनवालों से सदा सेवित है ॥११४४॥

मैं तुम्हें बलपूर्वक आलम्बन[1] में वैसा ही बाँध डालूँगा
जैसा कि हाथी को मजबूत रस्सी से खम्भे में।
तुम मेरी स्मृति द्वारा सुरक्षित और सुभावित[2] हो
सभी भवों में अनासक्त होगे ॥ ११४५ ॥

कुमार्ग पर चलनेवाले तुम्हें प्रज्ञा से खींच कर,
योगबल द्वारा निग्रह कर सुमार्ग पर लगाऊँगा।
(संस्कारों की) उत्पत्ति और विनाश को देखकर
अग्रवादी (बुद्ध) के उत्तराधिकारी बनोगे ॥ ११४६ ॥

चार विपर्य्यासों के फेर में पड़कर तुमने
मुझे ग्राम दारक की तरह इधर उधर घुमाया।
(अब) सयोजन रूपी बन्धनों के छेदक,
कारुणिक महामुनि का अनुसरण करो ॥ ११४७ ॥

---

१ समाधि का विषय।

२ अच्छी तरह अभ्यस्त।

जिस प्रकार मृग सुन्दर कानन में
स्वतन्त्र हो विचरण करता है,
उसी प्रकार वर्षा ऋतु में मेघ समूह से सुन्दर
इस पर्वत पर तुम आ गये हो,
(अब) बिना व्याकुलता के
इस पर्वत पर रमण करोगे।
चित्त ! निश्चित रूपसे तुम पार हो जाओगे ॥११५८॥
इच्छा के कारण जो नर, नारी
तुम्हारे वश में रह कर
जिस सुख का अनुभव करती हैं
वे मन मार के वश में रहते हैं।
चित्त ! तुम्हारे व्यापक संसार में
आनन्द् लेनेवाले हैं ॥ ११५९ ॥

पञ्चासवाँ निपात समाप्त

साठवाँ निपात

तैंतीसवाँ वर्ग

२६३. महामोग्गल्लान

मोग्गल्लान की कथा भी सारिपुत्र की कथा मे आयी है। प्रव्रज्या से ं सप्ताह बाद मोग्गल्लान अर्हत् पद को प्राप्त हुए और ऋद्धि-बल मे भगवान् के शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ हुए।

कई अवसरों पर प्रकट किये गये मोग्गल्लान स्थविर के विचारों को ाँ पर उदान के रूप में दिया गया है। भिक्षुओं को दिया गया पदेश

अरण्य में रहते हुए, भिक्षा से जीविका करते हुए,
पात्र में मिले भोजन में रत हो,
अध्यात्म को शान्त कर
(हम) मृत्यु सेना का ध्वंस करें ॥ ११५० ॥
अरण्यक हो, पिण्डपातिक हो,
पात्र में पड़े भोजन में रत हो,
(हम) मृत्यु-सेना को वैसे ही हिला दें
जैसा कि हाथी सरकंडों के बने घर को ॥ ११५१ ॥
वृक्षों के नीचे रहते हुए, उद्योगी हो,
पात्र में पड़े भोजन में रत हो,
(हम) मृत्यु-सेना को वैसे ही हिला दें
जैसा कि हाथी सरकंडों के बने घर को ॥ ११५२ ॥

मोग्गल्लान की प्रलोभन देनेवाली एक वेश्या पर।

अस्थिपञ्जर की बनी कुटि में रहनेवाली
मांसों से सिए हुए नसोंवाली,
गन्दगी से भरी तुझे धिक्कार है!
तू दूसरे के शरीर की इच्छा करती है॥ ११५३॥

(तू) त्वचा से मढ़ी हुई गूथ की थैली है
छाती पर गण्डयुक्त पिशाचिनी है।
तेरे शरीर में नौ स्रोत हैं
जो कि नित्य बहते रहते हैं॥११५४॥

नौ स्रोतों से युक्त तेरा शरीर दुर्गन्ध युक्त है
और बन्धन में डालनेवाला है।
तुझे भिक्षु वैसा ही त्याग देता है
जैसा कि स्वच्छता की कामना करनेवाला गूथ को॥११५५॥

यदि लोग तुझको वैसा ही जानेंगे
जैसा कि मैं तुझे जानता हूँ
तो वे तुझे वैसा ही दूर करेंगे
जैसा कि (लोग) वर्षा के समय गूथ भरे स्थल को॥११५६॥

वेश्या।

महावीर श्रमण! आपकी बात बिलकुल ठीक है।
(लेकिन) कुछ लोग इसमें भी वैसे ही फँस जाते हैं
जैसा कि बूढ़ा बैल दलदल में॥११५७॥

मोग्गल्लान।

जो आकाश को हल्दी या दूसरे रंग से रँगाना चाहता है
वह असफल ही रह जाता है॥११५८॥

मेरा चित्त आकाश के समान है।
मेरा अध्यात्म सुसमाहित है।
पापचित्ते ! मुझे प्रलोभन न दे।
पतङ्गे की तरह आग में न कूद ॥११५९॥

इस चित्रित शरीर को देखो, जो व्रणों से युक्त, फूला,
पीड़ित तथा अनेक संकल्पों से युक्त है,
जिसकी स्थिति अनित्य है ॥११६०॥

सारिपुत्र के परिनिर्वाण पर :

जिस समय अनेक गुणों से युक्त
सारिपुत्र का परिनिर्वाण हुआ,
उस समय भीति उत्पन्न हुई,
और रोमाञ्च उत्पन्न हुआ ॥११६१॥

निश्चित रूप से संस्कार अनित्य है,
उत्पत्ति और विनाश को प्राप्त होनेवाले हैं।
(वे) उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाते हैं।
उनका शान्त होना सुखदायी है ॥११६२॥

जो पाँच स्कन्धों को आत्मीय न समझ
निरात्मीय समझता है,
वह, बाल के सिरे को चीरनेवाले तीर की तरह,
सूक्ष्म तत्व को समझ जाता है ॥११६३॥

जो संस्कारों को आत्मीय न देख
निरात्मीय देखते हैं,
वे (उनके) बोध में वैसे ही निपुण हैं
जैसा कि तीर बाल के सिरे को चीरने में ॥११६४॥

तिस्स थेर पर :

शस्त्र लगे की तरह सर में आग लगे की तरह
काम तृष्णा को दूर करने के लिए
भिक्षु स्मृतिमान् हो विचरे ॥११६५॥

शस्त्र लगे की तरह सर में आग लगे की तरह
भव-तृष्णा को दूर करने के लिए
भिक्षु स्मृतिमान् हो विचरे ॥११६६॥

मिगारमाता के प्रासादको ऋद्धिबल से हिलाने पर :

जितेन्द्रिय और अन्तिम देह धारण करनेवाले
(बुद्ध) का आदेश पाकर
मिगारमाता के प्रासाद को
पैर की अंगुली से हिला दिया ॥११६७॥

एक भिक्षु पर :

शिथिलता-पूर्वक और अल्प उद्योग से
इस निर्वाण की प्राप्ति नहीं की जा सकती
सभी ग्रन्थियों से मुक्ति नहीं पायी जा सकती ॥११६८॥

यह तरुण भिक्षु यह उत्तम पुरुष
सेना सहित मार को नाशकर
अन्तिम देह धारण करता है ॥११६९॥

अपनी साधना पर

वेभार और पण्डव पर्वतों के बीच
बिजलियाँ गिरती हैं।
अनुपम और अचल (बुद्ध) का पुत्र
पर्वत गुफा में प्रवेश कर ध्यान करता है ॥११७०॥

महाकस्सप को देखकर अशुभ माननेवाले सारिपुत्त के भानजे को :

उपशान्त, ध्यान में रत,
दूर के एकान्त स्थान में विहरने वाला मुनि,
श्रेष्ठ बुद्ध का उत्तराधिकारी है,
और ब्रह्मा द्वारा अभिवादन किया जाता है ॥११७१॥

ब्राह्मण ! उपशान्त, ध्यान में रत,
दूर के एकान्त स्थान में विहरने वाले मुनि की,
श्रेष्ठ बुद्ध के उत्तराधिकारी
काश्यप की वन्दना करो ॥११७२॥

जो सौ-सौ बार मनुष्यों में,
वेदज्ञ श्रोत्रिय ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो,
स्वयं तीनों वेदों में पारङ्गत हो
अध्यापन भी करे तो उसकी वन्दना का मूल्य
इस (महाकाश्यप) की वन्दना की तुलना में
सोलह कलाओं में एक कला भी नहीं है ॥११७३-४॥

वह भोजन के समय से पहले
अष्ट विमोक्षों[४८] का अनुभव पाकर
आरम्भ से अन्त तक और अन्त से आरम्भ तक
उनका अवलोकन कर भिक्षा के लिए निकला था ॥११७५॥

ब्राह्मण ! ऐसे भिक्षु पर आक्षेप न कर,
अपना अनर्थ न कर ।
अचल अर्हन्तके प्रति अपना मन प्रसन्न रख।
शीघ्र अञ्जलीबद्ध हो (उसकी) वन्दना कर,
अपने सर को विपत्ति में न डाल ॥११७६॥

पोटल नामक असंयमी भिक्षु पर।

जो संसार में व्यस्त रहता है
वह सद्धर्म को नहीं समझता।
वह अधोगामी मिथ्या कुमार्ग का
अनुसरण करता है ॥११७७॥
गूथ-लिप्त कृमि की तरह सत्कारों में मूर्च्छित,
लाभ-सत्कार में आसक्त
तुच्छ पोटल जाता है ॥११७८॥

सारिपुत्र की प्रशंसा में।

यह देखो, आते हुए सुन्दर सारिपुत्र को।
ये (रूपकाय तथा नामकाय) दोनों से मुक्त हैं
और उनका अध्यात्म सुसमाहित है ॥११७९॥
ये (तृष्णारूपी) तीर रहित हैं, बन्धन क्षीण हैं
त्रैविद्य हैं, मृत्युनाशक हैं
मनुष्यों के दक्षिणार्ह हैं और अनुत्तर पुण्यक्षेत्र हैं ॥११८०॥
सारिपुत्र द्वारा मोग्गल्लान की प्रशंसा।
ये बहुत से ऋद्धिमान और यशस्वी देवता (आये हैं)।
ये दस सहस्र सभी ब्रह्मपुरोहित देवता हैं।
ये खड़े होकर अञ्जलिबद्ध हो
मोग्गल्लान को इस प्रकार नमस्कार करते हैं। ॥११८१॥

श्रेष्ठ पुरुष! आपको नमस्कार!
उत्तम पुरुष! आपको नमस्कार!
आप आस्रवक्षीण दक्षिणार्ह हैं ॥११८२॥
आप मनुष्यों और देवताओं से पूजित हैं
मृत्युविजयी हो गये हैं।

जैसा कमल पानी में लिप्त नही होता
वैसा ही आप संस्कारों में लिप्त नहीं होते ॥११८३॥
जो ब्रह्मा की तरह मुहूर्त भरमें सहस्त्र प्रकार से
ससार को जान जाता है।
जो ऋद्धि में निपुण हो मृत्यु तथा
जन्म के समय का ज्ञान रखता है,
उस भिक्षु को देवता देखता है ॥११८४॥

मोग्गल्लान अपनी प्राप्ति पर :

प्रज्ञा, शील और संयम में
भिक्षु सारिपुत्त ही पारंगत है, उत्तम है ॥११८५॥
लेकिन सतसहस्त्र कोटि आत्मभावों के निर्माण में,
विकुर्वन ऋद्धि[1] में मैं ही कुशल हूँ,
मैं ही निपुण हूँ ॥११८६॥
मोग्गल्लान गोत्र में उत्पन्न मैं
अनासक्त (बुद्ध) के शासन में,
समाधि और विद्या की निपुणता में,
पूर्णता को प्राप्त हूँ।
समाहित इन्द्रियवाला हो धीर ने
(वासनाओं का) वैसा ही समूल नष्ट किया
जैसा कि हाथी पुरानी रस्सी को ॥११८७॥
मैंने शास्ता की सेवा की है,
बुद्ध शासन को पूरा किया है।
भारी बोझ को उतार दिया है
और भव-नेत्र (तृष्णा) का समूल नष्ट किया है ॥११८८॥

---

१ अपना रूप छोडकर दूसरे रूप मे प्रकट होना।

जिस भर्य के छिप पर से
पेमर हो प्रम्रभित हुआ,
मैंने उस भार्य को,
सभी बन्धनों के क्षय को प्राप्त किया ॥११८९॥
मोगाल्लान के शरीर में प्रवेश कर बाहर निकले मार को।

विधुर नामक श्रावक और
श्रेष्ठ ककुसन्ध को बाधा पहुँचाकर,
तुम दुष्ट जिस नरक में पके थे सो कैसा है ॥११९०॥
वहाँ सौ सौ लोहे के बरछे थे
और वे सब दुःखदायी थे
जहाँ कि विधुर श्रावक और श्रेष्ठ ककुसन्ध को
बाधा पहुँचाकर तुम दुष्ट पके थे ॥११९१॥
बुद्ध का जो श्रावक भिक्षु इस बात को जानता है,
वैसे भिक्षु को बाधा पहुँचाकर,
पापी! तुम दुःख को प्राप्त होगे ॥११९२॥
समुद्र के बीच में वैदूर्य जैसे सुन्दर, प्रकाशमान,
प्रभायुक्त कल्पों तक टिकनेवाले विमान स्थित हैं।
नाना रूपवाली पुष्प-सी अप्सराएँ वहाँ नाचती हैं॥११९३॥
बुद्ध का जो श्रावक भिक्षु
इस बात को जानता है,
वैसे भिक्षु को बाधा पहुँचाकर,
पापी! तुम दुःख को प्राप्त होगे ॥११९४॥
बुद्ध का आदेश पाकर,
भिक्षुसंघ के देखते ही
मिगारमाता के प्रासाद को
जिसने अंगुलि से हिलाया ॥११९५॥

" "पापी ! तुम दुःख को प्राप्त होगे ॥११९६॥
ऋद्धि-बल युक्त हो जिसने
वैजयन्त प्रासाद को
पैर की अंगुलि से हिलाकर
देवताओं में भय उत्पन्न किया ॥११९७॥
' पापी ! तुम दुःख को प्राप्त होगे ॥११९८॥
वैजयन्त प्रासाद में जिसने
इन्द्र से यह प्रश्न किया कि
आयुष्मान् ! तुम तृष्णा के क्षय
और विमुक्ति को जानते हो ?
'तो इन्द्र ने यथार्थ रूप से
उसके प्रश्न का उत्तर दिया ॥११९९॥
पापी तुम दुःख को प्राप्त होगे ॥१२००॥
सुधर्मा सभा में खड़े होकर जिसने
ब्रह्मा से यह पूछा कि आयुष्मान् !
क्या आज भी तुम्हारी वही दृष्टि है जो पहले थी ?
क्या ब्रह्मलोक के प्रकाश को कम होते देखते हो ?॥१२०१॥
ब्रह्मा ने उस प्रश्न का
यथार्थ रूप से उत्तर देते हुए कहा कि
मित्र ! (अब) मेरी वही दृष्टि नहीं है जो पहले थी ॥१२०२॥
मैं ब्रह्मलोक के प्रकाश को
कम होते देखता हूँ ।
आज मैं इस कथन को
कि मैं नित्य हूँ और मैं शाश्वत हूँ—
सदोष मानता हूँ ॥१२०३॥
... पापी ! तुम दुःख को प्राप्त होगे ॥१२०४॥

जिसने मुक्ति प्राप्ति के पाद ही
महामेरु के शिखर को स्पर्श किया
पूर्वविदेहों के वन का और वहाँ की भूमि पर
रहनेवाले मनुष्यों को देखा है ॥१२०५॥
पापी ! तुम दुःख को प्राप्त होगे ॥१२०६॥
आग यह नहीं सोचती कि
मैं मूर्ख को जलाती हूँ।
लेकिन मूर्ख जलती आग में
हाथ डालकर उसे जला लेता है ॥१२०७॥
इसी प्रकार मार ! तुम तथागत पर
आक्षेप कर पाप का संचय करते हो ॥१२ ८॥
पापी ! क्या तुम सोचते हो कि
पाप का फल मुझे नहीं मिलता।
तुम अपने आप को वैसा ही जलाते हो
जैसा कि मूर्ख आग को छूकर ॥१२०९॥
अन्तक ! तुम्हारे किये पाप के
बीतने में बहुत समय लगेगा।
मार ! बुद्ध से दूर हटो
और भिक्षुओं के प्रति द्वेषता न करो ॥१२१०॥
इस प्रकार भेसकलावन में
भिक्षु ने मार को धमकाया।
उससे दुर्मित हो वह यक्ष
वहीं अन्तर्धान हो गया ॥१२११॥

चालीसवाँ निपात समाप्त

महानिपात

चौतीसवाँ वर्ग

२६४. वंगीस

श्रावस्ती के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। वे त्रिवेद पारङ्गत थे और मृत मनुष्यों की खोपड़ियों को नाखून से बजाकर उनकी गति को बता सकते थे। वे देश में घूम-घूम कर इस शक्ति का प्रदर्शन कर बहुत आमदनी पाते थे। एक दिन वे भगवान् के दर्शन के लिए गये। उनकी परीक्षा लेने के लिए भगवान् ने कई मृत मनुष्यों की खोपड़ियाँ मँगवा दीं। वंगीस उनको बजा कर मृत आत्माओं की गतियों को बताते गये। अन्त में एक अर्हन्त की खोपड़ी दी गयी और वंगीस उनकी गति बताने में असफल हुए। तब उन्होंने भगवान् से इसका रहस्य बताने का अनुरोध किया। भगवान् ने उन्हें प्रव्रज्या लेने को कहा। वंगीस प्रव्रजित हो, ध्यान-भावना कर शीघ्र ही अर्हत् पद को प्राप्त हुए।

अनेक अवसरों पर प्रकट किये गये वंगीस स्थविर के और उन सम्बन्धी विचारों को यहाँ उदान के रूप में दिया गया है।

विहार में आयी हुई कुछ स्त्रियों को देखकर मन में उत्पन्न हुए विकारोंके समाधान पर

घर से बेघर हो निकले हुए मेरे मन में
ये अनिष्ट और पापी वितर्क उठते हैं ॥१२१२॥

तीर चलाने में निपुण, शिक्षित दृढ़ स्वभाव वाले
और संग्राम भूमि से न भागनेवाले योद्धे
चारों ओर से सहस्र तीर भले ही चलावें ॥१२१३॥
यदि इससे भी अधिक स्त्रियाँ आ जायें
तो भी ये धर्म में प्रतिष्ठित मुझे
बाधा नहीं पहुँचा सकेंगी ॥१२१४॥
आदित्यबन्धु बुद्ध के सम्मुख ही
मैंने निर्वाणगामी मार्ग के विषय में सुना
और उसी में मेरा मन निरत है ॥१२१५॥
पापी (मार) ! इस प्रकार विहरने वाले
मेरे पास तुम आते हो।
मृत्यु मैं वैसा करूँगा जिससे कि तुम
मेरे गये मार्ग को भी नहीं देख सकोगे ॥१२१६॥

दूसरे अवसर पर वितर्कों के समाधान पर :

सर्व प्रकार से अरति रति और
सांसारिक वितर्क का त्याग कर कहीं तृष्णा न करे।
जो वितृष्ण है और तृष्णा रहित है
वह भिक्षु कहलाता है ॥१२१७॥
जो यहाँ पृथ्वी है, आकाश है
और जगत् पर स्थित रूप है
वह सब जीर्ण होता है, अनित्य है—
इस प्रकार जानकर ज्ञानी विचरता है ॥१२१८॥
स्कन्ध सम्बन्धी देखी हुई, सुनी हुई
स्पर्श पाई हुई और दूसरे प्रकार की
परिस्थितियों में लोग आसक्त हैं।

स्थिर हो इसकी इच्छा को दूर करो।
जो इसमें लिप्त नहीं होता,
वह मुनि कहलाता है ॥१२१९॥

अठसठ प्रकार के वितर्क (=दृष्टियाँ) हैं
जिन अधर्मों में पृथक् जन (=सामान्य जन)
आसक्त रहते हैं।
जो पक्ष के फेर में और दृष्टि के फेर में नहीं पड़ता,
वह भिक्षु कहलाता है ॥१२२०॥

जो पण्डित है, चिरकाल से समाहित है,
शठता रहित है, कुशल है और इच्छा रहित है,
शान्त पद को प्राप्त वह मुनि, उपशान्त हो
समय की प्रतीक्षा करता है ॥१२२१॥

अपने अभिमान् के समाधान पर

गौतम का शिष्य अभिमान् को त्याग दो
और निःशेष अभिमान्-पथ को भी त्याग दो।
अभिमान् के पक्ष में आसक्त हो (तुम)
चिरकाल तक पछताते रहे ॥१२२२॥

लोग आत्म-वंचना से वंचित हैं।
अभिमान से आहत हो नरक में गिरते हैं।
नरक में उत्पन्न हो लोग चिरकाल तक पछताते हैं ॥१२२३॥

जो मार्ग-विजयी है और सन्मार्ग पर है,
वह भिक्षु कभी पछताता नहीं।
वह कीर्ति और सुखका अनुभव पाता है,
अथार्थ में वह धर्म-दर्शी कहलाता है ॥१२२४॥

इसलिये बाधा रहित हो उद्योगी बने
आस्रवों का त्याग कर विशुद्ध बने।
निःशेष अभिमान को त्याग कर
विविधा द्वारा (जन्म का) अन्त कर
शान्त बने ॥१२२५॥

एक अवसर पर अपने मन में काम वितर्क उत्पन्न होने पर वंगीस ने उनके समाधान के लिए आयुष्मान् आनन्द से कहा।

कामराग से जल रहा हूँ
मेरा चित्त जल रहा है।
गौतम का शिष्य (आनन्द) ! अनुकम्पा पूर्वक
उसे शान्त करने का उपाय बतावें ॥१२२६॥

आनन्द ने उत्तर दिया।

विचार के दूषित होने से तुम्हारा चित्त जल रहा है।
मोहनेवाले रागयुक्त निमित्त को त्याग दो ॥१२२७॥
संस्कारों को निरात्मीय के रूप में दुःख के रूप में देखो
न कि आत्मीय के रूप में।
(इस प्रकार) महा राग को शान्त करो,
बारम्बार जलना नहीं ॥१२२८॥

एकाग्रचित्त हो सुसमाहित हो
अशुभ का अभ्यास करो।
शरीर के विषय में स्मृतिमान् बनो
और विरक्ति बहुल होओ ॥१२२९॥
अनिमित्त समाधि का अभ्यास करो
और समूल अभिमान को त्याग दो।

इस प्रकार अभिमान को शान्त कर,
उपशान्त हो विचरण करोगे ॥१२३०॥

सुभाषण पर दिये गये भगवान् के उपदेश पर

वह बात बोले जिससे न स्वयं कष्ट पावे
और न दूसरों को ही दुःख हो,
ऐसी ही बात सुन्दर है ॥१२३१॥

आनन्ददायी प्रिय वचन ही बोले।
पापी बातों को छोड़ कर
दूसरों को प्रिय वचन ही बोले ॥१२३२॥

सत्य ही अमृत वचन है, यह सदा का धर्म है।
सत्य, अर्थ और धर्म में प्रतिष्ठित
सन्तों ने (ऐसा) कहा है ॥१२३३॥

बुद्ध जो कल्याण वचन निर्वाण प्राप्ति के लिए,
दुःख का अन्त करने के लिए बोलते हैं,
वही वचनों में उत्तम है ॥१२३४॥

सारिपुत्र की प्रशंसा में

गम्भीर प्रज्ञ, मेधावी, मार्गामार्ग में कुशल,
महाप्रज्ञ सारिपुत्र भिक्षुओं को उपदेश देता है ॥१२३५॥

वह संक्षेप में भी उपदेश करता है
और विस्तार में भी भाषण देता है।
सारिका के जैसे स्वर में ज्ञान को प्रकट करता है ॥१२३६॥

इस प्रकार मधुर वाणी में,
रजनीय, श्रवणीय और सुन्दर स्वरमें,
उसके उपदेश देते समय,

प्रसन्न और प्रमुदित भिक्षु
कान लगाकर सुनते हैं ॥१२३७॥

पवारण सुत्त का उपदेश देने के बाद भिक्षुसंघ से परिवृत भगवान् की प्रशंसा में।

आज पूर्णिमा के दिन विशुद्धि के लिए
पाँच सौ भिक्षु एकत्रित हुए हैं।
वे संयोजन रूपी बन्धन छिन्न
पाप रहित पुनर्जन्म क्षीण ऋषि हैं ॥१२३८॥

जिस प्रकार अमात्यों से परिवृत चक्रवर्ती राजा
सागर पर्यन्त इस पृथ्वी का भ्रमण करता है
उसी प्रकार संग्राम विजयी
अनुत्तर नेता (बुद्ध) की त्रैविद्य
और मृत्युनाशक श्रावक सेवा करते हैं ॥१२३९-४०॥
ये सभी भगवान् के पुत्र हैं
यहाँ कोई शुष्क (पुरुष) विद्यमान नहीं।
तृष्णा-शल्य का हनन करनेवाले
आदित्यबन्धु की वन्दना करता हूँ ॥१२४१॥

निर्वाण पर उपदेश देने के बाद भगवान् की प्रशंसा में।

अकुतोभय निर्वाण पर निर्मल धर्म का
उपदेश देनेवाले सुगत की सेवा
सहस्र से अधिक भिक्षु करते हैं ॥१२४२॥
वे सम्यक् सम्बुद्ध द्वारा देशित निर्मल धर्म को सुनते हैं।
भिक्षु-संघ से परिवृत हो सम्बुद्ध शोभते हैं ॥१२४३॥
भगवान् श्रेष्ठ नामवाले हैं।

ऋषियों[1] में सप्तम ऋषि हैं।
महामेघ की भाँति वे
श्रावकों पर (धर्म की) वर्षा करते हैं ॥१२४४॥
महावीर! शास्ता के दर्शनाभिलाषी
श्रावक वंगीस दिवाविहार से निकल कर
आपके पादों की वन्दना करता है ॥१२४५॥

भगवान् का आदेश पाकर वंगीस ने उसी अवसर पर इन गाथाओं की भी रचना की

मार के कुमार्ग पर विजयी हो,
बाधाओं का नाश कर वे विचरते हैं।
बन्धनों से मुक्ति प्रदान करने वाले,
अनासक्त धर्म का विश्लेषण कर
उपदेश देनेवाले उन (भगवान्) को देखो ॥१२४६॥
प्रवाह के निस्तार के लिए
अनेक प्रकार से (उन्होंने) मार्ग बताया है।
उनके देशित अमृत में
धर्म-दर्शी स्थित हैं, अचल हैं ॥१२४७॥
प्रकाश देनेवाले उन्होंने उस धर्म को,
जो कि सभी स्थितियों से परे है,
समझकर और देखकर श्रेष्ठ (निर्वाण) को
जानकर और साक्षात् कर,
उसके दर्शन पाने का मार्ग बताया है ॥१२४८॥
इस प्रकार सुदेशित धर्म में,
धर्म का कौन ज्ञाता प्रमाद करे?

१. बुद्ध।

इसलिए उस भगवान् के शासन में
अप्रमादी हो सदा (उन्हें)
नमस्कार करते हुए शिक्षित हो जायें ॥१२४९॥

सम्मा-कोण्डञ्ञ की प्रशंसा में।

जो कोण्डञ्ञ थेर बुद्ध के बाद ही
प्रबुद्ध हुआ है और पराक्रमी है
वह प्राप्त सुखवास तथा
एकान्तवास का अनुभव पाता है ॥१२५०॥

शास्ता का उपदेश अनुसरण करनेवाले
श्रावक द्वारा जो प्राप्य है,
अप्रमत्त हो शिक्षा प्राप्त करनेवाले
उसे वह सब क्रमशः प्राप्त हुआ है ॥१२५१॥

महान् प्रतापी त्रैविद्य
दूसरे के चित्त को जानने में कुशल,
बुद्ध का उत्तराधिकारी कोण्डञ्ञ
शास्ता के पावों की वन्दना करता है ॥१२५२॥

पाँच सौ अर्हन्तों के साथ राजगृह के ऋषिगिलि पर्वत के पास विहरनेवाले भगवान् तथा मोग्गल्लान की प्रशंसा में।

पर्वत के पास बैठे हुए, दुःख पारङ्गत
मुनि की सेवा त्रैविद्य
तथा मृत्यु नाशक श्रावक करते हैं ॥१२५३॥

महान् ऋद्धिमान् मोग्गल्लान
उनके मुक्त और वासना रहित चित्तको
अपने चित्त से परीक्षा कर जान लेता है ॥१२५४॥

इस प्रकार पूर्णता को प्राप्त, दुःख-पारङ्गत,
अनेक गुणों से युक्त गौतम मुनि की
(वे) सेवा करते हैं ॥१२५५॥

चम्पा में गग्गरा पुष्करणी के तीर पर भिक्षु-संघ से परिवृत भगवान् की प्रशंसा में :

जैसे मेघ रहित आकाश में चन्द्र
निर्मल हो सूर्य की तरह प्रकाशमान होता है,
वैसे ही अङ्गीरस महामुनि ! आप
अपने यश से सारे संसार को प्रकाशित करते हैं ॥१२५६॥

अर्हत् पद पाने के बाद अपने जीवन के अनुभवों पर :

हम पहले लोगों की गति बताने के शास्त्र से मस्त हो
गाँव गाँव और नगर नगर विचरण करते रहे,
तब हमने सभी धर्मों में पारङ्गत सम्बुद्ध को देखा ॥१२५७॥

दुःख-पारङ्गत मुनि ने हमें धर्म का उपदेश दिया।
धर्म सुनकर हम प्रसन्न हुए
और (उनमें) हमारी श्रद्धा उत्पन्न हुई ॥१२५८॥

स्कन्धों, आयतनों तथा धातुओं* के विषय में
उनका उपदेश सुनकर और उसे समझकर
मैं बेघर हो प्रव्रजित हुआ ॥१२५९॥

(बुद्ध) शासन के अनुयायी जो बहुत से स्त्री और पुरुष हैं,
उनके हित के लिए
तथागत उत्पन्न होते हैं ॥१२६०॥

जिन भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों ने
निर्वाण का दर्शन पाया है,

उनके हित के लिए
मुनि बोधि को प्राप्त हुए हैं ॥१२५१॥

चक्षुमान् आदित्य बन्धु बुद्ध ने
प्राणियों पर अनुकम्पा कर
(इन) चार आर्य-सत्यों का उपदेश किया है ॥१२५२॥

दुःख, दुःख का कारण दुःख का अतिक्रम
तथा दुःखोपशमगामी आर्य अष्टांगिक मार्ग ॥१२५३॥

इस प्रकार यथार्थ रूप से उपदेश दिया गया है
और मैंने यथार्थ रूप से उसका दर्शन पाया है।
मैंने सदर्थ को प्राप्त किया
और बुद्ध शासन को पूरा किया ॥१२५४॥

बुद्ध के पास मेरा स्वागत हुआ।
भिन्न धर्मों में जो श्रेष्ठ है उसे मैंने पाया ॥१२५५॥

मैं अभिज्ञाओं की पूर्णता को प्राप्त हुआ।
दिव्य श्रोत मेरा विशुद्ध हुआ।
मैं त्रैविद्य हूँ, ऋद्धि-प्राप्त हूँ
और दूसरों के चित्त को जानने में कुशल हूँ ॥१२५६॥

परिनिर्वाण को प्राप्त अपने उपाध्याय के विषय में वंगीस भगवान् से प्रश्न करता है :

इसी जन्म में शंकाओं को दूर करनेवाले
महाप्रज्ञ शास्ता से हम नामी यशस्वी
और शान्त भिक्षु के विषय में पूछते हैं
जिसका देहान्त अग्गालव चैत्य में हुआ था ॥१२५७॥

आपने उस ब्राह्मण का नाम निग्रोधकप्प रखा था।

मुक्ति के अपेक्षक, दृढ़ पराक्रमी (वे) निर्वाणदर्शी
आपको नमस्कार करते हुए विचरण करते थे ॥१२६८॥

सर्वदर्शी शाक्य ! आपके इस शिष्य के विषय में
हम सब जानना चाहते हैं, हमारे कान सुनने को तैयार हैं।
आप हमारे शास्ता हैं, आप सर्वोत्तम हैं ॥१२६९॥

महाप्रज्ञ ! हमारी शंका दूर करें।
मुझे बतावें कि वे निर्वाण को प्राप्त हुए या नहीं।
देवताओं के सहस्रनेत्र शक्र[1] की तरह
सर्वदर्शी आप हमारे बीच बोलें ॥१२७०॥

यहाँ मोह की ओर ले जानेवाली,
अज्ञान सम्बन्धी, शंका उत्पादक जो कुछ ग्रन्थियाँ हैं,
तथागत के पास पहुँचने पर,
वे सब नष्ट हो जाती हैं।
तथागत ही मनुष्यों के उत्तम चक्षु हैं ॥१२७१॥

जैसे हवा आसमान से बादलों को दूर कर देती है,
वैसे ही यदि आप जैसे मनुष्य
(लोगों की) वासनाओं को दूर नहीं करेंगे
तो संसार मोह से आच्छादित रहेगा
और प्रकाशमान पुरुष भी चमक नहीं पायेंगे ॥१२७२॥

धीर प्रकाश देनेवाले हैं।
धीर ! मैं आपको भी वैसा ही समझता हूँ।
विशुद्धदर्शी, ज्ञानी (आप) के पास (हम) आये हैं।
परिषद में हमें निग्रोधकप्प के विषय में बतावें ॥१२७३॥

---

१. इन्द्र।

जिस प्रकार हंस गला फैलाकर
मधुर और सुरीला निकूजन करता है
उसी प्रकार मधुर वाणी ध्वनि करें।
हम सब ध्यानपूर्वक सुनेंगे ॥१२७४॥

आप ने निःशेष जन्म-मृत्यु का नाश किया है।
मैं सुपरिशुद्ध आप से उपदेश के लिए
सानुरोध निवेदन करूँगा।
पृथग्जनों[1] की इच्छायें पूरी नहीं होतीं।
तथागत जानकारी के साथ कर्म करते हैं ॥१२७५॥

हे भगवान ! आप के इस सम्पूर्ण कथन को
(हमने) अच्छी तरह ग्रहण किया है।
यह मेरा अन्तिम प्रणाम है।
हे महाप्रज्ञ ! (हमें) भ्रम में न रखें ॥१२७६॥

महाप्रज्ञ ! आरम्भ से अन्त तक
आर्य-धर्म को जानकर
(आप हम को) भ्रम में न रखें।
जिस प्रकार उष्ण ऋतु में
गर्मी से पीड़ित मनुष्य पानी के लिए लालायित है,
उसी प्रकार मैं आप के वचन की
आकांक्षा करता हूँ।
आप वाणी की वर्षा करें ॥१२७७॥

जिस अर्थ के लिए कप्पायन ने
ब्रह्मचर्य का पालन किया था,

---

१ साधारण मनुष्य।

क्या वह सफल हुआ ?
वे निर्वाण को प्राप्त हुए या जन्मशेष रह गये ?
हम सुनना चाहते हैं कि उनकी मुक्ति कैसी हुई है ॥१२७८॥

बुद्ध

नाम-रूप की तृष्णा-रूपी दीर्घकाल से बहनेवाली
मार की सरिता को नाश कर
वह निःशेष जन्म-मृत्यु से पार हो गया ॥१२७९॥

वगीस .

उत्तम ऋषि ! आपकी बात को सुनकर मैं प्रसन्न हूँ ।
मेरा प्रश्न खाली नहीं गया ।
आपने मेरी उपेक्षा नही की ॥१२८०॥

बुद्ध के वे शिष्य यथावादी तथाकारी रहे हैं ।
उन्होंने मार के विस्तृत,
मायावी, दृढ़जाल को टुकड़ा-टुकड़ा कर दिया ॥१२८१॥

भगवान् ! कप्पिय ने तृष्णा के हेतु को जान लिया था ।
कप्पायन अति दुस्तर मृत्यु-राज्य को पारकर गये हैं॥१२८२॥

देवों में देव, द्विपदोत्तम !
आपके पुत्र की वन्दना करता हूँ ।
वह श्रेष्ठ (भिक्षु) श्रेष्ठ आप का
अनुजात, औरस पुत्र है ॥१२८३॥

महा-निपात समाप्त

थेरगाथा समाप्त

परिशिष्ट

१ बोधिनी

अनुशय (सात)—कामराग, भवराग, प्रतिहिंसा, अभिमान, मिथ्या-दृष्टि, विचिकित्सा, अविद्या।

अभिज्ञा—ऋद्धिविध-ज्ञान (पानी में चलना, आकाश में चलना इत्यादि सिद्धियों को प्रदर्शन करने का ज्ञान) दिव्यश्रोत्र-ज्ञान (दिव्य श्रोत्र का ज्ञान) परचित्त विजानन-ज्ञान (दूसरों के चित्त को जानने का ज्ञान) पुब्बेनिवासानुस्सति-ज्ञान (पूर्व जन्मों को स्मरण करने का ज्ञान) दिव्य चक्षु-ज्ञान (दिव्यचक्षु का ज्ञान)। आस्रवक्षय-ज्ञान (आस्रवों को क्षय करने का ज्ञान)। ये छः पद अभिज्ञा के नाम से ज्ञात हैं। छठवीं ज्ञान को छोड़ शेष पाँच अभिज्ञा के नाम से ज्ञात हैं।

अरूप भूमि—चार अरूप ब्रह्म लोक—आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिञ्चन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन।

अवरभागीय बन्धन (पाँच)—सत्काय दृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रतपरामर्श, कामच्छन्द, व्यापाद। ये संयोजन।

असंज्ञी भूमि—ग्यारहवाँ रूप ब्रह्मलोक।

अष्टाङ्गिक मार्ग—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि। इसे मध्यम मार्ग भी कहते हैं।

अष्टविमोक्ष—रूपी हो रूपों को देखता है—यह पहला विमोक्ष है, अरूपसंज्ञी हो रूप को देखता है—यह दूसरा विमोक्ष है, 'शुभ' ही है

अधिमुक्त हो जाता है—यह तीसरा विमोक्ष है, रूप से परे हो आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त होता है—यह चौथा विमोक्ष है, आकाशानन्त्यायतन से परे हो विज्ञानन्त्यायतन को प्राप्त होता है—यह पाँचवाँ विमोक्ष है, विज्ञानन्त्यायतन से परे हो अकिञ्चन्यायतन को प्राप्त होता है—यह छठवाँ विमोक्ष है; अकिञ्चन्यायतन से परे हो नैवसज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त होता है—यह सातवाँ विमोक्ष है, नैवसज्ञानासंज्ञायतन से परे हो सज्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त होता है—यह आठवाँ विमोक्ष है। (दे० दीघनिकाय, सगीतिपरियाय सुत्त)।

आनापान-स्मृति—श्वासोच्छ्वास पर मन को एकाग्र करने की विधि। दे० दीघ नि० सु० सं० २२, मज्झिम नि० सु० स० १०, ६२, ११८।

आयतन (छः)—चक्षु, श्रोत, घ्राण, जिह्वा, काय, मन।

आसक्ति (पाँच)—राग, द्वेष, मोह, अभिमान, दृष्टि।

आस्रव (चार)—काम, भव, दृष्टि, अविद्या।

इन्द्रियाँ (पाँच)—श्रद्धा, वीर्य स्मृति, समाधि, प्रज्ञा।

ऊर्ध्वभागीय बन्धन (पाँच)-रूपराग, अरूपराग, मान, औद्धत्य, कौकृत्य, विचिकित्सा। दे० सयोजन।

ऋद्धिपाद (चार)—सिद्धियों को प्राप्त करने के चार उपाय छन्द (छन्द से प्राप्त समाधि), विरिय (वीर्य से प्राप्त समाधि), चित्त (चित्त से प्राप्त समाधि), वीमसा (विमर्ष से प्राप्त समाधि)।

ककचूपम (आरी की उपमा)—डाकुओं द्वारा आरी से शरीर को चीरने पर भी चित्त को दूषित न करने का उपदेश भगवान् ने दिया है। दे० ककचूपम सुत्त, मज्झिम नि०।

काम भूमि—जिन योनियों में काम वासना की प्रबलता रहती है उन्हें काम भूमि कहते हैं। वे इस प्रकार हैं—नरक, पशुयोनि, मनुष्य योनि तथा छ देवयोनि।

कायगतास्मृति—शरीर के बत्तीस हिस्सों पर मननकर उसके प्रति आसक्ति त्याग देना। दे० सुत्त पाठ, द्वत्तिंसाकार।

ग्रन्थी (चार)—अभिध्या (एक लोभ) व्यापाद (वैमनस्य), शीलव्रतपरामास (पूजापाठ के कर्मकाण्ड से मुक्ति की प्राप्ति में मान्यता), इदंसच्चाभिनिवेस (किसी मतवाद के फेर में पड़ना)। ये चार काय ग्रन्थ के नाम से भी ज्ञात हैं।

दृष्टियाँ (तीस)—बीस प्रकार की सत्काय-दृष्टि तथा दस प्रकार की मिथ्या-दृष्टि।

धातु (अठारह)—चक्षु इत्यादि छः इन्द्रिय रूप इत्यादि छः विषय तथा छः इन्द्रियों और छः विषयों के सन्निकर्ष से उत्पन्न चक्षु विज्ञान इत्यादि छः प्रकार के विज्ञान।

धुतङ्ग (तेरह)—१ पंसुकूलिकङ्ग (चिथड़ों के बने चीवरों को पहनने की प्रतिज्ञा) २ पिण्डपातिकङ्ग (भिक्षा से ही जीविका करने की प्रतिज्ञा) ३ तेचीवरिकङ्ग (केवल तीन चीवरों का उपयोग करने की प्रतिज्ञा) ४ सपदानिकङ्ग (बीच में घर छोड़े बिना एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक भिक्षा करने की प्रतिज्ञा) ५ एकासनिकङ्ग (एक ही बार भोजन करने की प्रतिज्ञा), ६ पत्तपिण्डिकङ्ग (केवल भिक्षा पात्र में भोजन ग्रहण करने की प्रतिज्ञा) ७ पच्छा भत्तिकङ्ग (एक बार भोजन समाप्त करने के बाद फिर भोजन न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा), ८ आरञ्ञिकङ्ग (अरण्य में वास करने की प्रतिज्ञा) ९ रुक्खमूलिकङ्ग (वृक्ष के नीचे रहने की प्रतिज्ञा) १० अब्भोकासिकङ्ग (खुले मैदान में रहने की प्रतिज्ञा), ११ सुसानिकङ्ग (श्मशान में रहने की प्रतिज्ञा), १२ यथासन्थतिकङ्ग (किसी भी उचित स्थान में आसन ग्रहण करने की प्रतिज्ञा) १३ नेसज्जिकङ्ग (बिना लेटे सोने और आराम करने की प्रतिज्ञा)।

धुतङ्ग का अर्थ है पवित्रता के उपाय। तेरह धुतङ्ग नियम भिक्षुओं के लिए अनिवार्य नहीं, वैकल्पिक हैं।

नीवरण या आवरण (पाँच)—काम, क्रोध, आलस्य, चञ्चलता, संशय। मन के ये पाँच आवरण समाधि के मार्ग में बाधक हैं।

नैवसंज्ञा भूमि—चौथी और अन्तिम अरूप भूमि। इसका पूरा नाम नैवसंज्ञानासंज्ञा भूमि है।

पुत्रमाँस की उपमा—जिस प्रकार कान्तार में जाने वाले माता-पिता पाथेय के समाप्त होने पर पुत्र माँस खाकर उसे पार करते हैं, उसी प्रकार बिना आसक्ति के भोजन ग्रहण करने का आदेश। दे० पुत्तमंस सुत्त, संयुत्त नि०।

प्रतिसन्धि-विज्ञान—किसी प्राणी की चित्त-धारा का वह अन्तिम क्षण जिसके अनुसार उसका पुनर्जन्म होता है।

प्रतीत्यसमुत्पन्न धर्म—संस्कृत धर्म अर्थात् हेतुप्रत्ययों से उत्पन्न धर्म। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान-ये पाँचों स्कन्ध इन धर्मों के अन्तर्गत हैं। केवल नैर्वाण अप्रतीत्यसमुत्पन्न अर्थात् असंस्कृत धर्म है।

प्रातिमोक्ष—भिक्षुओं तथा भिक्षुणियोंकी नियमावली। प्रातिमोक्ष दो हैं भिक्षु प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी प्रातिमोक्ष। एक में २२७ नियम हैं और दूसरे में ३११ नियम हैं।

पृथक्जन—साधारण जन जो कि आर्य अवस्था को प्राप्त न हुआ हो। मुक्ति-मार्ग की ये आठ आर्य अवस्थाएँ हैं स्रोतापन्न मार्ग तथा फल, सकृदागामि मार्ग तथा फल, अनागामि मार्ग तथा फल, अर्हत् मार्ग तथा फल।

बल (पाँच)—श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा।

बोध्याङ्ग (सात)—स्मृति, धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि, उपेक्षा।

से मुक्ति की प्राप्ति में विश्वास करना), कामराग (=काम योनियों में जन्म लेने की इच्छा), रूपराग (=रूप योनियों मे जन्म लेने की इच्छा), अरूपराग (=अरूप योनियों में जन्म लेने की इच्छा), पटिघ (= प्रतिघ अर्थात् वैमनस्य), मान (= अभिमान), उद्धच्च (=औद्धत्य अर्थात् चित्त विक्षेप), अविज्जा (=अविद्या)। इन दस संयोजनों अर्थात् दस बन्धनों से प्राणी जब तक बंधा रहता है तब तक वह आवागमन के चक्र से नहीं छूटता।

स्कन्ध (पाँच)—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान। प्राणी का अस्तित्व इन पाँचों स्कन्धों का बना है।

स्मृति प्रस्थान (चार)—कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना तथा धर्मानुपश्यना। दे० दीघनिकाय, महासतिपट्ठान सुत्त।

---

२ नाम अनुक्रमणी

---

३ शब्द-अनुक्रमणी

४ उपमा सूची